ISSN 2454-6879

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक-13, सितम्बर-अक्तूबर 2017

सहयोग राशि

व्यक्तिगत : एक वर्ष 200 रुपए तीन वर्ष 500 रुपए
संस्था : एक वर्ष 400 रुपए, तीन वर्ष 1 हजार रुपए
आजीवन : पांच हजार रुपए संरक्षक : दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए

बैंक खाता : देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
खाता संख्या : 50297128780, IFS Code: ALLA0211940

ई-मेल : haryanades@gmail.com

ISSN 2454-6879

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

संपर्क: व्यवस्था - 99913-78352 संपादकीय - 94164-82156

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

इस बार

कर्ज माफी से कर्ज मुक्ति
न्यूनतम समर्थन मूल्य से निश्चित आय

हाय-हाय रै जमींदारा,
मेरा गात चीर दिया सारा

-दयाचंद मायना

पिछले बीस-पच्चीस सालों से खेती-किसानी का संकट निरंतर गहराता जा रहा है। हताश किसान-आत्महत्याओं का सिलसलिा थम नहीं रहा। सरकारें, नीति-निर्माता इस संकट से निकलने का कोई विश्वसनीय रास्ता सुझा नहीं पा रहे। विकल्पहीनता का संकट यहां साफ तौर पर दिख रहा है। जिस हरित-क्रांति माडल की मंहगी खेती व सरकारों की नीतियों ने किसानों व देश को जिस पर्यावरण, आर्थिक व सामाजिक संकट की ओर धकेला है उसी दिशा में एक कदम आगे बढ़कर जी.एम. फसलों को इस संकट से उबरने की रामबाण औषधि के तौर पर पेश किया जा रहा है। जानकारों का मानना है कि इससे कुछ कार्पोरेट घरानों और बाजार का भला तो हो सकता है, लेकिन किसानों को इससे कुछ हाथ आने वाला नहीं, बल्कि यह हमारे खेती के परम्परागत स्वरूप, बीज व सांस्कृतिक, आर्थिक व स्वास्थ्य को तबाह कर देगी।

किसान आंदोलन एक नई करवट लेता जरूर दिखाई दे रहा है। किसान-आंदोलन का चरित्र बदल रहा है। नव किसान-आंदोलन कुछ सहायता-राहत पाने की याचक मुद्रा में नहीं, बल्कि अधिकार भावना से प्रेरित है। कर्ज माफी की मांग का विस्तार कर्ज मुक्ति में और न्यूनतम समर्थन मूल्य की मांग का विस्तार निश्चित आय में हो गया है। खाते-पीते किसानों की समस्याओं के साथ सीमांत किसान, खेत मजदूर व आदिवासी किसान की समस्याओं को भी तरजीह दी जाने लगी है।

देश की अधिकांश आबादी जुड़ी होने के कारण कृषि महज किसानों का नहीं, बल्कि राष्ट्रीय संकट है, जिसकी अभिव्यक्ति कभी परम्परागत रूप से मजबूत जाट, मराठा, पटेल आदि किसान जातियों के सरकारी नौकरियों के लिए पिछड़े वर्गों में आरक्षण पाने के लिए उग्र व हिंसक आंदोलनों में होती है तो कभी छद्म धार्मिक-भावना उन्माद में।

इस संकट के अनेक आयाम हैं। गुणवत्तापूर्ण रचनात्मक कर्म के लिए हर संवेदनशील नागरिक, साहित्यकार व संस्कृतिकर्मी को समग्रता में समझना आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखते हुए कृषि-संकट और आंदोलन पर केंद्रित देस हरियाणा के अंक की योजना बनी। जिसमें साहित्यिक के साथ-साथ खेती से जुड़े शांधार्थियों, वैज्ञानिकों, आंदोलनकारियों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की विविध विधाओं में शोध व अनुभवपरक रचनाओं को शामिल किया है।

देस हरियाणा का किसान विशेषांक आपके हाथों में सौंपते हुए अपार खुशी हो रही है। जिस कुशलता से कृष्ण कुमार ने इस अंक के संपादन किया है उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। उनका धन्यवाद। आशा है ये अंक आपको पसंद आयेगा।

सुभाष चंद

कृषि संकट
कम्पनियों के लाभ और किसानों के कर्ज

कृष्ण कुमार

कृषि हमारी जैविक और सामाजिक आवश्यकता है। धरती पर जब तक मानवीय जीवन है और रहेगा, तब तक कृषि मनुष्य की सारी गतिविधियां का केंद्र बिंदु रहेंगी।

भारत की अधिकांश आबादी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से खेतीबाड़ी व उसकी गतिविधियों से जुड़ी हुई हैं। यह उसकी सामाजिकता, सौंदर्य चेतना और संस्कृति का आधार है।

वर्तमान समय में खेती-किसानी बहुआयामी संकट से गुजर रही हैं। कृषि क्षेत्र में अंधकार है। खेती घाटे का सौदा है। इस क्षेत्र में फैली बदहाली और नाकामी का आलम ये है कि कोई किसी को कैरियर के रूप में खेती करने की सलाह नहीं देता। स्वयं किसान अपने बच्चों को भी नहीं। किसानों की औलादें अपने बाप-दादाओं से सुनते हुए जवां होती है- 'माट्टी में माट्टी होग्ये थाम तो कुछ कर ल्यो'। यहां कुछ से मतलब दूसरा पेशा अपनाने से है।

कृषि संकट का कारण है सरकारी उपेक्षा के चलते फसल की कीमत लागत से कम होना और इसे पूरा करने के लिए किसान का कर्ज के जाल में फंसते चले जाना। इसके साथ डब्ल्यू.टी.ओ. के दबाव में सरकार का जिन्सों की खरीद और भंडारण से पीछे हटाना, प्राकृतिक आपदाएं, बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते, भूमि अधिग्रहण की नीतियों ने इस संकट को ओर गहरा दिया है। किसानों की धार्मिक कर्मकाण्डों में आस्था और अज्ञानता, उपभोक्तावादी जीवन शैली तथा महंगी शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के लिए कर्ज निरंतर बढ़ रहा है। खेतीहर समुदाय का दर्द और सत्य इस ब्रह्मवाक्य में जाहिर होता है-'कर्ज में जाम्मे थे, कर्ज मैं मरज्यांगे।' इन परिस्थितियों से मुक्ति संभव नहीं है। 'एक पूछै एकन सों कहां जाई का करिं।'

किसी क्षेत्र का लाभपरक और गैर लाभपरक होना सरकारी नीतियों पर निर्भर करता है। योजना आयोग ने विजन 2020 में यह लक्ष्य निर्धारित किया है जीडीपी में कृषि का हिस्सा 14 प्रतिशत से घटाकर 6 प्रतिशत तक लाना है। 2012 में राष्ट्रीय विकास परिषद् में बोलते हुए डा. मनमोहन सिंह ने कहा था कि किसानों की प्रति व्यक्ति आय तभी बढ़ेगी, जब खेती से कम से कम लोग जुड़े हों। हमारा रास्ता खेती से उद्योगों की ओर जाता है, लेकिन मुनाफाखोरी के चलते उद्योगजगत बड़े पैमाने पर अपने कर्मियों की छंटनी कर रहा है। उद्योग 65 करोड़ लोगों की बात तो छोड़िए, एक करोड़ लोगों को भी रोजगार देने की स्थिति में नहीं है।

विश्व व्यापार संगठन और उदारीकरण की नीतियों के चलते कृषि क्षेत्र में बहस खाद्य बनाम व्यापार की शुरू हो गयी है। अब खाद्यान्न उत्पादन का मतलब स्थानीय जरूरतें नहीं, बल्कि वैश्विक जरूरतों और निर्यात बाजार के लिए माल तैयार करना है। चाहे उसका प्रयोग भोजन की जगह एथेनॉल और बायोडीजल बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाए या मांस पैदा करने के लिए पशुआहार के रूप। भारत में प्रतिवर्ष खाद्यान्नों की तुलना निर्यातोन्मुख फसलों में 10 गुना वृद्धि है। ताज्जुब नहीं कि आने वाले दिनों में हमारे लिए गेहूं का उत्पादन आस्ट्रेलिया और अमेरिका करे, तेल मलेशिया और इंडोनेशिया से आयात किया जाए और दालें मोजाम्बिक में पैदा हों।

यह किसी सम्प्रभु राष्ट्र के लिए शर्म की बात है कि अपनी जनता के दो जून के भोजन के इंतजाम के लिए वैश्विक अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव या विकसित देशों की सदिच्छा पर निर्भर हो। यह मसला केवल खाद्य सुरक्षा दृष्टि से नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा दृष्टि से भी अहम् है।

कृषि क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय निगमों की बढ़ती हुई दखलदांजी, एफडीआई निवेश, लैंड हार्डिंग की प्रक्रिया और सरमायेदार फार्मरों ने मिलकर कार्पोरेट खेती के लिए रास्ता प्रशस्त किया है। इन नीतियों के तहत जिस नये ढंग की खेती का प्रचार किया जा रहा है। वहां छोटी जोत के किसान के लिए कोई जगह नहीं है। भारत में 85 प्रतिशत किसानों पर 2 एकड़ से कम जमीन है। आंकड़े बताते हैं कि छोटे किसान गैर संस्थागत स्रोत/साहूकार से 95 प्रतिशत ऋण लेते हैं। सरकार की ओर से कर्ज माफी, सरकारी सब्सिडी, संस्थागत खर्च, प्रोत्साहन और सहूलियतों का लाभ बड़े किसान को मिलता है। खुदकुशी करने वालों में बड़ी संख्या में छोटे किसान हैं।

खेती किसानी का संकट हरित क्रांति के दर्शन और सीमाओं से भी जुड़ा हुआ है। हरित क्रांति ने देश को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाने तथा 70 व 80 के दशक में रिकार्ड अन्न उत्पादन हासिल करने में हमारी मदद की। जय जवान और जय किसान के नारे लगने लगे। लेकिन शीघ्र ही, यह उत्पादन के लिए महंगे इनपुट की मांग करने लगी। अब उत्पादन अपने अंतिम पड़ाव पर आ पहुंचा है और इसे कायम रखने के लिए लागत दर बढ़ रही है। परिणामस्वरूप ट्रैक्टर, ट्यूबवैल का सामान, खरपतवार कीटनाशक, रासायनिक उर्वरक और बीज बनाने वाली कम्पनियों का लाभ और किसानों पर कर्ज एक साथ बढ़ रहा है।

कृषि को अपनाकर अधिकांश बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, मोंसान्टो, डाऊ, सिन्जैन्टा बास्फ, डुपार, कारगिल सहूलियतें महसूस

कर रही हैं और हरित क्रांति के मॉडल को अपनाने वाले राज्यों में किसान ज्यादा आत्महत्याएं कर रहे हैं। समय के साथ यह विशुद्ध बाजारवादी व्यवस्था सिद्ध हुई, जिसने किसानों की फसलों और बीजों को अपने नियंत्रण में ले लिया, अब किसान ग्राहक है और कम्पनियां मालिक हैं।

अंधाधुंध रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों के प्रयोग ने हमारी मिट्टी, भूमिगत पानी और हवा को जहरीला बना दिया। इससे हमारी खाद्य श्रृंखला व प्राकृतिक वातावरण प्रभावित हुआ। शोधकर्त्ताओं और वैज्ञानिकों का अध्ययन बताता है कि हरित क्रांति से जुड़े राज्यों में स्वास्थ्य संबंधी गंभीर बिमारियां जन्म ले चुकी हैं। पंजाब इसका उदाहरण है, जहां कैंसर दर अधिक है। पारिस्थितिक संकट और लागत की दर से अब यह प्रौद्योगिकी वरदान की बजाय अभिशाप लगने लगी।

हमारे कृषि विश्वविद्यालयों, सामाजिक चिंतकों और राजनेताओं ने कृषि क्षेत्र की चुनौतियों और उससे जुड़ी समस्याओं को इस माडल के दायरे में ही समझने की कोशिश की। किसी और विकल्प पर ध्यान नहीं दिया। हम अपनी पारम्परिक समझ, जैव विविधता व ज्ञान को स्वदेशी पद्धतियों पर विश्वास खोते चले गए और मानसिक रूप से पंगु हो गए। अब यह प्रौद्योगिकी अपनी कीमत वसूल रही है और हमारे पास विकल्प बहुत सीमित हैं।

इस देश के योजनाकार, नौकरशाह, आर्थिक विशेषज्ञ, जनप्रतिनिधि, एनजीओ, मीडियाकार और तथाकथित विकास पुरुष कोई भी किसानों और उसकी समस्याओं को समझना नहीं चाहता। उनकी नजरों में किसान वोट बैंक, बातचीत का विषय, रिसर्च-प्रोजैक्ट पूरा करने की सामग्री और माल से अधिक नहीं है। कोई उन्हें जैविक खेती करने की सलाह दे रहा है, कोई उन्हें अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपनी फसल बेचने की नसीहत दे रहा है, कोई उनके खेतों तक सड़क बिछाने की बात कर रहा है, कोई उनके खेतों के लिए मैप तैयार कर रहा है।

प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल नष्ट होना तो समझ में आता है, लेकिन जब मेहनत और मशक्कत से फसल का उत्पादन करता है, तो खरीददारी के अभाव में औने-पौने दाम मंडी में निपटा आता है या सब्र का घूंट भरकर सड़क के किनारे फेंक देता है।

हमारे राष्ट्रीय अगुओं और रहनुमाओं के भी इस समुदाय की हालात को जानने की कोशिश नहीं की, जिसकारण आज वह अपना मलमूत्र खाने के लिए विवश हो गया है। संभवत: मानवीय इतिहास ऐसी शर्मनाक घटना दूसरी न मिले, यह हमारे लिए राष्ट्रीय कलंक की बात है। सोशल मीडिया पर चिपके रहने वाले सभ्य समाज ने इस पर कोई मुहिम चलाई या कितने ट्वीट किए? दरअसल किसान न किसी की प्राथमिकता में शामिल है और ना किसी की पसंद है।

किसानों की आत्महत्या में कोई ग्लैमर नहीं, इसलिए मीडिया में कोई स्टोरी भी नहीं। किसान के संकट, उनका परिवेश और जीवन पद्धति मीडिया कवरेज से बाहर है। रैम्प पर कैटवाक करती सुंदरियों की चाल पर ही उसके कैमरे चमकते हैं। महंगी गाड़ियां, आलीशान मकानों की चाहत रखने वाले, नित नये कपड़ों और मोबाइल के नये वर्जन के लिए लालायित नवधनाढ्य वर्ग ही कवरेज का पसंदीदा क्षेत्र है।

उद्योगों को करोड़ों रुपयों की छूट और रियायती दर पूंजी उपलब्ध करवाई गई और जब मूल लौटा ना पाए तो एक खूबसूरत तरकीब निकाली गई, जिसका नाम है एनपीए। किसानों के लिए जरा सी छूट और कर्ज माफी की बात हो तो पूरे देश में हायतौबा मच जाती है।

नये अनुबंधों के आधार पर अब उन्हें करोड़ों डालर की सब्सिडी पाने वाले विकसित देशों के किसानों के उत्पादों से मुकाबला करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अकेला छोड़ दिया है। इसका परिणाम पहले से ही तय है।

आज जल जंगल और जमीन के लिए करोड़ों लोग संघर्षरत हैं। भूमि अधिग्रहण के जरिए उन्हें अपनी जड़ों से खदेड़ा जा रहा है। विस्थापन की सबसे ज्यादा मार आदिवासियों पर पड़ी है। आदिवासियों और छोटे किसान का भविष्य ओर संघर्ष एक समान है। आज किसान आंदोलन के अनेक मुद्दे हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य, डब्ल्यूटीओ की नीतियों में बदलाव, प्राकृतिक आपदाओं के कोश, फसली बीमा, जमीन की उर्वरकता बढ़ाने के लिए बिजली, पानी और नई तकनीक व्यवस्था, कृषि अनुसंधान, फसल भंडारण की सुविधा, रियायती ऋण, कृषि को उद्योग का दर्जा, किसान बीमा और पैंशन। सांगठनिक तौर पर किसानों को एक होने की जरूरत है और नागरिकों से उम्मीद है कि इस समस्या का समाधान निकालने में किसानों को सहयोग और समर्थन दे।

इस अंक की सामग्री संजोने का काम देस हरियाणा की टीम ने किया। अंक के दौरान देस हरियाणा की टीम का सहयोग बराबर मिलता रहा। अपनों के लिए धन्यवाद क्यों। अंक आपके हाथ में है, आशा है आपको पसंद आएगा और प्रतिक्रिया का इंतजार है।

कृष्ण कुमार

-अपील-

- *देस हरियाणा सामाजिक-सांस्कृतिक पत्रिका है। पूर्णत: अव्यवसायिक, अवैतनिक पत्रिका है, जिसे किसी तरह का अनुदान प्राप्त नहीं होता है। यह पूर्णत: पाठकों तथा पत्रिका सहयोगियों के संसाधनों से प्रकाशित होती है।*
- *रचनाकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से विशेष अनुरोध है कि पाठकों को पत्रिका से जोड़ें। पत्रिका के लिए अपने शहर में बिक्री का स्थान चिन्हित करके सूचित करें, ताकि पत्रिका पहुंचाई जा सके।*
- *रचनाकारों से निवेदन है कि अपनी रचनाएं भेजें। यूनिकोड, चाणक्य, कृतिदेव फोंट में ईमेल द्वारा सामग्री भेजें तो सुविधा होगी*

फूली

❒तारा पांचाल

उचटी नींद के ऊल-जलूल सपने और उन सपनों के शुभ-अशुभ विचार। दुली के परिवार में कुछ दिनों से ऐसे ही सपने देखे जा रहे थे। कभी-कभी ये सपने लाल मिर्च की चटनी जैसे चरचरे होते। इस के विपरीत कभी-कभी काली लाल चाय से भी मीठे लगते। आखिरकार सभी सपने सामने बंधी फूली पर खत्म होते। फूली अगले महीने आसुज (आश्विन) में ब्याने वाली है। इसी के साथ वह सूखी रोटियों पर रखी चटनी को मक्खन में बदल देगी। साथ ही लाल-काली चाय को गाढ़ी और दूधिया बना देगी।

किसानी गांव में किसी की अच्छी फसल या अच्छे पशु का जिक्र होता ही है। दूली की भैंस की चर्चा भी हर जगह थी। नल पर, बिटोड़ों में, हर जगह उसी की भैंस का जिक्र था। जहां भी औरतें इकट्ठी होतीं, भैंस की बात चल पड़ती। भैंस के साथ दूली की बहू का जिक्र आता। वे कहतीं-'इतनी मेहनती लुगाई हम ने आज तक नहीं देखी।' कई पुरुष तो अपनी पत्नियों को डांटने लगे थे। कहते-'डंगर-ढोर नहीं संभालने आते हों, तो दूली की बहू से सीख कर आओ।'

गांव में भैंसों के व्यापारी आते। उन्हें भी सबसे पहले दूली की भैंस ही दिखाई जाती। दलाल बता देते थे कि वो बेचना नहीं चाहते। पर साथ ही यह भी कहते कि एक बार देखने में क्या हर्ज है। शायद उन का विचार बदल गया हो। बहुत ही गरीब हैं। कब तक ऐसी कीमती भैंस को नहीं बेचेंगे। भैंस को देखते ही व्यापारी ईर्ष्या से भर उठता। काश! यह भैंस उसके घर के खूंटे से बंधी होती। चौड़े पुट्ठे, लंबी पूंछ, गोल-गोल छोटे सींग। इन से भी बढ़ कर भारी आकार लेती बाख पर लटकते अंगूठों जैसे एकसार चार थन। व्यापारी के पूछने के पहले ही दूली की बहू बोल उठती-'ना, हम नईं बेचते।' यह सुनने के बाद भी वे भैंस की चिकनी काली चमड़ी पर अपना हाथ फिराते। चिकनाई के कारण उन्हें हाथ फिसलता हुआ मालूम देता। खूंटे की ओर जाकर वे गोलाई पकड़ रहे सींगों को देखते। उसके माथे पर खिली कपास के फाहे जितने सफेद फूल को निहारते। उस पर अपनी रुपए गिनने वाली अंगुलियां फिराते। जाते-जाते भी एक-दो बार मुड़ कर अपनी ललचाई-व्यापारी नज़र फूली पर जरूर डालते।

अंधेरा होने पर दूली शहर से दिहाड़ी कर के लौटता। साइकिल खड़ी करके सब से पहले भैंस के पास जाता। उस पर हाथ फिराते-फिराते वह सुनता-'आज फिर कोई व्यापारी आया था, फूली के लिए। मुंह-मांगे दाम देने को तैयार था।' दूली गर्व से भर जाता। उसकी दिन की थकान गायब हो जाती।

दूली सोचता कि कितना हंसा था वह हडियल कटिया को देख कर। हंसी तो बड़ी बेटी भी थी। लेकिन वह बड़ी थी, जल्दी ही मां की ओर हो गई। छठी में पढ़ने वाली छोटी बेटी और आठवीं में पढ़ने वाला बेटा बापू की ओर रहे। उन्होंने कई दिनों तक उस मरियल-हडियल कटिया का मजाक बनाए रखा। हंस-हंस कर लोट-पोट होते हुए उन्होंने कटिया का नाम ही गिफट रख दिया था। मामा का प्यारा-प्यारा गिफट (गिफ्ट)।

अड़ोसी-पड़ोसी भी दूली की बहू का मजाक उड़ाने लगे थे-

'जैसी हडियल आप, वैसी ही कटिया ले आई।'

'तेरे पीहर में सब कुछ ऐसा ही होता है क्या?'

'दूली जब आज तक तेरे हाड नहीं ढक सका, इस को क्या झोटी बनाएगा?'

ऐसी बातों के चलते दूली की बहू को अपने निर्णय पर पछतावा-सा होने लगता। सोचती कि यह मैंने क्या मांगा? भाई पक्की नौकरी में है। शहर के एक कालेज में चौकीदार है। उसने गांव में अपना पुराना घर गिरा कर दो पक्के कमरे बनवाए हैं। पक्के लैंटर वाले। चिनाई लगते ही उसने बहन को बुला लिया था। नींवों पर चौखट रखी तो रिवाज के अनुसार बहन से चौखटों पर तोते बंधवाए गए। बहन ने गोटा लगे हरे कपड़े के तोते बना रखे थे। बड़े चाव से बारी-बारी उन्हें मौली के धागों से चौखटों पर लटका दिया। इसी के साथ उस की कल्पना में भाई से मिलने वाला संभावित सगन घूमने लगा। मकान पूरा हुआ। भाई ने खुश हो कर बादशाह की तरह कहा-'मांग बहन! क्या मांगती है तोता बंधवाई का?' बहन को भाई की हैसियत का पता था। भाई ने ये दो कोठड़ियां भी इधर-उधर से जुगाड़ कर के बनवाई हैं। उनमें भी काफी काम अधूरा पड़ा है। खिड़कियों को फिलहाल बोरियां लटका कर ढक दिया है। फर्श भी नहीं डलवाया। नीचे से गोबर से लीप कर रहने लायक बना लिया है। वह भाई पर बोझ नहीं डालना चाहती थी। उसे पता था कि भाभी अपने संदूक से अच्छे-हल्के पांच सूट तो जरूर देगी। फिर क्यों न भाई से सौ-दो-सौ रुपए लेने की बजाए कटिया ले ली जाए। पल जाएगी।

इस कटिया की मां भी अच्छी बणत की खूब दूध वाली भैंस थी। नींव खुदवाने के समय ही भाई को उसे बेचना पड़ा। कटिया तब एक वर्ष की थी। बहन को इस हडियल कटिया में सरर्र-सरर्र बाल्टी भरने वाली भैंस नज़र आई। वह भगवान जैसे भाई से मांग लाई कटिया, वरदान की तरह।

हिम्मती इतनी कि कई कोस पैदल चल कर आई। कभी भागती के साथ भागती। कभी रुकती को पीछे से धकियाती। कभी गले की रस्सी खींचती। इस तरह उस ने कटिया घर ला छोड़ी।

जितना मजाक होता गया उतना ही उस का निश्चय पक्का होता गया। मन-ही-मन सोचती कि इसे ही पाल कर तगड़ी झोटी बना कर दिखाऊंगी।

जेठ के महीने की तपती दुपहरिया।

गेहूं कटने के बाद खेत खाली सुनसान पड़े होते। दूर-दूर तक आदमी का नामो-निशान नहीं होता। धूल भरी लूएं चलतीं। ऐसे में राहगीर खेतों के बीच हिलती-डुलती मानुस-जात की परछाई को देखते। वे बड़ी हैरानी से सोचते कि इतना हिम्मती ये कौन है? लेकिन जानने वाले सहज ही अंदाजा लगा लेते थे। उन्हें भरोसा होता था कि यह दूली की बहू ही होगी। वही अपनी हडियल कटिया के लिए खेत-खेत, मेंढ़-मेंढ़, नालों-खालों के किनारे हरा ढूंढती फिरती है। कटी गेहूं की तीखी कीलों जैसी फांसों से पैर फुड़वाती। छोटी सख्त घास को निकालते हुए हाथ छिलवाती। अपने सिर की चुन्नी की झोली को एक-एक तिनके से भरती। इस तरह सांझ तक वह गठरी-भर चारा इकट्ठा कर लाती थी।

वह सोचती कि काश! उसकी भी अपनी कोई छोटी-मोटी क्यारी होती। फिर उसे यूं किसी के खेत में क्यों भटकना पड़ता! वह अपनी क्यार में ज्वार-ग्वार बीजती। अपनी कटिया को हरा-चारा, कचिया-कचिया चारा चराती। वह खूब जुगाली करती और झटपट बाल्टी भर दूध....।

दूली ने भैंस के दोनों ओर कई बार हाथ फिराया। कुरता निकाल कर औसारे की छान से बाहर निकले बां पर टांग दिया। फिर बूढ़ी मां के खटोले के पास पड़ी खटिया पर पसर गया। दूली की बहू चूल्हे पर रोटी बना रही थी। बेटे ने चूल्हे के पीछे से हुक्की उठाकर ताजा कर दी। फिर चिलम भर कर हुक्की बापू को पकड़ाई और उसी के साथ सट कर बैठ गया। थोड़ा रुक कर वह अबोधपन के साथ बोला-'बापू! आज एक बपारी आया था अपनी फूली को लेने। उसकी कमीज के नीचे पहनी हुई बनियान की जेबें भरी हुई थीं। कमीज दो-तीन जगह से उठी हुई थी। मां जितने रुपए मांगती, वह दे देता। बिल्कुल तैयार था।'

वह कुछ कहता, इससे पहले ही औसारे से सवाल आया-'पैसे ले आया क्या? तूड़ी वाले को आज जरूर देने हैं।'

'नहीं! आज ठेकेदार नहीं मिल पाया। कहीं बाहर गया हुआ था। कल मिल जाएंगे।' कह कर दूली ने चिलम में चिमटी मार कर अंगारियां इधर-उधर हिलाईं। फिर तमाखू को सुलगाने के लिए छोटे-छोटे कश खैंचने लगा। दूली की कल्पना में नोटों की गड्डियां आने लगीं। बेटे की बात बीच में ही रह गई।

'अब मैं क्या करूं? असल में तो वो अभी आ जाएगा। नहीं तो सबेरे तेरे जाते ही आ धमकेगा। बाहर गली में मोटर साइकिल पर चढ़ा-चढ़ा टीं-टीं करता रहेगा। खैर, उस का भी क्या कसूर है। दस गठड़ी तूड़ी के पैसे हम दो बार में भी पूरे नहीं कर पाए। तूड़ी खत्म भी होने वाली है। करार पर पैसे दिए जाते तो आगे भी....तेरे इस ठेकेदार को भी आज ही बाहर जाना था।' दूली की बहू निराशा और लाचारी से फूंकनी पटकती हुई बोली। दूली चुपचाप सुनता रहा। घरवाली ने बात जारी रखी-'एक बोरी गोसे के पैसे लीलू की मां से लेने हैं। वो अभी नहीं दे रही। एक बोरी के मगनी की बहू से पहले लेने थे। एक आज भरवा कर ले गई है। वो भी पैसे अभी नहीं देगी। मास्टरनी से मैं ले नहीं रही। कुछ दिनों में उस के पीहर से बाजरा आएगा। कह रही थी कि भैंस के ब्यांत पर परात-भर दे देगी। थोड़ा-बहुत गुड़ भी देने की हां कर रखी है। उससे पैसे ले लिए तो एकदम ब्यांत के टैम चाहने वाली ये चीजें कहां से लाएंगे?'

दूली का तमाखू ठीक से नहीं सुलगा था। मजा नहीं आया। वह नहाने के लिए उठ गया।

कच्चे आंगन में तूतड़ी (शहतूत) का पेड़ खड़ा है। उसी के पास नहाने-धोने के लिए आठ-दस ईंटें टिकाई हुई हैं। दूली दिन भर का रेत-सीमेंट-मिट्टी गात से छुड़ाने के लिए रगड़े लगाता है। गिलास के साथ पानी डालता हुआ वह कुछ-न-कुछ कहता रहता है। सुनता रहता है। दिन-भर बाहर रहने के कारण यही थोड़ा-सा समय होता है बोलने-बतलाने का।

'टोकरे वालों पर जा आती....कुछ दे दें तो...!' दूली ने गले पर रगड़ने के लिए गर्दन उठाई थी। नज़रें ऊपर तूतड़ी पर गईं और उसे टोकरे वाले याद आ गए। वे टोकरे बनाने के लिए फागुन में तूतड़ी छांग कर ले गए थे। उन का और कोई कारोबार तो है नहीं। शहतूत की लचीली टहनियों के टोकरे, टोकरियां, बोहिए बना-बेच कर ही गुजारा करते हैं।

'वो बेचारे भी अपने जैसे हैं। फिर भी एक-दो बार जब भी गए हैं, उन्होंने पांच-दस दिए ही हैं। मैं कल खुद गई थी। उन की एक बड़ी औरत मिली थी-काली-सी....। स्यात उन की मां हो या घर की सब से बड़ी बहू। वह कह रही थी कि थोड़ी-सी गेहूं ले जाना। कुछ लगी हुई (सुरसी की खाई हुई) है। किसी ने उन्हें टोकरों के बदले काफी सारी दे दी। बोली कि भैंस को दलिया बना कर देने का यह सही टेम है। दलिए के साथ दो-चार सेर सरसों का तेल भी दिया जाए तो ठीक रहेगा। ब्यांत भी सही रहेगा और दूध भी बढ़ेगा। कह रही थी कि बहू! भैंस का और चाक्की का एक हिसाब होवे। जो डालोगे, जैसा डालोगे, वैसो ले लोगे। हम खुद इस गेहूं का दलिया खा रहे हैं। घर से पूछ लेना और सलाह बने तो ले जाना, बहू!'

दूली पूरा जोर लगा कर बोला, 'रहने दे। राशन काट की ले जाएंगे।'

'तू बस राशन काट का नाम न लिया कर। डीपू वाला तेरा बाप लगता है या मेरा? जैसे जाते ही बोरी उठवा देगा। कहेगा - कोई बात नहीं....पैसे नहीं हैं तो फिर आ जाएंगे। बड़े खुश हुए थे पीला राशन काट बनवा कर। जैसे कि सरकार से तनखा बंध गई हो। चूल्हे में फूंक दे इसे। एक रोटी तो सिकेगी।'

दूली सुन रहा था और रगड़े लगा रहा था। बाद की सारी बात उसने दो-चार गिलास पानी के साथ हरि ओम....हरि ओम में घोल दी।

पत्थर-से कानों वाली बूढ़िया को जैसे पैसों की बात सुन गई। उसने अंदाजा लगा लिया कि ऐसे में पैसों की ही बातें हो सकती हैं। खटोले पर पीठ रगड़ते हुए वह बोली-'दूली रे! मेरी माने तो बेटा इसे बेच दे। जीते जीव का क्या धन (पूंजी)। जब तक सांस तब तक आस। सांस गई तो चमड़ा और हाड। पर ब्याने के बाद बेटा, थन, दूध, बच्चा, सुभाव- सब का तोल-माप होवे। उसी के हिसाब से पैसे लगैं। बाकी थारी मर्जी बेटा।'

दूली की बहू ने कुछ घबराई-सी आवाज में मात्र इतना कहा-'इसे ऐसी ही माड़ी बातें सूझती हैं।'

लेकिन इस तरह की बातें दूली या दूली की बहू के लिए नई नहीं थी। गांव में ऐसी घटनाएं आम तौर पर सुनने में आती

रहती हैं। पली-पलाई भैंसें एकदम यूं खूंटा खाली कर जाती हैं कि विश्वास ही नहीं होता। मरने के बहाने-कारण ही चर्चा में रह जाते हैं। जोहड़ में पानी के साथ मेंढकी पी गई थी। चारे के साथ कोई जहरीला कीड़ा खा गई थी। ब्यांत में गर्म-सर्द हो गया था। पेट में बच्चा उलटा हो गया था और यह तो अक्सर हो जाता है कि बच्चा मरा हुआ जन्मा, कीमत आधी। बच्चे को थनों से नहीं लगाया, कीमत कम। कोई थन सिंकुड़ गया या मारा गया, तो कीमत कम। दूध कम हुआ तो उसी के हिसाब से कीमत। मेहनत, आशाएं एक झटके में सब खत्म।

दूली का ध्यान फूली पर केंद्रित हो गया। सही पल गई थी, लेकिन अब वह संभालनी मुश्किल हो गई थी। बड़े-बड़े कहते सुने थे कि कमजोर के घर तगड़ी भैंस और घोड़ी कब तक रुकेगी? बिकेगी या छिनेगी (चोरी हो जाएगी)।

दूली नहाकर खाट पर आ बैठा। बाहर गली से कोई घोषणा जैसी आवाज सुनाई दी। उसने कुंडी-सोटे से खट-खट कर चटनी बना रही बड़ी बेटी को थमने को कहा। खट-खट कर रुकती तो गांव के चौकीदार की आवाज साफ सुनाई दी। वह कहता घूम रहा था-'कल दस बजे सवेरे चौपाल में 'लैकसनों' वाले आवेंगे। वोटों की फोटो खींचेंगी। जिसकी रहती हो खिंचवा लियो रै चौधरियो।'

'बणा ले बेटी फटाफट बणा ले। भूख लगी हुई है। मैंने सोचा कि स्यात कोई अपणे काम की बात हो।'

बेटी ने कुंडी में पड़े प्याज-नूण-मिर्च पर सोटे मारने की गति बढ़ा दी। वह बापू के साथ अधिक नहीं बोलती। जब दोनों छोटे बोल रहे हों तो यह चुपचाप उनकी ओर देखती रहती है। हां! बीच-बीच में धीरे से मां से जरूर कुछ कहती रहती है।

छोटों ने बापू की खाट पर पांयतों की ओर अपनी जगह बनाई हुई हे। बेटे की 'बपारी' वाली बात अभी अधूरी थी। उस ने चुभती-गड़ती पांयतों से उकसते हुए पूछा-'बापू! जितने रुपए हम मांगेंगे, बपारी उतने ही दे देगा?'

'नहीं देगा तो क्या होगा? बपारी अपणे घर राजी, हम अपणे घर और फूली अपणे खूंटे राजी।'

'फिर हम इतने रुपयों का क्या करेंगे?'

'हम....हम बेटा अपणे घर का बड़ा-सा गेट बणाएंगे। उस पर लिखवाएंगे 'गिफ्ट भवन', पंद्रह सौ पचास बटे अठारह, अर्बन स्टेट'। फिर मैं लेबर चौक से काफी सारे मजदूर लाकर अपणे आंगन को पक्का करवाऊंगा। नहाणे की पक्की चौकी बणवाऊंगा।.....और फिर हम बिजली की मिक्सी की चटनी से रोटी खाया करेंगे।'

गेट की बात, मकान का नंबर, अर्बन स्टेट सुन कर बच्चे हंसे। दूली पिछले 7-8 महीने से शहर में इसी नंबर के मकान में मजदूरी कर रहा है। फिर उन्होंने अपने घर के प्रवेश द्वार पर देखा। वहां तो किवाड़-गेट-थम्बी कुछ भी नहीं था। बाहरी पशुओं को रोकने के लिए केवल दो बल्लियां 'एक्स' बना कर अड़ा रखी थी।

'फिर तो बापू मैं गेट पर 'वैल्कम' लिखूंगा। मुझे वैल्कम लिखने में गुड़ मिलता है। और बापू फिर से गंठे (प्याज़) भी इकट्ठे ले आएंगे।....एक-एक, दो-दो रुपए के लाने पड़ते हैं.....। मां मुझे ही भगाती रहती है,' बेटे ने खुश होते हुए कहा।

'एक साइकिल ले लेंगे। मैं और तू दोनों साइकिल पर स्कूल जाया करेंगे। दीवाली पर मैं एक स्वेटर और फीतों वाले कपड़े के सफेद जूते लाऊंगी।' छोटी बेटी बेटे से भी ज्यादा खुश हो रही थी।

'मैं भी तो लाऊंगा।' बेटे ने छोटी को कोहनी मारते हुए कहा।

बड़ी बेटी चुपचाप उन की बातें सुने जा रही है। वह कुछ नही बोल पा रही। आखिर फूली की संभावित कीमत में उस का ब्याह भी तो शामिल है। इस बात का जिक्र वह मां-बापू के मुंह से कई बार सुन चुकी है।

'दे बेटी, रोटी सब को....। थोड़ी-थोड़ी चटनी रख दे....।' मां ने रोटी की राख दूसरे हाथ पर मारकर झाड़ते हुए कहा।

रोटी खाते हुए भी दूली फूली के बारे में ही सोचता रहा। बच्चों की बातें और फूली से जुड़ी आशंकाएं उस के दिमाग में घूमने लगीं। साथ ही तूड़ी के पैसे भी याद आने लगे। उसने एक दिन के लिए अपने मिस्त्री से भी पैसे उधार मांगे थे। लेकिन उस के पास भी पैसे नहीं थे। ऐसे में उसे खाली हाथ ही आना पड़ा। दूली की बहू घर के छोटे-मोटे खर्चे खुद ही चला लेती है। इसके लिए वह दूली को कभी नहीं कहती। बच्चों की पढ़ाई का भी सारा खर्च वही दे रही है। साथ ही अड़ी हुई है कि बच्चों को आगे तक पढ़ाएगी। वह दो घरों का गोबर उठाती है। आधे का हिसाब है। सुबह जाकर उनके डंगरों का गोबर-मूत सीतती है। सूखा करती है। तसलों में गोबर भर कर गांव से बाहर उन के बाड़ों में गोसे थापती है। सूखने पर आधे अपने घर ले आती है। बाकी आधों का उनका बिटोड़ा बनवाती (चिनती) है। बड़ी बेटी भी इस काम में उस का हाथ बंटवाती है। गांव में कई घर दुली की तरह ही भूमिहीन हैं और पशु नहीं रखते। उनमें से कई इसी से गोसे मोल ले कर अपने चूल्हों का काम चलाते हैं। लेकिन उनके पैसे ठीक से नहीं आ पाते। इसके कारण वह थोड़ा-बहुत ही काम चला पाती है।

दुली खुद शहर में दिहाड़ी पर जाता है। वह कई वर्षों से एक ही ठेकेदार के पास है। उस की एक साथ कई-कई कोठियों की चिनाई लगी रहती है। वह अपने मिस्त्रियों और लेबर को हफ्तावार पेमेंट करता है। दुली को एडवांस की किस्त काट कर थोड़े से पैसे मिलते हैं। इतने पैसों से चूल्हे पर चटनी-रोटी भी ठीक से नहीं चल पाती। साइकिल खराब हो जाए तो उसकी मुरम्मत भी चिंता में डाल देती है। अर्बन स्टेट में ईंट-गारा ढोता-ढोता वह बूढ़ा हो जा रहा है। वहां की कोठियां साल-भर में ही पूरी हो जाती हैं। बनने के बाद लगता है जैसे पूरी की पूरी मार्बल की बनी हों। वह समझ नहीं पाता कि कहां से आता है उन के पास इतना पैसा? ऐसे कौन से काम हैं जिन में इतना पैसा है? क्या वे लोग उस से ज्यादा मेहनत करते होंगे? खुद ठेकेदार ही उसके देखते-देखते लखपति बनता जा रहा है। जबकि वह सारा काम लेबर से करवाता है। यह भगवान की लीला है या इन आदमियों की?

मच्छर बहुत हो गए हैं। फूली के पास कोठियों से लाए लकड़ी के बुरादे से धुआं कर दिया गया है। वे खुद भी बीजणे ले-ले कर कोठड़ी में लेट गए हैं। हवा बिल्कुल नहीं चल रही। कोठड़ी में उमस और घुटन है। बच्चे संभवत: सो गए हैं। लेकिन वे दोनों धीरे-धीरे बीजणे हिलाते हुए पड़े हैं। बाहर बूंदा-बांदी शुरू हो गई

है।

इधर-उधर करवटें बदलने के बाद उसे लगा कि दूली अभी जाग रहा है। वह बोली-'कभी मां सही कह रही हो। बच्चों के दूध की तो दूर कभी यह घर भी अपना न हो पाए?' उसने अपने नीचे इकट्ठी हो रही पतली दरी को सीधा करते हुए कहा।

दूली जागता पड़ा था। वह भी वही सोच रहा था। अब तक फूली को लेकर तमाम शंकाएं दबी-दबी थीं। अब मां ने उन्हें शब्दों के रूप में सामने खड़ा कर दिया था। अपनी शंका बाहर से शब्द बन कर सुनाई दे तो ज्यादा परेशानी होती है। उस के अर्थ और ज्यादा दिक्कत पैदा करने लगते हैं। अब फूली की शंकाओं में यह घर वाली शंका भी शामिल हो गई थी।

दूली का घर देख कर कोई भी अचम्भे में पड़ सकता है कि इन्होंने गली पर कब्जा कर के घर बनाया हुआ है। पचहत्तर फुट लंबा और ग्यारह फुट से भी कम चौड़ा। इतनी तंग तो आजकल कोई गली भी नहीं रखता। लेकिन मिल गया था ठीक भाव में। बस, ये अपनी दड़बे जैसी पुश्तैनी कोठड़ी छोड़ कर यहां आ बैठे।

असल में यह तीन भाइयों का पैंतीस-पचहत्तर का एक बाड़ा था। छोटे भाई की शहर में नौकरी लग गई। जमीन-घर को लेकर तीनों में तकरार हो गई। तकरार इतनी बढ़ी कि वह दुश्मनी में बदलने लगी। छोटे भाई ने हर जगह के तीन-तीन हिस्से करवाए। बाड़े के बंटवारे में वह कुछ ज्यादा ही बदले की भावना से काम ले गया। भाइयों ने कहा था कि अपना हिस्सा दाएं या बाएं एक ओर ले ले। इस से उन दोनों का इकट्ठा बड़ा हिस्सा रह जाता। परन्तु वह नहीं माना। उस ने अड़ कर बीच वाला हिस्सा ले लिया। तीन हिस्से, तीनों गली जैसे। वह यह भी नहीं चाहता था कि उस का हिस्सा खाली पड़ा रहे। उसे डर था कि कहीं भाई उस पर कब्जा न कर लें। दूली पांचवीं तक उस के साथ पढ़ा था। फिर वह स्कूल छोड़ कर गांव के ही एक जमींदार का सीरी लग गया। इसके बाद भी इनके बीच बराबर राम-रमैया बनी है। जब भी मिलते एक-दूसरे की राज़ी-खुशी पूछने के लिए जरूर रुकते। उसने दुली को इस हिस्से का मालिक बनने के लिए कहा। दूली ने अपनी गरीबी के चलते लाचारी जताई। इस पर वह बोला-'दुली! अब तू गरीब कैसे है? तेरी झोटी पल रही है। तू आ कर बैठ जा इस घर में। कोई ना-वा नहीं। आधे पैसे झोटी के ब्यांत पर दे देना। बाकी के चार सालाना किस्तों में पूरे कर देना।'

डरते-डरते दूली की बहू ने भी उस की हिम्मत बढ़ा दी-'देखा जाएगा, ले ले।' और ये यहां आ बैठे। कब्जा लेने से पहले दूली ने भाइयों की सहमति ले ली थी। भाइयों के पास भी और कोई चारा नहीं था। उन्होंने दुली को उदासीन-सी सहमति दे दी। इधर, इन्होंने अपने हिस्सों में भी रूचि लेना छोड़ दिया था। अब सुना है कि वे यहां अपनी कारें खड़ी करने के लिए गैराज बनाएंगे।

जिस कोठड़ी में ये अब पड़े हैं, वह बरामदेनुमा एक-कड़िया जगह है। यह छोटे भाई ने अपने पशुओं को बांधने के लिए बनाई थी। बिल्कुल कामचलाऊ-सी। दुली ने कुछ ईंटें जोड़ कर चौखट खड़ी कर के इसमें किवाड़ लगा लिए। हिस्सा लेने के समय जो कंधोड़ी (छोटी व कच्ची-पक्की दीवार) वह खींच गया था, वहीं यूं की यूं हैं। चूल्हे के लिए छान डाल कर छोटा सा औसारा बना लिया। इस में चूल्हे के साथ थोड़ा-बहुत ईंधन रखने की जगह भी बना ली। इस के बाद भी मां के छोटे-से खटोले के लिए जगह निकल आई। पुश्तैनी घर में फूली गली में बांधनी पड़ती थी। दूली और उसका बेटा कुछ दूरी पर खंडहर होती एक हवेली में जा सोते थे। यह हवेली सुनसान पड़ी रहती थी। इसके मालिक वर्षों पहले गांव छोड़कर दिल्ली चले गए थे। वहां वे अब करोड़पति हैं। इस की छतें लगभग सारी गिर चुकी है। थोड़ी-बहुत आधी-पराधी बची हैं और गिरने वाली हैं। वहीं दूली ने कुछ जगह अपनी भीड़ी सी खाट के लिए सुरक्षित कर ली थी। बरसात में हमेशा छत गिरने का डर रहता। इसी डर से दूली ने कई रातें हवेली में अधजगी बिताई थीं।

अब वे सब इक्टठे एक कोठरी में सोते थे। केवल मां का खटोला बाहर रह जाता है। कोठरी में केवल तीन खाटें ही आ सकती हैं। एक पर दूली बेटे के साथ सोता है। दिन-भर काम कर के बड़े होते बेटे के साथ वह बढ़िया नींद नहीं ले पाता। एक पर दोनों बेटियां सोती हैं। दोनों में काफी धक्का-मुक्की होती रहती है। यहां तक कि वे दोनों नींद में भी लड़ती हैं-

'तू मेरे ऊपर पड़ी है'

'मैं कहां, तू मेरे ऊपर लातें रखे हुए है। तेरी ओर जगह ज्यादा है। तू उधर हो ले।'

'नहीं होती जा.....।'

खाटों की हालत भी कुछ ठीक नहीं है। केवल दूली की खाट ही कुछ ठीक है। बाकी दोनों तो झोली की तरह हुई पड़ी है। वह भी बूढ़ी मां ने सांठ-गांठ कर किसी तरह अटकाई हुई है। वह स्वयं एक दिन पूरी हसरत के साथ दुली से कह बैठी-'बेटा सारी उम्र गुज़र गई खटोले पर गोडियां मोड़ कर सोते हुए। अब तो एक खाट बनवा दे मेरी। बुढ़ापे में तो पांव पसार कर सो कर देख लूं।'

दूली ने हाथ से उसकी ओर 'कुछ दिन ठहर जा' का इशारा कियाथा। साथ ही फूली की ओर भी हाथ किया था कि इसे बिक जाने दे, फिर देने के लिए नया पलंग बनवा दूंगा।

'अच्छा बेटा, भगवान तुझे लंबी उम्र दे' मां ने लंबी सांस भर कर कहा था। इसके साथ ही खुद भी बड़ी उम्मीदों से फूली की ओर देखा था।

मां के लिए खाट की वह कभी नहीं सोच पाया। लेकिन दो खाटों के लिए नए बान लाने की उस ने कई बार सोची। पर वह भी नहीं ला पाया। इस तरह खाटें भी फूली के बिकने की प्रतीक्षा में ही हैं।

कोठरी का मुंह भी उत्तर में है। पुरवा-पछवा कोई भी हवा कोठरी में नहीं लगती। इसी वजह से बाहर बूंदा-बांदी शुरू होने के बाद भीतर घुटन और बढ़ गई है।

इस के बावजूद एक तरफ फूली के लिए छान डल गई है। साथ में तूड़ी के लिए छोटी-सी छतड़ी बना दी गई है। आंगन के बीच में तूतड़ी का पेड़ गर्मियों में छांव देता है। सर्दियों में धूप में बैठने को फिर भी काफी आंगन बचा रहता है। चौमासे में दिक्कत कुछ बढ़ जाती है। पूरा आंगन गारा-गारा हो जाता है। यही नहीं, इसमें केंचुएं भी निकल आते हैं। वे पूरे आंगन में लकीरें बनाते हुए चूल्हे तक आ पहुंचते हैं

दूली यही सब सोच रहा था। दूली की बहू ने फिर दोहराया-'कभी यह इतना अच्छा घर भी हाथ से न निकल जाए! बड़ी मुश्किल से घर वाले हुए हैं।...ये

ठीक-ठाक ब्या जाए, बस। केवल पंद्रह-बीस दिन बच्चों को दूध की डकारें दिलवा कर इसे बेच देंगे....।' मां की बातों से उपजी शंकाएं उनका पीछा नहीं छोड़ रही थीं।

दूली ने हंसी जैसी हं-हं के साथ कहा-'सपने तो सभी को बुरे-बुरे आ रहे हैं। बाकी देखो। बच्चों के करम में दूध और घर होगा तो सब ठीक बीतेगा।'

मां की बात के साथ-साथ सपनों की बातें भी इन्हें परेशान कर रही हैं। कल बड़ी बेटी ने सुबह उठते ही बताया था-'ऐसा सपना आया जैसे कि एक औरत मुझे बहुत बढ़िया कढ़ाई वाला सूट दे गई। मैंने वह सूट दरियों में छिपा दिया। थोड़ी देर बाद देखा तो सूट वहां नहीं मिला। मैं खूब रोई। खूब रोई।'

आज बेटे ने बताया कि गांव के मंदिर में गुलगुले बंट रहे थे। उसने झोली-भर कर गुलगुले लिए और चल पड़ा। सोचा कि घर जा कर इकट्ठे बैठ कर खाएंगे। इतने में एक बुढ़िया आई और उस ने सारे गुलगुले छीन लिए। जाते-जाते वह उसे गारे में धक्का दे गई।

सभी सपने फूली पर पूरी बुराई के साथ लागू हो रहे थे। सपने में बच्चों को कुछ मिल रहा था, लेकिन साथ ही छिन भी रहा था।

'हे भगवान! हमारी फूल को दिन पूरे होने तक कुछ न हो बौर ब्याने के बाद भी...महीने से भी कम रह गया है....,' कहते-कहते छाती पर रखे जुड़े हाथों के साथ ही उस की आंख लग गई।

शाम के वक्त वह फूली को जोहड़ में पानी पिलाने जा रही थी। उस के हाथ में कमची थी और वह फूली के पीछे-पीछे थी। तभी गली में सामने से दो सांड लड़ते हुए भागे आए। पतली-सी कमची से उस ने उन्हें वापिस मोड़ने की कोशिश की। लेकिन वे फूली को गिराते हुए उसके पेट पर पांव रखते हुए भाग निकले। वह स्वयं भी भैंस के नीचे दब गई थी। वह चीख रही थी-'मेरी फूली को उठाओ....मुझे खींचो....मेरी फूली को उठाओ....कोई मुझे निकालो....मेरी फूली को उठाओ.....।'

वह एकदम उठ बैठी। घबरा कर इधर-उधर देखा। दूली को उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। उसे लगा जैसे वह खाट पर नहीं है। चप्पलें पहन कर वह सीधी फूली की छान में पहुंची। फूल पर हाथ फिराया। दूली पहले से ही वहां खोर पर उकडू बैठा बीड़ी पी रहा था। अंधेरे में उसे ऐसा भी लगा कि दूली-फूली के सींगों से लिपटा कर कुछ बुड़बुड़ा रहा था। वह बहुत अधिक घबराई हुई थी। कंठ सूख रहा था। वह अपनी चुन्नी से पसीना पोंछती हुई दूली के पास सट कर जा खड़ी हुई। वह सोच रही थी कि इतना खतरनाक सपना दूली को कैसे बताए। तभी दूली ने बीड़ी फेंक कर बताया कि वह अभी-अभी यहां आया है। उसे काफी डरावना सपना आया। जैसे कि वह अर्बन एस्टेट की एक कोठी में काम कर रहा है। वहां के किचन में चिनाई कर रहे मिस्त्री को ग्रेनाइट की स्लैब देने जा रहा है। तभी लॉबी में मार्बल के चिकने फर्श पर उस का पांव फिसल गया। स्लैब के कई टुकड़े हो गए। .... और ठेकेदार ने उस के मुंह पर थप्पड़ मारा। ....इतनी महंगी चीज का यूं हाथ से छूट कर टूटना अपशकुन है। मैं यहां फूली के पास बैठा....। इतना बता कर उस ने अपना हाथ फूली के माथे के सफेद फूल पर फिराया। अंधेरा होने के बावजूद यह फूल उन की आंखों में बसा था।

दूली का सपना सुन कर उसने अपना सपना नहीं बताया। केवल इतना बोली-'फसलों का नुकसान होने पर सरकार मुआवजा देती है। अपनी फूली को कुछ हो गया, तो क्या सरकार हमें भी कुछ देगी?'

दूली ने कुछ जवाब नहीं दिया। खोर से नीचे पांव धरता हुआ बोला-'चल, सो जा। सुबह उठ कर दिन-भर दिहाड़ी भी करनी है।'

तभी गरज के साथ बिजली चमकी। उन्होंने देखा कि फूली जगर-जगर कर जुगाली कर रही है।

•

पुनश्च:

देस हरियाणा के अंक -11 में पृष्ठ 14 पर 'हरियाणा का साहित्य : सृजन और पठन-पाठन' नाम से डिम्पल सैनी की प्रस्तुति में प्रकाशित परिसंवाद का संचालन, संयोजन, सामग्री संग्रहण और प्रश्नावली निर्माण डा. कृष्ण कुमार ने तैयार किया था।

व्यंग्य

शरद जोशी

जंगल में शेर के उत्पात बहुत बढ़ गए थे। जीवन असुरक्षित था और बेहिसाब मौतें हो रही थीं। शेर कहीं भी, किसी पर हमला कर देता था। इससे परेशान हो जंगल के सारे पशु इकट्ठा हो वनराज शेर से मिलने गए। शेर अपनी गुफा से बाहर निकला - कहिए क्या बात है?

उन सबने अपनी परेशानी बताई और शेर के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई। शेर ने अपने भाषण में कहा -

'प्रशासन की नजर में जो कदम उठाने हमें जरूरी हैं, वे हम उठाएँगे। आप इन लोगों के बहकावे में न आवें जो हमारे खिलाफ हैं। अफवाहों से सावधान रहें, क्योंकि जानवरों की मौत के सही आँकड़े हमारी गुफा में हैं जिन्हें कोई भी जानवर अंदर आकर देख सकता है। फिर भी अगर कोई ऐसा मामला हो तो आप मुझे बता सकते हैं या अदालत में जा सकते हैं।'

चूँकि सारे मामले शेर के खिलाफ थे और शेर से ही उसकी शिकायत करना बेमानी था इसलिए पशुओं ने निश्चय किया कि वे अदालत का दरवाजा खटखटाएँगे।

जानवरों के इस निर्णय की खबर गीदड़ों द्वारा शेर तक पहुँच गई थी। उस रात शेर ने अदालत का शिकार किया। न्याय के आसन को पंजों से घसीट अपनी गुफा में ले आया।

शेर ने अपनी नई घोषणाओं में बताया - जंगल के पशुओं की सुविधा के लिए, गीदड़ मंडली के सुझावों को ध्यान में रखकर हमने अदालत को सचिवालय से जोड़ दिया है, ताकि न्याय की गति बढ़े और व्यर्थ की ढिलाई समाप्त हो। आज से सारे मुकदमों की सुनवाई और फैसले हमारी गुफा में होंगे।

इमर्जेंसी के दौर में जो पशु न्याय की तलाश में शेर की गुफा में घुसा उसका अंतिम फैसला कितनी शीघ्रता से हुआ इसे सब जानते हैं।

दूध का स्वाद

▫विद्या सागर नौटियाल

मां-बाप भैंस को दुहने ओबरे में चले गए। नीचे जाते हुए मां ने अपनी 10 वर्षीय लड़की मैना को ताकीद दी-सब्जी चूल्हे पर है, देख लेना, जल न जाए। मां के जाने के बाद कमरे में मैना और उसका सात वर्ष का भाई दीनू बाकी रह गए।

-मुझे डर लगता है दीदी! तुझे भी लगता है?

-किस चीज का डर लगता है भैया तुझे? मैं तो नहीं डरती!

-दीदी मुझे इस भैंस से डर लगता है जो इतनी रात तक दूध नहीं देती।

-क्यों?

-मां कहती है, भैंस दैत[1] होती है।

-हमारी भैंस तो दूध देने वाली भैंस है, दैंत तो मारता है।

-हमारी भैंस भी तो मारती है।

-हमारी भैंस तो दूध देती है, उससे नहीं डरते मेरे भैया।

-दूध देती है तो बाजार के लिए देती है, हमारे लिए तो दूध उसने कभी नहीं दिया।

-मैना खामोश हो गई और कड़ाही पर रखी सब्जी कलछुल से चलाने लगी।

यह भैंस इस परिवार के लिए सचमुच दैंत बनकर आई है। उस समय सुबह का तारा प्रकट नहीं होता, जब मैना की मां देवकी और उसका बाप घनानंद उसकी सेवा टहल करने लगते हैं। दिन-भर देवकी वृक्षहीन वनों की कंटीली झाड़ियों में अपनी जान को जोखिम में डालकर ऊंचे भयानक पर्वतों के ढालों पर तिनका-तिनका जोड़कर घास जमा करती है और रात को आधी रात तक भैंस की ही सेवा करती रहती है। भैंस जब ब्याही थी, तो इसका जो बच्चा हुआ था, उसे मैना के मां-बाप ने मट्ठा पिलाकर मार दिया था, ताकि वह बाजार को भेजे जाने वाले दूध का हकदार न बन सके। लोग अपने बच्चों को चांटा मारकर गाय-भैंस का दूध पीने की उनकी भुला सकते हैं, किंतु जानवर का बच्चा लाल-पीली आंखें देखकर मानने वाला नहीं होता। उसे दूध के स्वाद की कीमत अपनी जान देकर अदा करनी होती है।

घनानंद सुबह तड़के उठता है, भैंस को दुहने के बाद वह रात के दूध के बर्तन को आंगन में खड़े डैंकन के पेड़ की शाखा से धीर से नीचे उतारता है और दोनों वक्त के दूध को एक बर्तन मे मिलाकर घर से शहर की ओर चल देता है। गर्मी, सर्दी, बरसात। यह नित्य का नियम है। जिस दिन दूध नहीं जाएगा-परिवार भूखा रह जाएगा। अपनी या परिवार के सदस्यों की छोटी-मोटी बीमारी या अन्य कोई कारण उसकी शहर की इस यात्रा को स्थगित नहीं कर सकते। वह दूध लेकर जाता है और उसी बर्तन में चावल लेकर लौटता है। कभी तेल लेकर लौटता है, कभी कुछ और कभी कुछ लेकर लौटता है। पांच मील दूर शहर पैदल जाता है, पैदल आता है।

एक भैंस है जो इस परिवार का खर्चा चला रही है। इस परिवार की हंसी-खुशी, नाच-मेले, सोना-जागना, काम और आराम सबका केंद्र बिंदू यह भैंस है। देवकी के लिए दुनिया का सबसे अच्छा स्थल वह है, जहां की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर हरी-भरी घास उगी हो। घनानंद के लिए वह दिन निर्भाग है जिस दिन भैंस दूध कम दे या न दे। मैना के लिए वह सुंदर दिन है, जब मां को भैंस के लिए सुंदर घास मिल जाए और दीनू की खुशी की रात वह है जब भैंस झट से दूध दे दे और उसकी मां जल्दी से ऊपर आकर उसे रोटी देकर अपने हाथ से सुला दे। इस भैंस के दूध का स्वाद कैसा है, यह परिवार में किसी को नहीं मालूम। वह गाढ़ा है कि पतला है, मीठा है कि कैसा है, यह बात न मां-बाप जानते हैं, न बच्चे जानते हैं। मैना और दीनू के लिए भैंस के दूध और उसकी जुगाली से निकलने वाले उसके मुंह के झाग में कोई अंतर नहीं है।

दीनू ने कई बार सोचा है कि वह कभी चुपके से डैंकन के पेड़ में लटकी परोठी से थोड़ा-सा दूध चुरा ले ओर उसे गटागट पी डाले। पर रात में उसे अकेले नीचे आंगन में जाते हुए डर लगता है और सुबह जब तक वह सोकर उठता है, उससे पहले ही उसका बाप दूध लेकर चला जाता है। दिन में जब मां-बाप घर पर नहीं होते, उसने कई बार थोड़ा से दूध का स्वाद चखने की अपनी योजना पर अपनी दीदी से विचार-विमर्श किया है और दीदी ने भी चटखारे मार-मारकर योजना को सफल बनाने का वायदा किया है। पर रोज रात को उसकी योजना काफूर हो जाती है। अंधेरी काली रात में सुबह-शाम दूध देकर परिवार को जीवित रखने वाली उनकी अपनी ही भैंस उनके मन में दैंत का रूप धारण कर लेती है और उसके डर के मारे वे अपने कमरे से बाहर आकर सीढ़ियां उतरने का साहस नहीं बटोर सकते।

इस भैंस का दूध सूखता है, तो पूरे परिवार की जीवन-सरिता सूख जाती है। आज परिवार का मुखिया शहर से घर लौटकर नहीं आया है। उसकी दूध की परोठी आज किसी दूसरे के हाथ रीती लौट आई है। आज रात को भी इसे कौन दुहेगा, यह तय करना मुश्किल है। भैंस इकहथिया है। घनानंद के अलावा किसी दूसरे को अपने थन पर हाथ नहीं लगने देती। देवकी उसकी पीठ थपथपाती है और घनानंद उसके थनों से दूध निकालता है। आज घनानंद घर नहीं लौटा और अब अगले छह महीनों तक वह घर नहीं लौटने वाला है। कुछ समय से इस भैंस का दूध कुछ कम हो गया था, उसकी पूर्ति वह पानी मिलाकर करने लगा था। उसे आज भैंस का दूध सूखने की सजा सुनाई गई है।

कल कोई लेवाल आएगा तो इस भैंस को खांप कर देंगे। देवकी ने मैना से कहा-आधे मोल में भी चली जाए तो शुक्र है।

-मां, एक बार इसके दूध का स्वाद मुझे चखा दे। दीनू ने कहा और नजरें दूसरी ओर फेर लीं। वह अपने मन में यह तय नहीं कर पा रहा था कि जो बात उसने बहुत हिम्मत करके, बहुत देर तक सोच-विचार कर अपनी मां से कही है, वह बात कहनी चाहिए थी कि नहीं कहनी चाहिए थी?

1. दैत्य

•

दृश्य से बाहर

❐ देवांशु

मेरी नजर उसकी तरफ एकाएक ही पड़ी थी। जब मैंने अपनी नजरें फाइल के पन्नों से हटाकर सामने की ओर देखा था तब मुझे वह दिखा। वह मेरी ही तरफ टुकुर-टुकुर देख रहा था और आगे बढ़ रहा था। बीच-बीच में रुक भी रहा था। उसकी सांसें फूल रही थी। वह खांस रहा था। शायद उसका गला सूख रहा था।

वह किसान था। वह किसान ही था। एकदम ठेठ भारतीय किसान। घुटनों के ऊपर तक उठी उसकी मटमैली धोती, शरीर पर हाफ बाहों वाली बदबूदार शर्ट। आंखें धंसी हुई, गाल पिचका हुआ। अधपकी दाढी, बदरंगे दांत, बिना तेल कंघी किये हुए सफेद काले बिखरे सिर के बाल। उसका पूरा हुलिया भारत के किसी गरीब गांव के दरिद्र किसान जैसा ही था।

जब वह मेरे टेबल के करीब आ पहुंचा तब मैं समझ गया कि यह बूढा गरीब किसान मेरे पास ही आ रहा है। अपने खेत में बिजली का पंप लगवाने के लिए। उसके साथ एक औरत भी थी। दुबली-पतली, सांवली वह उसकी पत्नी होगी। उसके भी कपड़े मैले और गंदे थे। मुझे वह औरत बीमार सी लग रही थी। वह अपने आंचल में कोई पोटलीनुमा चीज छुपाये हुए थी। मुझे लगा यह दोनों पहली बार शहर आए हैं, और पहली बार सरकारी दफ्तर में। दोनों के चहरे पर भय और थकान थी। आंखों में आशा-निराशा के बीच झूलती थोड़ी सी उम्मीदों की गुंजाइश। दोनों मेरे टेबल के सामने आकर खड़े हो गए।

उस वक्त सुबह के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बज रहे थे। दफ्तर का काम काज शुरू ही हुआ था।

-'बाबू साहब नमस्ते...'

दोनों ने एक साथ हाथ जोडकर कहा।

-'नमस्ते! बोलो क्या काम है...'। मेरी नजर फाइल के पन्नों पर गड़ी रही। वे दोनों बहुत देर तक यूं ही खड़े रहे। मैंने उन्हें चुप खडे देखकर फिर पूछा।

-'बोलो क्या काम है...'

-'मोर कागज आइस हावय का...' बूढ़े ने छत्तीसगढ़ी भाषा में पूछा।

-'कौन सा कागज...' मैने उसकी तरफ देखकर पूछा।

-'बिजली के पंप कनेक्शन बर...'

-'किस नाम से...'

-'मोर नाव से...'

-'तोर का नाव हावय...' मैंने उससे पूछा। उसने सहज होकर कहा-

-'काशीराम सूर्यवंशी...'

-'गांव का क्या नाम है?

-'सीपत, गुडी...'

मैं अलमीरा से रजिस्टर निकालकर उसका नाम ढूंढने लगा। वह बूढा वही नीचे फर्श पर बैठ गया। मैंने उसे वहां बैठने से मना किया। उसने नहीं सुना, मैने उसे समझाने की कोशिश में कहने लगा- 'अरे...यहां मत बैठो, यह बैठने की जगह नहीं है। सामने बेंच पर जाकर बैठो...'। उसने नहीं सुना। अपना दोनों पैर पसार कर वहीं बैठ गया। वह कुछ ज्यादा ही थका हुआ लग रहा था। जोर-जोर से हांफ रहा था। चपरासी को आवाज देकर मैंने उसके लिए पानी मंगवाया। पानी पीने के बाद वह कुछ ठीक लगने लगा। मैं रजिस्टर पर उसका नाम ढूंढने लगा। थोडी देर बाद रजिस्टर बंद कर मैंने उससे कहा-'तुम्हारा कागज तो इस कार्यालय में आया था लेकिन दस्तावेजों में कुछ कमी के कारण उसे सीपत ऑफिस लौटा दिया है...'।

यह सुनते ही बूढ़े का चेहरा उदास हो गया। पसीने से उसका चेहरा गीला तो था ही उस पर मेरी बातों के असर ने उसके चेहरे को काला बना दिया-'वापस भेज दे हावव.......काबर बाबू साहब..........का कमी रहि गईस हावय मोर कागज म...'

-'उसमें खसरा नम्बर गलत लिखाये है...'।

-'हमन तो साहब सबो कागज ल ऑफिस म बाबू साहब करा जमा कर दे रहेन। अउ बाबू साहब हमला कहय रहिस के सबो कागज ठीक हावय कोनो कमी नई हावय.....फेर का हो गईस...' वह हांफ रहा था। कुछ पल रुक कर वह बोलने लगा-'दो साल से ऊपर हो गये साहब मोर कागज ल जमा किये बर, और कतका समय लगही साहब'।

मैंने उस बूढे को समझाते हुए कहा - 'तुम सीपत ऑफिस चले जाओ वहां तुम्हें साहब सब समझा देंगे ...'।

दोनों बहुत देर तक मेरी तरफ देखते रहे। मुझे उन दोनों का इस तरह मेरी तरफ देखना कोई नई बात नहीं लगी। विगत आठ-दस सालों से मैं इस सीट पर काम कर रहा हूं। न जाने कितने गरीब, असहाय, बीमार किसानों की गिड़गिड़ाहटें, विनती और कातर स्वर सुनता रहा हूं, लेकिन मैं सरकारी मुलाजिम हूं। सरकारी नियम के अनुसार ही मैं काम कर रहा हूं, इसलिए मुझ पर उस बूढ़े की कातर दृष्टि का कोई असर नहीं हुआ। जब वह बहुत देर तक उस जगह से नहीं उठा तब मुझे उसकी तरफ देखकर बोलना पड़ा-'यहीं बैठे रहने से कोई काम नहीं होगा। तुम सीपत आफिस चले जाओ और अपना कागज ठीक करवाकर जमा करो...'।

अभी तक वह औरत चुप खड़ी थी एकाएक मेरी तरफ देखकर विनती के स्वर में बोलने लगी-'बाबू साहब हमर खेत म पानी लेबर कोनो साधन नई हावय,। तीर म कोनो नदिया, तरिया घलो नई हावय। खेतो ह उंच डहर हावय। बरसात के पानी ह खेत म नई रूकय। तोर सोज विनती हवय साहब तै ह जल्दी से हमर कागज ल ठीक करके खेत म पंप ल चालू करवा दे। तै ह अतका एहसान कर दे, हमन ह जिनगी भर सुरता रखबो...'।

औरत की बातें सुनकर मैं कुछ उखड़ने लगा था। तभी वह अपनी साड़ी के पल्लू के अंदर जिस पोटलीनुमा चीज को छुपा रखी थी उसे निकालकर मेरे टेबल पर रख दी। वह गमछे में बंधा पोटलीनुमा सामान था। उस औरत की इस हरकत से मैं हैरान रह गया।

-'यह क्या कर रहे हो...इसमें क्या है...?

औरत बोली-'बाबू साहब ये तोर बर

लाये रहेव एला तै लेबर मना झन करबे....'।

-'मगर इसमें है क्या चीज...? मैंने आश्चर्य से पूछा।'

-'ए म थोरकिन भूंजे तिवरा हावय..'। मोर खेत के, तै ह अपन लईका मन ल खेला देबे...हमर करा तोला देबर अउ का रहि साहब कुछु नई हावय दो हजार रुपये पहले से ही सीपत वाले साहब को दे डरे है अब और नगद पैंसे नही हावें हमर पास न ही पैसे....'। मैंने उसे लेने से साफ मना कर दिया-'नहीं मुझे यह सब सामान नहीं चाहिए....'। यह सुनकर वह बूढा जमीन पर हाथ के बल उठ खडा होने लगा। फिर मेरी तरफ दोनों हाथ जोड़कर कातर स्वर में कहने लगा-'ए ह तोला बने नई लगिस..... मैं ह तोला पाछू छोटे भाई के खेत ले हरियर मटर खेलाहूं। अभी ए ला रख ले हमन ल बने लगही....'।

'मैंने कहा न यह दफ्तर है। यहां यह सब नहीं चलता। इस पोटली को उठाओ और बाहर जाओ...'। मैंने गुस्से से कहा।

बूढ़ा थोडा-सा झेंप गया। वह पोटली पत्नी के हाथों में देते हुए दरवाजे की तरफ चलने लगा। शायद वे दोनों यह सोचकर गांव से निकले थे कि शहर जाकर दफ्तर के बाबू साहब को प्यार से देंगे तो बाबू साहब बहुत खुश होंगे और उसके कागज जल्दी से तैयार कर देंगे और जल्दी से उसके खेत में मोटर पंप का पानी मिलने लगेगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मैं चाहता तो भी उनके लिए कुछ नहीं कर पाता। यह दफ्तर है। और दफ्तर किसी की विनती या करूणा से नहीं चलता, नियम और साहब लोगों के निर्देशों से चलता है। उसके कागज में जो कमी थी उसे मैं सुधार नहीं सकता था।

न जाने क्या सोचकर मैंने मोबाइल पर सीपत वाले साहब से उस बूढ़े के प्रकरण के बारे में बात की और कहा की उसके फाइल को जल्दी सुधार कर इस कार्यालय को भेज देवें। तभी उसने मुझसे पूछा कि इस केस के लिए उस बूढ़े ने मुझे कितने पैसे दिए हैं। मैंने गुस्से से फोन काट दिया। एक बार सोचा की उस अफसर से यह कहूं कि पैसा ही सब कुछ नहीं होता इंसानियत भी कोई चीज होती है लेकिन यह सोच कर चुप रहा कि मुझ जैसा संवेदनशील इंसान का भ्रष्ट अफसर से क्या कहना, चुप रहना ही बेहतर है।

मैं अपने काम में व्यस्त हो गया। थोडी देर बाद दफ्तर के बाहर एका-एक चीखने चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ी। मैं दरवाजे की तरफलपका। पास गया तो देखा वह कोई और नहीं वही बूढ़ा आदमी था, बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा है। धूप के कारण उसका सिर चकरा गया होगा। उसकी औरत वही पास बैठी जोर-जोर से चीख रही थी। दफ्तर का एक चपरासी उसके चेहरे पर पानी के छींटे मार रहा था। यह सोच कर कि थोडी ही देर में उसे होश आ जाएगा। तभी अचानक फोन की घंटी बजी। फोन सीपत वाले साहब का था उसने कहा-'आप फोन क्यों काट दिए? क्या आप मेरे बातों से नाराज हो गए? अरे मैं तो यूं ही कह रहा था। मैं उस प्रकरण को जल्दी भेज दूंगा...'। मेरे मुंह से शब्द नहीं निकले। मैंने फोन काट दिया।

बहुत देर तक जब बूढ़े को होश नहीं आया, तब सभी सकते में आ गए। एकाएक वह औरत बूढ़े के सीने पर दहाड़ मारकर रोने लगी। यह दृश्य देखकर मैं स्तब्ध रह गया। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि वह बूढा मर चुका है। पोटली में बंधा सारा भूंजा तिवरा उस बूढे के चारों तरफ बिखरा पड़ा था।

एक और भारतीय किसान की मौत हो गई है। यह आत्महत्या तो नहीं है। इस बूढ़े किसान की मौत को हम सामान्यत: मौत भी नहीं कह सकते हैं और न ही हत्या। यही सोचकर मैं परेशान होने लगा।

तभी एक युवा प्रेस फोटोग्राफर भीड़ में से उस बूढ़े की लाश के सामने खड़े होकर अपने अखबार के लिए बढ़िया-सा एंगल ढूंढ़ने लगा। मैं उस दृश्य से बाहर निकल आया।

सम्पर्क-9907126350

स्मृति शेष

एक कृषि-चिंतक का जाना

❑अमनदीप वशिष्ठ

हरियाणा के वरिष्ठ पत्रकार-लेखक और सामाजिक चिंतक श्री ज्ञानसिंह का गत उन्नीस अगस्त को स्वर्गवास हुआ। श्री ज्ञानसिंह पत्रकारिता, वामपक्षीय राजनीति और कृषि-चिंतन के साथ पिछले छ: दशक से लगातार जुड़े हुए थे। एक किसान परिवार में जन्मे ज्ञानसिंह जी का बचपन हिसार और फिर अधिकाँश जीवन रोहतक में बीता। वे 1952 में सी.पी.आई और फिर एस.यू.सी. के संपर्क में आये।1992 में उनका एस.यू.सी. से अलगाव हो गया और उसके बाद 'किसानी प्रतिष्ठा मंच' के राष्ट्रीय संयोजक के रूप में उन्होंने स्वतंत्र रूप से खेती-किसानी पर चिंतन जारी रखा। ज्ञानसिंह जी ने लम्बे समय तक 'तहरीक' नामक पाक्षिक अखबार निकाला जो बाद में पत्रिका बना। इसके अलावा अंग्रेजी 'रैटिना' और 'खबरनामा' का भी सम्पादन किया

ज्ञानसिंह जी के चिंतन को समझने के लिए उनकी सबसे महत्वपूर्ण किताब है - 'देश हमारा -राह हमारी' नामक। उनकी एक पुस्तिका 'किसानी की तबाही और बचाव का रास्ता' भी छपी।

ज्ञानसिंह जी आखिरी समय तक चिंतन कर्म में लगे रहे। उनकी नवीनतम रचना 'अब भविष्य है खेती किसानी' पिछले साल छपी। ज्ञानसिंह जी की गाँव-देहात को लेकर जो समझ थी वो परम्परागत तरीकों से काफी अलग किस्म की थी

ज्ञानसिंह जी के चिंतन-लेखन पर विस्तार से काम किया जाना शेष है .पिछले पचास बरस में उन्होने कितना कुछ लिखा होगा .हज़ारों पृष्ठ होंगे। श्री ज्ञानसिंह जी के जाने से उनकी यादें ही शेष रह गयी हैं जिसने एक दौर में हरियाणा में किसान हितैषी वामपक्षीय चिंतन की बुनियाद रखी थी।

खारिज करना पड़ेगा

कृषि विरोधी विकास के मॉडल को

▫योगेन्द्र यादव से सुरेन्द्र पाल सिंह की बातचीत

सुरेन्द्र पाल सिंह – आज देश में कृषि के संकट की चर्चा हो रही है। आप इसे कैसे परिभाषित करते हैं? इस संकट के क्या कारक हैं?

योगेन्द्र यादव – जब हम कहते हैं कि भारतीय कृषि संकट में है, तो इसका मतलब है कि खेती-किसानी की समस्या केवल समय या स्थान विशेष से जुड़ी नहीं है, ये केवल किसी एक मौसम या किसी खास क्षेत्र या किसी विशेष फसल तक सीमित नहीं है। ये सही है कि किसी साल सूखे या अन्य किसी आपदा के चलते यह समस्या ज्यादा गहरी हो जाती है, यही सब की नज़र में आ जाती है। बीच-बीच में किसी खास फसल से संबंधित समस्या भी आती रहती हैं। लेकिन असल में अब यह एक शाश्वत ढांचागत संकट है -- हर साल, हर फसल और हर तरह के किसान को प्रभावित करने वाला संकट है। ये ऐसा संकट है जो हमारे आर्थिक विकास के ढांचे में अन्तर्निहित है।

यह संकट तीन रूपों में हमारे सामने पेश होता है -- एक पर्यावरण का संकट, दूसरा आर्थिक संकट और तीसरा किसान के अस्तित्व का संकट। एक समय में हरित क्रांति की आधुनिक खेती को भारतीय कृषि के लिए रामबाण माना जाता था। लेकिन आज वही हरित क्रांति पर्यावरण के एक संकट के रूप में दु:स्वप्न की शक्ल ले चुकी है। पंजाब इसका ज्वलंत उदाहरण है। हरित क्रांति की चमक जल्दी ही फीकी पड़ गई, क्योंकि यह अत्यधिक संसाधनों के बल पर आधारित थी। खाद और कीटनाशक दवाइयों की अंतहीन जरूरत को हमारे किसान पूरा नहीं कर सकते, न ही हमारी मिट्टी इसे बर्दाश्त कर पाई। जिस हरित क्रांति को देश के सामने कृषि-माडल के तौर पर पेश किया जाता था, आज उसके परिणामों के तौर पर भू-जल संकट, जमीन में सेम, भूमि की उर्वरता-शक्ति में गिरावट को झेल रहे हैं। फिर भी देश भर में हम ऐसी फसलें उगा रहे हैं जो उस जलवायु के लिए बिल्कुल भी मुफ़ीद नहीं हैं।

आर्थिक संकट उत्पादन और उत्पादक दोनों का संकट है। हम खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर जरूर हो गए हैं, लेकिन हमारी उत्पादकता अंतर्राष्ट्रीय मानकों से काफी कम है। खाद्यान्न की मुख्य फसलों के अलावा अन्य फसलों के उत्पादन पर अभी सवालिया निशान हैं। सरकारी चर्चा में कभी-कभी इस पर बातचीत होती है, लेकिन सबसे गंभीर चिंता की बात ये है कि उत्पादन बढ़ने के बावजूद उत्पादक यानी किसान की हालत बिगड़ती जा रही है। इसकी किसी सरकार को चिंता नहीं है। किसानी आज घाटे का सौदा बन कर रह गई है। फसल की अच्छी पैदावार पर किसान किसी तरह बस अपना खर्च निकाल पाते हैं। खराब फसल के समय उनका खर्च भी पूरा नहीं होता। इस तरह किसान कर्ज के जाल में फंसते जाते हैं। इस दुष्चक्र की अंतिम परिणीति है आत्महत्या। किसान-आत्महत्याओं की त्रासदी को आप केवल उसकी संख्या के सरकारी आंकड़ों से नहीं नाप सकते। याद रखिये कि अगर पांच किसान आत्महत्या करते हैं तो शायद एक ही रिपोर्ट होती है, बाकी परिवार मान-प्रतिष्ठा के चलते चुप्पी लगा जाते हैं। यह भी याद रखें कि अगर एक किसान आत्महत्या करता है तो कम से कम सौ के मन में यह विचार आता है।

इन दोनों से जुड़ा है खेती-किसानी के अस्तित्व का संकट। किसानी की समस्या की बात केवल उनकी फसल के मूल्य और फसल के खर्चे तक सीमित रहती है। उनके जीवन के दूसरे पहलुओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विमर्श से आमतौर पर गायब ही रहते हैं। गरिमापूर्ण जीवन जीने की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने का खर्च आसमान को छू रहा है। बड़ी जोत वाला किसान भी इन खर्चों को पूरा करने में असमर्थ है। इसलिए कोई किसान अपने बेटे को किसान नहीं बनाना चाहता, अपनी बेटी के लिए नौकरी-पेशा दामाद ढूंढता है। आज किसानी की जीवनशैली ख़त्म होने के कगार पर है।

सुरेन्द्र पाल सिंह – कृषि व कृषक समुदाय पर संकट भी आते ही रहे हैं और किसान उसका प्रतिरोध भी करते ही रहे हैं। आपकी नजर में आज के किसान आंदोलन में क्या नया है?

योगेन्द्र यादव – आज देश का किसान आंदोलन एक नए युग में प्रवेश कर रहा है। पिछले ढाई महीनों में देश भर में किसानों की नई ऊर्जा उभरी है, किसानों का नया नेतृत्व सामने आया है, उनमे नया संकल्प उभरा है। लेकिन इसे नया युग कहने का सबसे बड़ा कारण किसान आंदोलन का बदलता स्वरूप है।

आज का किसान आंदोलन आजादी के पहले और अस्सी के दशक के आंदोलनों से बहुत अलग है। अंग्रेजी राज के दौरान हुए किसान विद्रोह मूलत: औपनिवेशिक राज द्वारा स्थापित शोषक कृषि व्यवस्था के विरुद्ध थे। मोपला विद्रोह, चम्पारण सत्याग्रह, बारदोली सत्याग्रह और तेभागा आंदोलन जैसे किसान आंदोलनों ने कृषि व्यवस्था के सबसे शोषित वर्ग के न्यूनतम अधिकार की आवाज उठाई थी। अन्यायपूर्ण लगान, नील की बंधुआ किसानी और बटाईदार को फसल का कम से कम एक तिहाई हिस्सा देने की मांग पर चल रहे आंदोलनों ने किसान को एक राजनैतिक पहचान दी थी।

आजादी के बाद पहले चालीस साल तक किसानों ने स्वराज में न्याय मिलने का इंतजार किया। उसके बाद कर्नाटक में नन्जुन्दस्वामी, महाराष्ट्र में शरद जोशी और उत्तर प्रदेश में महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में किसान आंदोलनों का एक नया दौर

शुरू हुआ। यह अपेक्षाकृत सक्षम भूस्वामी का आंदोलन था। इस आंदोलन का मुख्य मुद्दा था किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोत्तरी। इस आंदोलन का नेतृत्व वह वर्ग कर रहे थे जिसे राजनीतिक सत्ता में कुछ हिस्सा मिला लेकिन जो किसान होने के नाते आर्थिक समृद्धि से वंचित थे।

सुरेन्द्र पाल सिंह - तो क्या अब किसान की परिभाषा बदल रही है, किसान नेतृत्व की पृष्ठभूमि बदल रही है, किसान आंदोलन के मुद्दे बदल रहे हैं और वैचारिक सरोकार भी बदल रहे हैं? यह किसान आंदोलन के चरित्र में बदलाव किसानों की दशा और दिशा किस तरह बदल सकता है?

योगेन्द्र यादव - इक्कीसवीं सदी के किसान आंदोलन पिछले दोनों आंदोलनों से कई मायनो में भिन्न हैं। किसान की नई परिभाषा का विस्तार हो रहा है। इस नई परिभाषा में किसान का मतलब सिर्फ बड़ा भूस्वामी नहीं बल्कि मंझौला और छोटा किसान भी है, ठेके पर किसानी करने वाला बटाईदार और खेतिहर मजदूर भी है। जमीन जोतने वाले के साथ पशुपालन, मुर्गीपालन और मछली पालन करने वाले को भी किसान के दायरे के भीतर शामिल किया जा रहा है।

पहली बार किसान आंदोलन आदिवासी और दलित को किसान की तरह स्वीकार करने को तैयार हैं। खेती में दो तिहाई मेहनत करने वाली औरतों को अब तक किसान की परिभाषा से बाहर रखा गया है। इस नए आन्दोलन में उनकी भूमिका को स्वीकार करने का मानस बन रहा है। किसान की परिभाषा का यह विस्तार जरूरी था। जैसे-जैसे किसानी सिकुड़ रही है वैसे-वैसे किसानी के किसी एक हिस्से को लेकर आंदोलन चलाना असम्भव है। हर तरह के किसान को जोड़कर ही किसान आंदोलन नई ऊर्जा प्राप्त कर सकता है।

नए किसान आंदोलन के वैचारिक सरोकार और मुद्दे भी पुन:परिभाषित हो रहे हैं। आजादी के बाद के किसान आंदोलन द्वैतवादी थे - एक तरफ भारत बनाम इंडिया का मुहावरा था तो दूसरी तरफ जमींदार बनाम खेतिहर मजदूर का द्वंद्व था। नया किसान आंदोलन अद्वैतवादी है। किसानों के भीतर ऊंच-नीच का वर्ग संघर्ष जगाने की बजाय सभी किसानों को जोड़ने का आग्रह इस दौर की विशेषता है। साथ ही किसान बनाम गैर किसान की लड़ाई से बचने की समझ भी विकसित हो रही है। खेती-किसानी को बचाने की लड़ाई प्रकृति को बचाने की लड़ाई है जिसमें किसान और गैर किसान को एकजुट होना होता है।

सुरेन्द्र पाल सिंह - कर्ज माफी और फसलों के उचित दाम की मांग में नया क्या है। ये मांगें तो किसान आंदोलन में हमेशा ही रही हैं।

योगेन्द्र यादव - सही है कि पहली नजर में कर्ज मुक्ति और फसलों के पूरे दाम की मांग में कुछ भी नया नहीं लगेगा, लेकिन आज इन पुरानी मांगों को नए तरीके से निरूपित किया जा रहा है। फसल के पूरे दाम का मतलब अब केवल सरकारी न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी नहीं है। किसान आंदोलनों ने सीख लिया है कि यह मांग बहुत सीमित है और इसका फायदा दस प्रतिशत किसानों को भी नहीं मिलता इसलिए किसान आंदोलन अब चाहते हैं कि फसल की लागत का हिसाब बेहतर पद्धति से किया जाय, इस लागत पर कम से कम 50 प्रतिशत बचत सुनिश्चित की जाए।

साथ ही किसानों ने यह भी समझ लिया है कि असली मामला सिर्फ सरकारी घोषणा का नहीं है, असली चुनौती यह है कि सरकारी समर्थन मूल्य सभी किसानों को कैसे मिल सके। इसलिए नए किसान आंदोलनों की मांग है कि सरकारी खरीद के अलावा भी नए तरीके खोजे जाएं, जिससे सभी किसानों को घोषित मूल्य हासिल हो सकें।

ठीक इसी तरह कर्ज माफी की पुरानी मांग का विस्तार कर उसे कर्ज-मुक्ति की मांग में बदल दिया गया है। सिर्फ राष्ट्रीयकृत बैंक और सहकारी/ग्रामीण बैंक के कर्ज से ही नहीं साहूकार के कर्ज से मुक्ति की माँग भी अब जुड़ गई है। अब किसान आंदोलन याचक की तरह कर्ज माफी की प्रार्थना नहीं कर रहा। आज का किसान आंदोलन देश को पिछले 50 साल से दिए अनुदान के बदले कर्ज मुक्ति के अधिकार की बात कर रहा है।

सुरेन्द्र पाल सिंह - सरकार फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है। फसलों की खरीददारी भी करती है। लेकिन किसान संतुष्ट नहीं होते।

योगेन्द्र यादव - सरकार खुद हर फसल की लागत के आंकड़े एकत्रित करती है। यह बात भी सही है कि अलग-अलग राज्यों में एक ही फसल की लागत भी अलग-अलग होती है। लेकिन सरकारी आंकड़ों में इसकी राष्ट्रीय औसत लगा ली जाती है।

खुद सरकार की ओर से गठित रमेश चंद समिति ने मान लिया है कि सरकारी आंकड़ों में किसान की लागत को कम करके आंका जाता है। लेकिन सरकार ने इसे बदलने की कोई कोशिश नहीं की है। असली बात यह है की देश के अधिकांश किसानों को सरकार का आधा-अधूरा न्यूनतम समर्थन मूल्य भी नसीब नहीं होता। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि केवल 6 प्रतिशत किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य हासिल होता है, शेष तो जो भाव मिले उसी में बेचने को मजबूर होते हैं।

सरकार छाती ठोक कर कहती है कि खरीफ 2017-18 के लिए सब फसलों के दाम बढ़ा दिए गए हैं। धान का समर्थन मूल्य बढ़ाकर 1550 रुपए प्रति क्विंटल कर दिया गया है, जबकि अरहर-तुअर दाल के समर्थन मूल्य में 400 रुपये बढ़ाकर 5450 रुपए कर दिया गया है। खबर छप गयी। अगर ये घोषणा जीएसटी या शेयर बाजार के बारे में होती तो मीडिया बाल की खाल उधेड़ता, लेकिन मामला बेचारी खेती का था इसलिए एकाध विशेषज्ञ और खोजी पत्रकार को छोड़कर किसी ने सरकारी दावों की जांच नहीं की। सच ये है की सरकार द्वारा की गयी 'बढ़ोतरी' में किसान के खुश होने लायक कुछ भी नहीं है।

धान के मूल्य में पिछले साल की तुलना में 5 प्रतिशत ही वृद्धि की गई यानी सिर्फ महंगाई की बराबरी की गई है। वास्तव में दाम कुछ नहीं बढ़ा है। अरहर-तुअर में बढ़ोतरी जरूर 13 प्रतिशत हुई है, लेकिन सरकार ये सच दबा गयी कि 5450 रुपए का समर्थन मूल्य सरकार के आर्थिक सलाहकार अरविन्द सुब्रमण्यम द्वारा सुझाये 6000 रुपए से अब भी बहुत कम है।

धान की लागत 1484 रुपए है और अगर किसान को 1550 रुपए प्रति क्विंटल का समर्थन मूल्य मिल भी जाए तो उसे सिर्फ 4 प्रतिशत बचत होगी। अरहर में

बचत 18 प्रतिशत तो मूंगफली में 9 प्रतिशत और सोयाबीन में 4 प्रतिशत बचत होगी।

यह भी स्मरण रखना होगा कि सत्ता में आने के पहले प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी व उनकी पार्टी ने किसानों से वादा किया था कि उनको फसलों की लागत पर 50 प्रतिशत का मुनाफा दिलाया जाएगा। उस हिसाब से देखें तो एक भी फसल में सरकार अपने वादे का आधा भी नहीं दे रही है।

खरीफ की बाकी कई फसलों जैसे कपास, तिल, सूरजमुखी, ज्वार और रागी में सरकार की ओर से घोषित समर्थन मूल्य लागत से भी कम है। यानी पहले से ही सरकार यह मानकर चल रही है कि किसानों को उनकी इन फसलों पर घाटा ही होगा। सरकार जिस तरह समर्थन मूल्य का फैसला करती है उस पर कई किसान संगठनों ने बार-बार सवाल उठाए हैं।

सुरेन्द्र पाल सिंह - मराठा, जाट, पटेल आदि परंपरागत तौर पर मजबूत किसान जातियां हैं। पिछले समय में सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्ग में आरक्षण पाने के लिए ये जातियां उग्र आंदोलन कर रही हैं। कृषि संकट के दौर में आप इसे कैसे देखते हैं।

योगेन्द्र यादव - दुर्भाग्य से शिक्षा-स्वास्थ्य-रोजगार आदि अस्तित्व के मूलभूत सवालों की किसान-आंदोलनों में मुखर अभिव्यक्ति नहीं हुई है। किसान आंदोलनों में न्यूनतम समर्थन मूल्य और कर्ज के सवाल ही छाए रहे हैं। जीवन के ये मूलभूत सवाल विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। मराठा, जाट, पटेल आरक्षण-आंदोलनों में भी ये सवाल दूसरे रूपों में आ रहे हैं। असल में ये आरक्षण-आंदोलन किसानी की बदहाली को उजागर कर रहे हैं। लेकिन मांग गलत दिशा में है, जो टिक नहीं सकती। 'मैं किसान हूं। मैं गरीब हूं। मेरी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो।' ये कहने की बजाए वो कहता है कि 'मैं मराठा हूं मुझे आरक्षण दो।'

सुरेन्द्र पाल सिंह - आप किसान समस्या को लेकर निरंतर किसान मुक्ति यात्राएं कर रहे हैं। उसमें किस तरह के किसान व उनका नेतृत्व शामिल रहता है और किसानों के संकट का हल किस तरह देखते हैं।

योगेन्द्र यादव - इन यात्राओं का मकसद यही है कि किसानों की समस्याओं को लेकर एक दीर्घकालीन हल निकाला जाए। इस समाधान की तलाश के लिए हमें किसान के दर्द के मूल यानी फसल के दाम के सवाल में जाना पड़ेगा। हर कोई जानता है कि हर साल सरकार की नीतियों के कारण किसानों को फसलों के दाम पूरे नहीं मिल पाते और उनको भारी घाटा होता है। लेकिन यह घाटा कितना होता है, इस सवाल का जवाब ढूंढना आसान नहीं है। सत्ता जिस सच का सामना नहीं करना चाहती उसे फाइलों के ढेर में दबा कर रखती है। जवाब खोजने के लिए आपको सरकारी रिपोर्ट, आंकड़ों और किसानों के अनुभव को जोड़ना होगा।

किसान मुक्ति यात्राएं नए दौर के नए किसान आंदोलन की झलक दिखाती हैं। इसमें पिछले दो-तीन दशकों से किसानों के बीच संघर्ष करने वाले वरिष्ठ किसान नेता हैं तो साथ में दलित आदिवासी संघर्ष में शामिल कार्यकर्ता भी हैं। पहली बार किसी राष्ट्रीय किसान समन्वय में महिला नेतृत्व की झलक और महिला आंदोलन के मुद्दों की खनक महसूस हो रही है। पहली बार किसान आंदोलन सोशल मीडिया और नई तकनीकी का इस्तेमाल कर रहा है।

किसान आंदोलन की विरासत को मंदसौर, बारदौली और खेड़ा को याद करने वाली यह यात्रा एक ओर तो नर्मदा के विस्थापित किसानों के संघर्ष से जुड़ी वहीं दूसरी ओर यह यात्रा मेहसाणा में दलित संगठनों के आजादी कूच का हिस्सा बनी। 18 जुलाई से दिल्ली पहुंच कर यह यात्रा जंतर-मंतर पर एक धरने की शक्ल ली तो देश के किसान आंदोलन के तीसरे दौर की शुरुआत का औपचारिक ऐलान हो गया।

सुरेन्द्र पाल सिंह - क्या यह किसान आंदोलन सिर्फ सुर्खियां और सहानुभूति बटोर कर संतुष्ट हो जायेगा। या सरकारों से महज एक-दो टुकड़े लेकर चुप तो नहीं हो जायेगा। या फिर किसानों का यह उभार देश में किसान की अवस्था को बदल कर ही दम लेगा?

योगेन्द्र यादव - इसका उत्तर आने वाले कुछ दिनों में मिलेगा। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि किसान विद्रोह एक संगठित स्वरूप ले पाता है या नहीं। आज देश भर का किसान आंदोलन पूरी तरह से बिखरा हुआ है। आज या तो पार्टियों के पालतू किसान संगठन जो विपक्ष में होने पर विरोध करते हैं, या फिर अपनी पार्टियों के सत्ता में आने के बाद प्रचारक या दलाल बन जाते हैं। जाहिर है, ऐसे संगठनों की सदस्यता अधिक होने के बावजूद विश्वसनीयता नहीं बन पाती। या फिर छोटे-छोटे, स्वतंत्र किसान संगठन हैं, जिनका असर एक-दो जिलों से आगे नहीं है। आज देश का किसान आंदोलन बंटा हुआ है। अलग-अलग राज्य के किसान, अलग-अलग फसल उगाने वाले किसान, अलग-अलग जातियों के किसान आपस में बंटे हुए हैं, भूमिस्वामी, बटाईदार और भूमिहीन मजदूर बंटे हुए हैं।

जाहिर है, इसी कारण से वर्तमान किसान विद्रोह एक सूत्र में नहीं जुड़ पा रहा है। अलग-अलग राज्यों में स्वत:स्फूर्त तरीके से यह विद्रोह उठ रहा है और अलग-अलग दिशा में बढ़ रहा है। आने वाले दिनों में अलग-अलग संगठनों ने अलग-अलग कार्रवाइयों की घोषणा की है। शुरुआत में यह स्वाभाविक है, लेकिन अगर जल्द ही किसान विद्रोह में राष्ट्रीय समन्वय नहीं होता है, तो इस आंदोलन को टिकाए रखना बहुत मुश्किल होगा।

सुरेन्द्र पाल सिंह - अधिकांश किसान संगठन अपने आंदोलन को गैर-राजनीतिक करार देते रहे हैं। जिसे आप नया किसान आंदोलन कह रहे हैं क्या उसका राजनीति से संबंध होगा।

योगेन्द्र यादव - सही है कि परंपरागत किसान आंदोलनों में अपने आप को अराजनीतिक कहने का रिवाज है। अतीत में पार्टियों और सरकारों से मिले धोखे के कारण यह मुहावरा चल निकला है। सच यह है कि शायद ही कोई किसान नेता या संगठन राजनीति से अछूता है। वे सब जानते हैं कि किसान का मुद्दा एक राजनीतिक मुद्दा है। नये किसान आंदोलन को राजनीति से रिश्ते को साफ करना होगा। उसे जो भी मिल सकता है, वह सब राजनीति में दखल दिये बिना संभव नहीं है। इसलिए राजनीति से परहेज की भाषा छोड़ कर किसान आंदोलन को राजनीति में दखल देना होगा। स्थापित दलों की राजनीति करने के बजाय एक नए किस्म की राजनीति खड़ी करनी होगी। किसान अगर राजनीति की लगाम अपने हाथ में नहीं थामेगा, तो सत्ता की राजनीति इस

किसान को हांकती ही रहेगी। हां, इतना परहेज रखा जा सकता है कि किसान संगठन बतौर किसान संगठन चुनावी राजनीति में हिस्सा न लें।

सुरेन्द्र पाल सिंह - मंदसौर गोलीकाण्ड के बाद किसान के सवाल पर देश भर में संवेदनाएं उभरीं। उससे किसान आंदोलन को क्या हासिल हुआ।

योगेन्द्र यादव - अहमदनगर जिले के पुणतांबे गांव से जो हड़ताल शुरू हुई थी, वह अब महज एक स्थानीय हड़ताल नहीं रही। पहले यह चिंगारी मध्य प्रदेश पहुंची और वहां मंदसौर के गोलीकांड के बाद से यह आग चारों दिशाओं में फैल गयी है। इस दौरान लगभग हर राज्य से स्वत:स्फूर्त किसान आंदोलन शुरू होने की खबरें आईं। राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में किसान आंदोलन फैलने के पुख्ता समाचार मिल चुके हैं। कोई हड़ताल का सहारा ले रहा है, कहीं धरना, कहीं प्रदर्शन, कहीं बंद, कहीं चक्का जाम वगैरह... मानो बरसों से सोया किसान आंदोलन एकाएक जाग उठा है। थके-हारे किसान नेताओं में नया जोश आ गया है, नयी पीढ़ी के नये नेता उभर रहे हैं। बीते दिनों के किसान संघर्ष ने वह हासिल कर लिया, जो किसान आंदोलन पिछले 20 साल से हासिल नहीं कर पाया है।

सरकारों और बाबुओं के पास किसान मुद्दों पर चर्चा का टाइम निकल आया है। मीडिया भी अचानक किसान की सुध ले रहा है। टीवी शो में किसानी की दशा पर चर्चाएं हो रही हैं। पिछले महीनों में किसानों के सवाल पर जितनी चर्चा समाचार और संचार माध्यमों में हुई उससे कम से कम अखबार पढ़ने वाले और टीवी देखने वाले आम शहरी को पता तो लगा कि इस देश का किसान दुखी क्यों है।

मंदसौर गोलीकांड के बाद किसान के सवाल पर देश भर में संवेदनाएं उभरी हैं, कुछ समझ भी बनी। खुद किसान का संघर्ष मजबूत हुआ और एक संकल्प भी बना। देश भर के किसानों में अपूर्व चेतना का संचार हुआ।

सुरेन्द्र पाल सिंह - आप मंदसौर, अहमदनगर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किसान के प्रतिरोध को विद्रोह का नाम दे रहे हैं। क्या आपको इन विद्रोहों का क्रांति में तब्दील होने की संभावना दिखाई देती है ?

योगेन्द्र यादव - देश में किसानों के विद्रोहों की लंबी श्रृंखला है। औपनिवेशिक काल में एक छोटी सी घटना जंगल की आग की तरह बड़े इलाके में फैल जाती थी। पिछले अर्से में हम देखते हैं कि स्वत: स्फूर्त छोटी सी घटना महाराष्ट्र से मध्यप्रदेश व अन्य इलाकों में आग की तरह फैल गई। इनमें कोई राजनीतिक एकसूत्रता नहीं है और नेताओं का नियंत्रण नहीं रहता। किसानों में गहरा रोष व आक्रोश है। किसान राहत के चंद टुकड़े नहीं, बल्कि वे अपनी मूल परिस्थितियों को बदलना चाहते हैं। ये प्रतिरोध नहीं, बल्कि विद्रोह के लक्षण हैं।

इस विद्रोह को क्रांति में बदलने के लिए एक विचार अनिवार्य है। अभी तक ज्यादातर किसान संगठन एक ट्रेड यूनियन की मानसिकता से चलते हैं। उन्हें विकास के मॉडल से शिकायत नहीं है, बस उसमें किसान का हिस्सा चाहिए। अगर किसान की अवस्था को बदलना है, तो उसे इस कृषि विरोधी विकास के मॉडल को खारिज करना पड़ेगा। ●

सम्पर्क : 9872890401

सरकार से किसान को अपनापन नहीं मिलता

❑सुधीर डांगी

यह विडम्बना ही है कि कृषि-प्रधान देश में आज किसान किसी भी प्रकार से केंद्र में नही है। चाहे कोई भी सरकार हो, किसी भी सरकार से किसान को अपनापन नहीं मिलता। विशेषकर जब से भारत में भूमंडलीकरण और उदारीकरण का दौर शुरू हुआ है, किसान संरक्षण के दायरे से बाहर कर दिए गए हैं और छोटे किसान तो कृषि-काश्तकार से भूमिहीन कृषि-मजदूर में परिवर्तित हो गए हैं। भूमंडलीकरण के दौर में सरकारों ने ये तय कर लिया है कि सभी प्रकार की रियायत अब खत्म की जाएं। जितना भी आर्थिक लाभ सरकार द्वारा कृषि की मद में दिया जाता है, वो किसानों के लिए नहीं होता बल्कि कृषि-उद्योगों हेतु आबंटित किया जाता है। लेकिन कृषि-यंत्र हों या खाद-बीज, इनकी कीमतें इसके बावजूद भी कम नहीं होती, बल्कि बढ़ती जाती हैं।

स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट अनुसार किसानों को उनकी लागत के साथ साथ लागत का पचास फीसदी अधिक दिया जाना चाहिए जिससे वह अपने परिवार का भरण पोषण कर सके। लेकिन कोई भी सरकार किसानों को स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों का लाभ नहीं देना चाहती। हालत यह हो गई है कि किसानों को इस अवस्था में अपनी लागत निकालना भी दूर की कौड़ी होती जा रही है। किसान कर्ज़ लेकर इस उम्मीद में खेती करता है कि उसकी फसल उसका कर्ज़ उतार देगी। लेकिन होता इसके बिल्कुल उलट है। परिणामस्वरूप किसान कर्ज में फंसता जाता है और अन्तत: आत्महत्या कर लेता है क्योंकि कहीं से भी उसे उम्मीद की किरण नज़र नहीं आती।

भारतीय लोकतंत्र के चुनाव भी कोई समाधान उपलब्ध नहीं कराते। जब चुनाव का वक्त होता है, तो जानबूझकर आमजन के मुद्दे पीछे धकेल दिए जाते हैं। इतना बुरी तरह से दिमाग को धोया जाता है कि व्यक्ति अपने मुद्दे व समस्याएँ भूलकर गाय-गोबर और धर्म की रक्षा में खड़ा कर दिया जाता है। इसमें किसानों की एकता का न होना बहुत बड़ी समस्या है। चुनाव के समय किसान किसान नहीं रहता बल्कि वह जाति और धर्म मे बंटकर हिन्दू-मुस्लिम या हरियाणा में विशेषकर जाट-गैरजाट हो जाता है। किसानों को इस जादू को समझना होगा कि उनके साथ ये सब कैसे और क्यों हो रहा है। लोकतंत्र में अपना धर्म निभाते समय अपनी पहचान नहीं खोनी होगी बल्कि चुनाव के समय भी केवल और केवल किसान ही बने रहना होगा। ये समझना होगा कि अगर उसकी जाति और उसको धर्म अगर उसे सिर्फ आत्महत्या की ओर धकेल रहे हैं, तो उनसे पीछा भी छुटाया जाना एक विकल्प हो सकता है, कम से कम चुनाव के वक्त तो आवश्यक है कि हम केवल वही आमजन बने रहें, जो पिछले पाँच वर्ष तक बनकर भुगते हैं। ●

सम्पर्क-94671-11314

बढ़ती पैदावार और घटती आमदनी

□डॉ.बलजीत सिंह भ्याण

हरित क्रान्ति से खेती की पैदावार में बढ़ोतरी हुई। इससे धान में 18 गुना और गेहूँ में 10 गुना वृद्धि दर्ज की गयी है । अब हरियाणा केन्द्रीय पूल में लगभग 17 प्रतिशत अनाज का योगदान दे कर पंजाब के बाद दूसरे नंबर पर है। जिसके प्रभाव से हरियाणा के किसानों के आर्थिक व सामाजिक जीवन में काफी बदलाव आया। हरित क्रान्ति के शुरूआती दौर में किसानों को खेती में बचत हुई और इससे उनके रहन-सहन में काफी सुधार हुआ। गांवों में पक्के घर बन गए, ट्रैक्टर, मोटर साईकिल और गाड़ियां आ गई, टेलीविजन, फ्रीज, आटा पीसने की चक्की, चारा काटने की मशीन व दूध बिलोने की मथनी आदि उपलब्ध हो गई। इस दौर में कुछ किसानों ने जमीन खरीदी और कुछ ने शहरों में जाकर सहायक धन्धे भी शुरू किये।

लेकिन पिछले लगभग 15-20 वर्षों से खेती की पैदावार में या तो ठहराव आ गया है या मामूली वृद्धि हुई, जबकि खेती का खर्च बढ़ गया है। इसके परिणामस्वरूप किसान की आर्थिक स्थिति निरंतर कमजोर होती जा रही है।

किसानों की स्थितिः-कर्जे का फंदा :

वर्ष 1990-91 में नई आर्थिक नीतियां लागू करने के बाद खेती में निजी कम्पनियों की दखलन्दाजी ओर अधिक बढ़ती गई। किसानों को अधिक से अधिक पैदावार लेने के जाल में फंसा कर मंहगे बीज, खाद और दवाईयां का प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया गया। किसानों को अन्धाधुन्ध मशीनीकरण के मकड़जाल में फंसाया गया। ट्रैक्टर और अन्य कृषि यन्त्र खरीदने के लिये सरकार द्वारा ऋण देने की सुविधा उपलब्ध करवाई गई। कुछ कृषि उपकरणों पर अनुदान भी दिया गया। इससे हरियाणा में ट्रैक्टरों की संख्या में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई। अब हरियाणा में लगभग 2.70 लाख ट्रैक्टर हैं।

एक ट्रैक्टर कम से कम 1000 घण्टे प्रति वर्ष चलने पर ही आर्थिक तौर से फायदेमन्द रहता है, जबकि राज्य में अधिकतर किसानों की बहुत छोटी जोतें हैं तथा औसतन उनके ट्रैक्टर लगभग 450 घण्टे प्रति वर्ष चलते हैं। अतः इतनी बड़ी संख्या में ट्रैक्टर आर्थिक तौर से लाभ की बजाए नुकसान कर रहे हैं। काफी किसान ऐसे है जो ट्रैक्टर को एक वर्ष के अन्दर ही बेचकर उसके पैसों से अपने अन्य खर्चे चलाते हैं। इस प्रकार से किसान ट्रैक्टर के कारण लम्बी अवधि तक कर्जे में फंस रहे हैं। ट्रैक्टर बनाने वाली कंपनी भारी मुनाफा कम रही हैं। दैनिक भास्कर के अनुसार देश की तीन प्रमुख ट्रैक्टर बनाने वाली कम्पनियों की कुल आय वर्ष 2016-17 में करीब 5300 करोड़ रही। इससे पहले वर्ष यह 4500 करोड़ थी। इस प्रकार आमदनी में 17 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई थी ।

इसी प्रकार से, किसानों को ट्यूबवैल पर भी काफी खर्चा करना पड़ रहा है। अधिक पैदावार लेने के चक्कर में जमीन के नीचे के पानी दोहन के लिए, ट्यूबवैल की संख्या 60 के दशक में लगभग 40,000 से बढकर लगभग 7.52 लाख पहुंच चुकी है। इनमें से लगभग 2.50 लाख टयूबवल डीजल से चलते है और शेष 5 लाख बिजली से चलते हैं। ट्यूबवैलों द्वारा सिंचित क्षेत्र वर्ष 1966-67 में कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 20 प्रतिशत से बढकर 56.6 प्रतिशत हो गया है।

इस प्रकार भूजल के अत्याधिक दोहन से जमीन में पानी की गहराई बढ़ती जा रही है तथा किसानों को 1000 से 1200 फुट गहराई तक के ट्यूबवैल लगाने पड़ रहे हैं। इस प्रकार ट्यूबवैल द्वारा सिंचाई करने से किसानों का खेती खर्चा बढ़ गया है। पम्पसेट बनाने वाली देश की तीन प्रमुख कम्पनियों का वर्ष 2016-17 का शुद्ध लाभ 125.29 करोड़ हुआ है।

खेती के बीज, खाद और कीटनाशक दवाइयों पर खर्चे में बहुत अधिक बढ़ोतरी हुई है। बी.टी. कपास का बीज केवल प्राईवेट कम्पनियों द्वारा ही तैयार किया जाता है। सब्जियों के हाईब्रीड बीज भी ज्यादातर प्राईवेट कम्पनियां ही सप्लाई कर रही है। सरकारी संस्थाओं द्वारा बीज उत्पादन साल दर साल घट रहा है। किसानों द्वारा अपने खेत में अपने लिए बीज तैयार करने की प्रक्रिया लगभग लुप्त हो गई है। इसप्रकार बीजों के लिए प्राईवेट कम्पनियों पर किसानों की निर्भरता बढ़ती जा रही है तथा वे किसानों से बीज की मनमानी कीमत वसूल रही हैं। कुछ सब्जियों के बीज तो 5.6 रूपये प्रति बीज बेचे जा रहे हैं। इससे किसानों की खेती का खर्चा बढ़ गया है। दैनिक भास्कर की रिपोर्ट के अनुसार देश की प्रमुख तीन बीज कम्पनियों को वर्ष 2015-16 में 85.47 करोड़ का मुनाफा हुआ है। बीज का कारोबार प्रति वर्ष 10 प्रतिशत की रफ़्तार से बढ़ रहा है। यह कारोबार लगभग 35000 करोड़ रूपये पहुंच गया है। सरकार बीज कम्पनियों को टैक्स में भारी छूट भी देती है।

खाद के अंधाधुंध व असंतुलित उपयोग से खेती में खर्चा तो बहुत बढ़ गया है परन्तु 1966-67 में एक किलो एनपीके से होने वाला 18 किलो अनाज के उत्पादन की मात्रा घटकर मात्र 6 किलो अनाज प्रति किलो एनपीके रह गई है। दैनिक भास्कर के अनुसार खाद की तीन बड़ी कम्पनियों को साल 2016-17 में 1255.23 करोड़ का शुद्ध लाभ हुआ है। यह पिछले वर्ष की तुलना में 37.45 प्रतिशत ज्यादा था। सरकार इन्हें भी बहुत अनुदान देती है।

खेती में कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग में भी भारी बढ़ोतरी हुई है। हरियाणा,1.6 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग से पंजाब के बाद दूसरे नम्बर पर है जबकि देश की औसत खपत 600 ग्राम प्रति हेक्टेयर है। दैनिक भास्कर के लेख के अनुसार 2016-17 में अकेले हरियाणा में ही पेस्टिसाइड का कारोबार करीब 1100 करोड़ रुपये तक पहुँच चुका

है। इस रिपोर्ट के अनुसार पेस्टिसाइड टॉप की तीन कम्पनियों ने वर्ष 20166-17 में 895.98 करोड़ का शुद्ध लाभ कमाया है। यह पिछले वर्ष के मुकाबले 22.8 प्रतिशत अधिक था। देश में वर्ष 2014-15 में ही इसका कारोबार 28600 करोड़ पहुँच गया था जो कि 7.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रहा है। प्राइवेट कम्पनियां हर साल नई नई मंहगी दवाईयां बाजार में लाकर किसानों को लूट रही हैं। हरियाणा में हर साल लगभग 82000 क्विंटल पेस्टिसाइड फसलों में डाली जा रही है। इनमें से अनेक दवाइयां तो विकसित देशों में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक करार देकर प्रतिबंधित की जा चुकी हैं।

स्पष्ट है कि किसानों का केवल कीटनाशक दवाइयों पर ही खर्चा नहीं बढ रहा, बल्कि कीटनाशकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से प्रदूषित पर्यावरण में रहने व विषाक्त खाने का उपयोग करने के कारण कैंसर जैसी भंयकर बिमारियों के इलाज पर भी भारी खर्च करना पड़ रहा है। धीरे-धीरे एक अत्याधिक चिन्ताजनक स्थिति बन रही है जिसका खमियाजा सिर्फ किसान ही नहीं बल्कि देश के सभी नागरिकों को उठाना पड़ रहा है। दैनिक भास्कर के लेख के अनुसार इंडियन कौंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च के अनुसार तम्बाकू के बाद प्रदेश में कैंसर का सबसे बड़ा कारण पेस्टिसाइड बन गया है। हरियाणा में हर साल औसतन 29261 नए कैंसर के मरीज सामने आ रहे हैं। पिछले तीन साल में लगभग 1500 मौत कैंसर से हो चुकी हैं। इसके साथ हार्ट अटैक, बी पी, सुगर, दमा, स्किन एलर्जी के मरीजों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है।

लगातार गम्भीर हो रही उक्त भयावह स्थिति के प्रति शासक वर्ग की लापरवाही के लिए यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि 'जब रोम जल रहा था तो नीरो चैन की बंसुरी बजा रहा था।'

खेती घाटे का धन्धा

अब खेती घाटे का धन्धा बन गई है। अभी इसी वर्ष हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार ने सर्वे किया है, जिसमें राज्य के दस जिलों में वर्ष 2015-16 में गेहूं की फसल से प्रति एकड़ बचत निकाली गई है। जो नीचे तालिका संख्या 1 दी जा रही है :

तालिका 1

गेहूं उत्पादन से प्रति माह बचत का जिलावार आंकलन

जिला	खर्चा (रुपयों में)	आमदनी (रुपयों में)	बचत (रुपयों में)	बचत प्रति एकड़ प्रति माह
भिवानी	25330	32762	7432	1238
फतेहाबाद	29535	36697	7160	1193
हिसार	29839	34087	4248	708
गुडगाँव	26584	32296	5712	952
झझर	23375	33115	9740	1623
कैथल	34958	37397	2439	406
करनाल	35634	37513	1879	313
महेंद्रगढ़	27076	36310	9234	1539
रोहतक	27683	24430	1747	291
पानीपत	34526	35880	1354	225
औसत राज्य	29691	34490	4799	799

स्रोत : दैनिक भास्कर

तालिका 1 का विश्लेषण करें तो हरियाणा में गेहूं से औसत अर्जित आमदनी 4799 रूपये प्रति एकड़ है। हरियाणा की मुख्य फसल गेहूं 6 महीने की फसल हैं। इसलिए प्रति एकड़ फसल की आमदनी को छह से भाग देने पर मात्र 800 रूपये प्रति माह प्रति एकड़ आमदनी होती है। जिन जिलों में हरित क्रान्ति की शुरुआत हुई थी (करनाल, पानीपत, कैथल तथा रोहतक) में यह आमदनी 225 रूपये से 400 रूपये प्रति एकड़ प्रति माह ही होती है।

इसी प्रकार से दूसरी नकद फसल कपास से आमदनी की स्थिति इससे भी बुरी है। कृषि विभाग हिसार के बी.टी. कोटन की पैदावार के आँकड़े नीचे तालिका संख्या 2 में दिए गए हैं :

तालिका 2

वर्ष के	पैदावार कि.ग्रा. (हेक्टेयर)	औसत भाव (प्रति कि.)	कीटनाशक स्प्रे की संख्या
2011	734	4200	2
2012	615	4300	3
2013	502	5300	4
2014	373	4100	5
2015	276	4000	7.9

स्रोत : कृषि विभाग हरियाणा

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कपास की पैदावार पिछले पांच वर्षों के दौरान हर साल घट रही है; जबकि इसमें कीटनाशक दवाईयों के स्प्रे की संख्या बढ़ रही है। हैरानी की बात है कि कपास की पैदावार अत्याधिक कम होने के बावजूद उसके बाजार भाव लगभग स्थिर रहे जिसके कारण किसानों को कपास में भारी नुकसान हो रहा है। यही स्थिति धान की फसल की भी है। इन्ही कारणों से खेती घाटे का धंधा बन गई है। इसके कारण किसानों पर कर्जे का बोझ बढ़ता जा रहा है। किसानों की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो गई है कि हरियाणा में किसानों को आत्महत्या जैसे कदम उठाने पर मजबूर होना पड़ रहा है।

कृषि से सम्बन्धित सरकारी संस्थाओं की स्थिति :

कृषि में शिक्षा, शोध और विस्तार के लिए, सरकार ने हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार और इसके अधीन राज्य में अन्य स्थानों पर अनुसन्धान केन्द्रों का गठन किया। किसानों को गांव स्तर पर कृषि संबंधी जानकारी देने के लिये कृषि विभाग के कृषि विकास अधिकारियों की गांवों में नियुक्तियां की। हरित क्रांति के शुरूआती दौर में विश्वविद्यालय और हरियाणा सरकार के कृषि विभाग का विस्तार किया गया। इनमें नये पद सृजित करके भर्ती की गई तथा अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध करवाई गई। इसके परिणाम स्वरूप कृषि में नई खोजें हुई और उनको किसानों तक पहुंचाया गया तथा राज्य में कृषि पैदावार बढ़ाने में बहुत योगदान रहा।

पिछले लगभग 20 वर्षोंसे सरकारों द्वारा इन संस्थाओं के महत्व को धीरे-धीरे घटाने की नीतियां लागू की गई। योजनाबद्ध तरीके से इनमें नई भर्तियां बन्द कर दी गई। हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार और इसके अन्तर्गत आने वाले शोध केन्द्रों पर लगभग 10-12 वर्षों तक कोई नई भर्ती नहीं की गई। इससे

पहले भी, बहुत महत्त्वपूर्ण पदों पर असक्षम लोगों को बैठाकर उन पदों की गरिमा कम किया गया। नई भर्ती में योग्यता की बजाय राजनैतिक हस्तक्षेप ने स्थान ले लिया।

उक्त कारणों से विश्वविद्यालय में कृषि में नए शोध कार्य प्रभावित हुए। एक बार ऐसी स्थिति आ गई थी कि विश्वविद्यालय में सहायक वैज्ञानिकों की संख्या नगण्य हो गई थी तथा केवल वरिष्ठ प्राध्यापक/वैज्ञानिक ही बच गए थे। शोध के कार्य लम्बी अवधि तक (कई वर्षों) चलते है लेकिन वैज्ञानिकों की कमी के कारण वे नहीं चलाऐ जा सके। हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार में 1500 से भी अधिक प्राध्यापक / वैज्ञानिकों की संख्या होती थी, जोकि अब लगभग 450 रह गई है।

इसी प्रकार हरियाणा सरकार के कृषि विभाग और बागवानी विभाग में कृषि विकास अधिकारियों की संख्या वर्ष 1990 के बाद से घटती गई। गांव के स्तर पर कार्यरत कृषि विकास अधिकारियों/ कृषि निरीक्षकों/ग्राम विस्तार कार्यकर्ताओं की संख्या 2000 से घटकर लगभग 575 रह गई है। इसीप्रकार से हरियाणा बागवानी विभाग में उद्यान विकास अधिकारियों की संख्या 120 से घटकर मात्र 40 रह गई है। लगभग ऐसी ही स्थिति पशुपालन विभाग एवं मछली विभाग की है। इस प्रकार की सरकारी नीतियों के कारण विश्वविद्यालय और कृषि तथा बागवानी विभाग सिकुड़ते चले गए। किसानों के हित में किये जाने वाले कार्य भी कम होते गए और इनसे अपेक्षित परिणाम मिलने लगभग नगण्य हो गए। इससे किसानों में इनकी साख को धक्का लगा।

कुछ राजनैतिक लोगों और प्रशासनिक अधिकारियों ने प्रचार करना शुरू कर दिया कि हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय और कृषि विभाग हरियाणा कोई कार्य नहीं हो रहा है। एक योजनाबद्ध व नीतिगत तरीके से इन संस्थाओं को जनता में बदनाम करने की मुहिम चलाई गई ताकि जनता स्वयं यह कहने लगे कि इनसे अब किसानों को कोई फायदा नहीं हो रहा है इसलिए इन्हें बंद कर दिया जाये। यह सब सरकार की नीजिकरण की नीतियों को बढ़ावा देने के लिए किया जा रहा है। इस दौरान कृषि में प्राईवेट कम्पनियों ने बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयां और कृषि मशीनीकरण में पूरा जाल बिछा लिया। इन कम्पनियों ने किसानो से सीधा संपर्क बना लिया और किसानों को अनेक गैरजरूरी कृषि इनपुट प्रयोग करवाने शुरू करवा दिए। इस प्रकार किसानों की प्राईवेट कम्पनियों पर निर्भरता व उनकी लूट बढ़ती जा रही है।

किसानों की जमीनों की जोत का आकार लगातार घटता जा रहा है। खेती पर गुजारा करना मुश्किल हो रहा है। किसानों का, गांवों से शहरों की तरफ पलायन हो रहा है। धीरे धीरे किसानों का आर्थिक संकट अब सामाजिक संकट में परिवर्तित हो रहा है। बेरोजगारी बढ़ रही है। किसान समाज में व्यक्तिवाद, उपभोक्तावाद, अपराध और नशे जैसी बुराईयां बढ़ रही है। सामाजिक भाईचारा और सामाजिक सुरक्षा खत्म होती जा रही है। किसानों में अकेलापन और असुरक्षा भावना बढ़ने के कारण चारों और अंधेरा दिखाई देता है।

सम्पर्क-99967-88120

किसान-संघर्ष से जन्मी सत्ताओं ने ही किसान को दुत्कारा

❑ सतीश त्यागी

1930 के दशक में चौधरी छोटूराम हरियाणा के किसानों का आह्वान कर रहे थे कि वे अपने हकों के लिए संघर्ष का रास्ता अख्तियार करें। खुद छोटूराम पंजाब सरकार में मंत्री के रूप में किसानों की जिंदगी बेहतर बनाने के लिए संघर्षरत थे। उनके इस संघर्ष के सुखद परिणाम भी आये और देश के आजाद होते-होते किसान की माली हालत भी सुधरी और वह गूंगा भी नहीं रहा। चौधरी छोटूराम ने ही हरियाणा के किसानों को आवाज दी और उनकी बेचारगी को ताकत में तब्दील किया। लेकिन यह संघर्ष तो अनवरत चलना था क्योंकि सरकार फिरंगी की रही हो या अपनों कि, किसान की नियति में तो पीड़ा ही बदी थी!

किसान के संघर्ष और असंतोष की वजहें तो समय के साथ और भी गहराती जा रही हैं और बेचारगी इतनी कि किसान खुद अपनी जान लेने को मजबूर हो रहे हैं। आज जब किसान की बेचारगी और पीड़ा शिखर पर है तो उसका दुर्भाग्य यह है कि उसके लिए मरने-खपने के लिए न तो सहजानंद सरस्वती और छोटूराम हैं और न ही चरण सिंह, देवीलाल और महेंद्र सिंह टिकैत। दशकों से उसके अपनों के ही राज में उस पर गोलियां चल रहीं हैं।

हरियाणा में चौधरी देवीलाल असल में किसान राजनीति की ही उपज थे। किसानों के लिए उनके संघर्ष ने उन्हें 'किसान मसीहा' का दर्जा दिलाया लेकिन यह भी सच है कि इस किसान नेता के राज के दौरान ही 1978 में भारतीय किसान यूनियन वजूद में आई। वजहें रही होंगी, तभी तो किसानों के जुझारू संगठन की जरूरत पड़ी। अस्सी और नब्बे के दशक हरियाणा में किसानों पर सरकारी गोलियां बरसाने के लिए याद किये जायेंगे। निसिंग, टोहाना , नारनौल,कादमा, मंडयाली, मांडली, धमरिन और कंडेला में एक दशक के भीतर ही लगभग तीन दर्जन किसान सरकारों ने ही पुलिसिया गोलियों से उड़वा दिए। बिजली और नहरी पानी की सिंचाई की बढ़ी दरों के खिलाफ अथवा समर्थन मूल्य व कर्जे से मुक्ति के लिए जब-जब भी किसान संघर्ष के लिए सड़कों पर उतरे तो कथित किसान हितैषी सरकारों ने न केवल उन्हें राजद्रोही करार दिया बल्कि उन पर लाठियां-गोलियां भी बरसवायीं! किसान-संघर्ष से जन्मी सत्ताओं ने ही किसान को दुत्कारा। हालत लगातार बद से बदतर हो रहे हैं, जमीनी संघर्ष की जबरदस्त दरकार है लेकिन अफसोस कि आज किसान के लिए सरकार और राजनीतिक दलों के पास केवल लफ्फाजी और जुमलें हैं। खुद किसान में लड़ने का न तो माद्दा शेष है और न जज्बा! ऐसी बेचारगी तो शायद कभी भी नहीं रही थी। बाजार की ताकतों के आगे किसान हाथ जोड़े घुटनों के बल खड़ा है।

सम्पर्क - 7404397007

हरियाणा में अन्नदाता पर आफत

❑ ललित यादव

किसानों के हितों के लिए केंन्द्र के साथ राज्य सरकार ने भी घोषणाएं करने में तो कोई कमी नहीं छोड़ी पर तस्वीर वैसी नहीं है जैसी आम और खास अवसरों पर दिखाई जाती है। किसानों की व्यथा यह है कि खेती उन्हें अब मुनाफे का सौदा नजर नहीं आती, इसके लिए कई कारण भी गिनाये जा रहे हैं। स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट लागू होने की उम्मीद में प्रदेश के किसान हैं परंतु लगता है कि इंतजार की घड़ियां अभी खत्म नहीं होने वाली। ऊपर से प्राकृतिक आपदा के प्रकोप व भंडारण की अव्यवस्था ने किसानों को पूरी तरह से तोड़ कर रख दिया है जिस जिस कारण कर्जे में डूबे किसान आत्महत्या करने को विवश हो रहे हैं।

हरित क्रान्ति के बूते खाद्यान्न उत्पादन में भले ही हम आत्मनिर्भर हो गए हों लेकिन इस पेशे से जुड़े लोग इसके बलबूते आत्मनिर्भर नहीं हो सके हैं। अधिकतर किसान खेती को घाटे का सौदा मानते हैं, लिहाजा इसे छोड़ किसी और उद्यम को अपनाने को विवश हैं। फसल की बुआई से लेकर कटाई तक किसान को भाग्य के भरोसे ही रहना पड़ता है। फसल चक्र के दौरान तमाम समस्याएं मुंह बाए खड़ी रहती हैं। हाड़तोड़ मेहनत करके अगर वह फसल को खेत में तैयार कर ले जाता है तो आखिरी वक्त पर प्राकृतिक आपदाएं उसकी उम्मीदों पर तुषारापात कर देती हैं। रही सही कसर भंडारण की समस्या और बाजार में बिचौलियों की मौजूदगी से फसलों के औने-पौने दाम कर देते हैं। भारत जैसी छोटी जोत वाले अधिकांश किसानों के दु:ख उतने ही बड़े हैं। ऐसे में भारतीय कृषि और किसानों की दारूण दशा की पड़ताल आज हम सबके लिए बड़ा मुद्दा है।

औद्योगिकीकरण के बावजूद हरियाणा की 56 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या की जीविका का मुख्य आधार कृषि है।[1] राज्य के 70 प्रतिशत लोग खेती के कार्यों में लगे हुए हैं जबकि राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का कुल योगदान लगातार कम हो रहा है।[2] जाहिर है कि उद्योग व सेवा सेक्टर जहां आगे बढ़ रहे हैं वहीं हरित क्रांति का अग्रदूत हरियाणा अब खेती के मामले में पिछले पायदान पर सरक रहा है। वर्तमान में हरियाणा की जीडीपी में कृषि का योगदान 14.1 प्रतिशत है जो कि 2006 में 21.3 प्रतिशत था।[3] हरियाणा में कुल बोया क्षेत्र 35 लाख हेक्टेयर है जिसमें 1 हेक्टेयर तक के खेतों वाले किसानों की संख्या 7.78 लाख, 1 से 2 हेक्टेयर वाले किसानों की संख्या 3.15 लाख व 2 हेक्टेयर से अधिक वाले किसानों की संख्या 5.24 लाख है।[4]

घाटे का सौदा बन चुकी खेती किसानी हमारे अन्नदाताओं के लिए तब बड़ी मुश्किल खड़ी कर देती है जब बेमौसम बारिश इनकी पकी फसल को स्वाहा कर देती है। ऐसा बहुत कम ही होता है कि किसानों की योजना के मुताबिक फसल खेत से खलिहान तक पहुंचे। हाड़-तोड़ मेहनत और भारी पूंजी लगाने के बावजूद वे प्रकृति के रहमोकरम पर हैं जिसका तनिक सा कोप उसे दाने-दाने को मोहताज कर देता है। सूखा पड़े या अत्यधिक बारिश, बर्बाद वही होता है। खून पसीने से उपजाई फसल की बर्बादी बर्दाश्त न कर पाने के कारण सैकड़ों किसानों की मौत हुई हैं।

औद्योगिक विकास की ओर तेजी से कदम बढाने के बावजूद खेती आज भी हरियाणा की अर्थव्यवस्था का आधार है, लेकिन देश की बड़ी आबादी का पेट भरने को पसीना बहाने वाले किसान राम भरोसे हैं। दम तोड़ने वाले औद्योगिक घरानों को ऑक्सीजन देने के लिए आये दिन कई फार्मूले सामने आते रहते हैं, लेकिन राम की मार (आंधी, तूफान, ओलावृष्टि, भारी बरसात और सूखा) झेलने वाले किसान बेबस हैं। बुवाई से लेकर कटाई तक ही नहीं बल्कि बिक्री के लिए भी किसान मारा-मारा फिर रहा है। स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट के अनुसार किसानों को कुल उत्पादन लागत का 50 फीसद लाभ दिया जाना है,[5] लेकिन यहां तो सरकारी समर्थन मूल्य को लेकर ही किसानों का मजाक बनता रहा है।

मुआवजे का खेल

ओलावृष्टि और बेमौसमी बारिश से भले ही नुकसान फसलों को हुआ हो, लेकिन इसकी मार दूरगामी हुई है। फसल बर्बाद होने के बाद किसानों की एकमात्र उम्मीद सरकार पर टिकी होती है। विडंबना यह है कि नियमों और लालफीताशाही में फंसा सरकारी तंत्र नुकसान का अंदाजा लगाने और मदद पहुंचाने में हमेशा फिसड्डी साबित होता रहा है। आपदा में कमर तुड़ा बैठे किसानों की सुध लेने वाला कोई नहीं है। प्राकृतिक आपदा से नुकसान होने पर राहत व मुआवजे का झुनझुना सभी राजनीतिक पार्टियां बजाती हैं। हकीकत में मिलने वाला मुआवजा किसानों के जख्म पर मरहम लगाने भर का भी नहीं होता है। एक तरफ बारिश सरकार की आपदा की किसी भी परिभाषा में फिट नहीं होती जिससे फसलें लुटा चुके किसान किसी राहत के हकदार नहीं हैं, दूसरी तरफ आपदा की श्रेणी में नुकसान करने वाली बारिश को शामिल भी कर लिया जाये तो नुकसान का आकलन करने वाली मौजूदा प्रणाली उसे कुछ मिलने नहीं देगी। फसलों को तबाह करने वाली प्राकृतिक आपदा की श्रेणी में जिन 12 विषयों को शामिल किया गया है, उनमें ओलावृष्टि, बाढ़, चक्रवात, बादल का फटना, सूखा पड़ना, भूकंप, सुनामी, भूस्खलन, हिमपात, अग्निकांड, रोगों का प्रकोप व पाला गिरना शामिल हैं।

राजस्व विभाग की ओर से कोई भी आपदा होने पर फसलों में हुए नुकसान के आकलन के लिए विशेष गिरदावरी की जाती है। इसके तहत विभाग के कर्मचारी हर खेत में मौके पर जाकर पता लगाते हैं कि किस खेत में कौन-सी फसल की बुआई

की गई है, काश्तकार व उसके मालिक का नाम क्या है और आपदा से फसल को कितना नुकसान हुआ है। नुकसान के आकलन के लिए सरकार ने स्लैब बनाए हैं जिन्हें तालिका 1 में प्रदर्शित किया गया है।

प्राकृतिक आपदा से फसलों के तहस-नहस होने का आकलन करने के लिए निचले स्तर पर सरकारी मुलाजिम लेखपाल, कानूनगो, तहसीलदार और एसडीएम होते हैं। इनकी रिपोर्ट क्रमशः जिला कलेक्टर से होती हुई राज्य प्रशासन और केंद्र सरकार के पास ऊपर पहुंचती है। इसके बाद केंद्र का एक विशेषज्ञ दल प्रभावित राज्यों का दौरा कर उनके आंकड़ों की तस्दीक करता है। तत्पश्चात राज्य प्रशासन के साथ बैठक कर अपनी रिपोर्ट केंद्र को सौंप देता है। प्राकृतिक आपदा से नुकसान पहुंची फसलों के संबंध में प्रभावित राज्यों की रिपोर्ट मिल जाने के बाद गृहमंत्री की अध्यक्षता वाली उच्चाधिकार प्राप्त समिति (एचएलसी) की बैठक में इसे मंजूरी दी जाती है। तब कहीं मुआवजे की राशि राज्य प्रशासन के पास पहुंचती है। इसके बाद इस राशि को किसानों तक पहुंचाने में उसी प्रशासनिक सीढी का सहारा लिया जाता है। लिहाजा किसानों को मुआवजा मिलने की प्रक्रिया जितनी आसान दिखती है, उतनी ही कठिन व टेढ़े-मेढ़े रास्ते से गुजर कर पहुंचती है।

जब भी फसलों की बर्बादी होती है तो फसल बीमा की बात की जाती है जिसे तीस साल पहले पायलट प्रोजेक्ट के रूप में जिस खराब डिजाइन के साथ शुरू किया गया था, कमोबेश आज भी उसका वैसी ही रूप जारी है। किसान और बीमा कंपनियां इसको लेकर उदासीन हैं। बड़े-बड़े दावों के बावजूद वास्तविकता यह है कि ऐसे किसानों की संख्या पांच प्रतिशत से अधिक नहीं है जो प्रभावी रूप से विभिन्न फसल बीमा स्कीमों के दायरे में हैं। यहां तक कि लागत एवं मूल्य आयोग ने इस संबंध में संशय जाहिर किया है। बीमा कंपनियां वार्षिक के बजाय प्रति फसल के हिसाब से जोड़कर लाभार्थी किसानों की संख्या दोगुनी गिनती हैं। सबसे बड़ी समस्या यह है कि बीमा कंपनियां ब्लॉक या तालुका स्तर पर फसल नुकसान का आकलन औसत नुकसान के आधार पर करती है। जब तक बेमौसम बारिश के कारण ब्लॉक के 70 प्रतिशत क्षेत्र में फसल का नुकसान नहीं होता तब तक किसी भी किसान को मुआवजा नहीं मिलता।[7] यह तर्कसंगत नहीं लगता। यदि आप किसी शहर में रहते हैं और आपका घर आग से जल जाता है तो बीमा कंपनी नुकसान की भरपायी करती है। तब वह कॉलोनी के अन्य प्रभावित मकानों के औसत नुकसान के आधार पर आकलन नहीं करती। भारी भरकम कर्ज तले दबे ये किसान और अधिक नुकसान बर्दाश्त करने की स्थिति में नहीं हैं। बीमा नीतियों में खामी उनकी परेशानियों को और बढा रही है।

तालिका 1

हरियाणा में मुआवजे का स्लैब

फसल	खराब का प्रतिशत	प्रति एकड़ पुराना मुआवजा (रुपये में)	प्रति एकड़ नया मुआवजा (रुपये में)
गेहूँ	25 से 50	5000	7000
	50 से 75	7500	9500
	75 से 100	10000	12000
सरसों	25 से 50	4000	5500
	50 से 75	5000	7000
	75 से 100	7500	10000

स्रोत : दैनिक जागरण, रोहतक, 16 अप्रैल 2015

भंडारण की अव्यवस्था

हरियाणा में हर फसल की कटाई के बाद सरकार व कृषि विभाग का दम फूलने लगता है। कारण स्पष्ट है कि फसल खरीद से लेकर उसके भंडारण तक हर मोर्चे पर ऐसी चुनौतियां विद्यमान हैं जो सरकार की प्रतिबद्धता और विभाग की दूरदर्शिता के घोर अभाव की परिचायक बन चुकी हैं। बीमारी का अर्से से पता हो व उसके इलाज के बारे में भी जानकारी हो लेकिन फिर भी उसका निदान न किया जाए तो जख्म का नासूर बनना स्वाभाविक है। राज्य में भंडारण की क्षमता ऐसा ही नासूर बन रही है जो हर साल सरकार को अरबों का नुकसान पहुंचाते हुए लगातार विस्तार पा रहा है। अनाज उत्पादन के मामले में अव्वल राज्यों में शुमार हरियाणा भंडारण क्षमता में आज भी फिसड्डी है। प्रदेश में पर्याप्त गोदाम न होने के कारण हर साल 20 से 25 फीसद अनाज बारिश में भीगने से सड़ जाता है। विभिन्न जिलों में इस समय 55 लाख मीट्रिक टन से अधिक अनाज खुले में पड़ा हुआ है जिसका विवरण तालिका 2 में दिया गया है।

बीते चार वर्षों में आधा दर्जन जिलों भिवानी, फरीदाबाद, झज्जर, महेन्द्रगढ़ व यमुनानगर में नए गोदाम बनाने का एक भी प्रोजेक्ट बैंकों से स्वीकृत नहीं हुआ है। हालात बदतर होते देख आठ जिलों में अगले तीन वर्ष में नाबार्ड द्वारा 16 लाख मीट्रिक टन क्षमता के गोदाम बनाए जाएंगे। इससे स्पष्ट है कि अभी अनाज को खुले में ही रखना होगा। नई फसल आने पर स्थिति का और बिगड़ना तय है। सरकार अनाज भंडारण क्षमता 107.25 लाख मीट्रिक टन होने का दावा करती है, लेकिन वास्तव में इससे काफी कम सुरक्षित भंडारण हो रहा है। राज्य की अपनी खुद की गोदाम भंडारण क्षमता 48.79 लाख मीट्रिक टन है।[8] 5.24 लाख मीट्रिक टन क्षमता के गोदाम निजी उधमी गारंटी योजना के तहत बनाए गए हैं। 30.20 लाख मीट्रिक टन अनाज का टीन के शेड व खुले में भंडारण किया जाता है। राज्य सरकार इस व्यवस्था को भी भंडारण मानकर चलती है। अप्रैल 2015 तक राज्य के पास 70 लाख 60 हजार 425 मीट्रिक टन अनाज है जिसमें से मात्र 13 लाख 16 हजार 421 मीट्रिक टन ही गोदामों में सुरक्षित है। हरियाणा की मंडियों में कुल कृषि उपज की आवक की बात करें तो वर्ष 2013-14 में 1,85,85,500 टन की आमद हुई जबकि इस अवधि में गोदामों की भंडारण क्षमता 70,60,425 टन ही रही।[9] यदि सकल खाद्यान्न की बात करें तो जरूरत के अनुसार 50 फीसदी भी भंडार गृह नहीं बन पाए हैं। इस कारण खरीद एजेंसियां सीजन के समय अनाज मंडियों के शेड अपने अधिकार क्षेत्र में ले लेती है। कायदे से ये शेड किसान की पैदावार के लिए होते हैं, लेकिन किसान की उपज सड़कों पर बर्बाद होती रहती है। समूचे प्रदेश की

तालिका 2

हरियाणा में भंडारण की स्थिति (अप्रैल 2015 तक)

एजेंसी	अनाज (लाख मीट्रिक टन में)		
	खुले में	ढका हुआ	कुल
हैफेड	32.9	7.2	40.1
फूड एंड सप्लाई	18.3	2.9	21.2
कान्फेड	5.8	0.9	6.7
एचडब्ल्यूसी	0.4	2.2	2.6
कुल	57.4	13.1	70.6

स्रोत : hwc.nic.in

अनाज मंडियों में अव्यवस्था के लिए किसान नेताओं की नजर में सीधे तौर पर सरकार और प्रशासन दोषी है। उनका कहना है कि सरकार किसानों की समस्याओं के प्रति कतई गंभीर नहीं है जो कि कहती तो बहुत कुछ है लेकिन हकीकत में करती कुछ नहीं है। मंडियों में रख रखाव की जिम्मेदारी मार्केटिंग बोर्ड की होती है लेकिन किसानों से करोड़ों रुपये का राजस्व मिलने पर भी बोर्ड इस जिम्मेदारी का निर्वहन ईमानदारी से नहीं करता। होना तो यह चाहिए कि मार्केटिंग बोर्ड द्वारा समस्त खर्च सार्वजनिक किया जाए कि मंडियों में किस व्यवस्था के सुधार में कितना खर्च किया गया।

अनाज उत्पादन में अग्रणी राज्यों में शामिल हरियाणा की चर्चा सबसे अधिक अनाज खराब करने वाले प्रांत के रूप में भी की जाती है। विडंबना यह है कि लाखों टन अनाज को खुले में तिरपाल के नीचे भंडारण किया जाता रहा है, बदतर स्थिति यह है कि भंडारों में जितना अनाज रखा गया है वह भी सुरक्षित नहीं। नए मामलों में विभिन्न जिलों के गोदामों में 2014 में 52 करोड़ रुपये का गेहूँ सड़ गया।[10] 42 हजार 987 मीट्रिक टन गेहूं डैमेज घोषित कर दिया गया।[11] एफसीआई का 32111.61 मीट्रिक टन, फूड एंड सप्लाई का 1478 मीट्रिक टन व कान्फेड का 11130 मीट्रिक टन गेहूं खराब हो गया।[12] एक अनुमान के अनुसार वर्तमान तक प्रदेश में करीब 52 खरब से ज्यादा की राशि का गेहूँ खराब हो चुका है।[13] मार्च 2015 में उजागर हुए एक मामले में यह तथ्य सामने आया कि कुरुक्षेत्र में 2011-12 में खरीदे गये तीन हजार क्विंटल गेहूँ को 2015 तक घुन ने चट कर दिया।[14] खराब हो चुके इस गेहूं के उठान के लिए जब टेंडर निकाले गये तो कोई भी ठेकेदार इसे लेने को तैयार नहीं हुआ। खुले में रखा खराब हो चुका गेहूं नए गेहूं के लिए भी खतरनाक साबित हो सकता है। सरकार इन सभी सड़े हुए अनाजों से निजात पाने की युक्ति ढूंढ रही है। स्वाभाविक सवाल है कि इस अनाज को खरीदेगा कौन ?

खुले में पड़ा अनाज खराब होने के समाचार जब-तब मिलते रहे हैं, पर उसमें तो अधिकारी वर्षा आदि का बहाना बना कर अपनी जिम्मेदारी से बच निकलते हैं पर यहां बात भंडारों में अनाज सड़ने की है तो निश्चित रूप से जवाबदेही हर कीमत पर तय करनी होगी। कुछ मामले तो ऐसे भी सामने आ चुके हैं कि अधिकारियों ने अपने लाभ के लिए अनाज की बोरियों पर पानी डलवा कर वजन बढाया और अनाज बाहर भेजा। जो नहीं भेजा जा सका उसमें फफूंद लग गई। उसके लिए या तो चूहों को जिम्मेदार बता दिया गया या फिर गोदाम में नमी बढ़ने का बहाना बना कर मिड डे मील अथवा राशन की दुकानों पर भेज दिया गया। इस घालमेल में करोड़ों के वारे-न्यारे हुए। एक तरफ तो करोड़ों रुपये का अनाज सड़ रहा है वहीं दूसरी तरफ अनाज वितरण के सार्वजनिक कार्यक्रमों में गरीबी का खुलकर मजाक उड़ाया जाता है जहां आटा-चावल की थैलियों के लिए उपस्थित भारी भीड़ को पुलिस के लाठी-डंडे खाने पड़ते हैं। अनाज को सड़ने देने से बेहतर है कि उसे पहले ही गांव गांव जाकर गरीबों को वितरित कर दिया जाए।

कृषि: घाटे का सौदा

किसानों में निराशा की कई वजह हैं। सबसे बड़ी वजह है उत्पादन लागत बढना व मुनाफा कम मिलना। ये सच है कि एक बड़ा शिक्षित वर्ग खुद को खेती से दूर कर चुका है। साधारण किसानों का भी खेती के प्रति मोहभंग हो रहा है। वे अपनी जमीन बंटाई पर दे रहे हैं, लेकिन काश्तकार को जो लागत आ रही है उसकी तुलना में मुनाफा बहुत ही मामूली है। ऐसे में यदि मामूली मुनाफा भी राम की मार से छिन जाए तो बेबस किसान को कैसे राहत मिलेगी? छोटे से उद्योग का बीमा कराने में बैंक से लेकर सरकार तक सबकी रूचि होती है लेकिन किसान की कमाई की फिक्र करने में किसी की भी रूचि नहीं है। स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट के अनुसार कुल लागत का 50 प्रतिशत मुनाफा किसान को मिलना चाहिए लेकिन यहां तो न्यूनतम समर्थन मूल्य भी नहीं मिल पा रहा। बाजरा कई वर्ष से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर नहीं बिका है। सरसों का न्यूनतम समर्थन मूल्य कई वर्षों से खुले बाजार से भी कम रहा है। समर्थन मूल्य में कम-से-कम इतनी तो बढ़ोतरी होनी ही चाहिए जिससे काश्तकार को न्यूनतम मजदूरी मिल सके। खेती में प्रति एकड़ लागत व आमदनी को तालिका 3 में दर्शाया गया है।

तालिका 3 से स्पष्ट होता है कि एक किसान को प्रति एकड़ गेहूं की फसल पर सिर्फ 19810 रुपये का मुनाफा होता है जो कि केवल नाममात्र का ही है। सब कुछ ठीक ठाक रहे तो भी खेती से किसान की दिहाड़ी नहीं निकलती। दिन-रात मेहनत करने के बाद भी फसल कटाई के बाद जब सारा हिसाब-किताब किया जाता है तो खेती घाटे का सौदा साबित होती है। खुद की जमीन पर खेती करने के बाद भी किसान को मजदूर जितनी भी दिहाड़ी नहीं पड़ती है। किसानों की माने तो धान की रोपाई से पहले जुताई पर 5000 रुपये खर्च हो जाते हैं। धान रोपाई 3200, खाद-दवाई 5000 रुपये और सिंचाई पर 3000 रुपये खर्च आता है। अगर एक बार भी बिजली की मोटर सड़ जाए तो 5000 रुपये और खर्च होंगे। ऐसे में एक एकड़ धान पर 16 से 20 हजार रुपये खर्च हो जाते हैं जबकि पिछले सीजन में एक एकड़ में 25000 से 30000 रुपये की ही धान हुई थी।[15] गेहूँ

तालिका 3

प्रति एकड़ गेहूं की लागत व आमदनी

मदें	खर्चा लागत (रुपये में)	आमदनी मदें	आय (रुपये में)
खेत की जुताई	1600	औसत पैदावार	18 क्विंटल
खाद की बुवाई	400		
डीएपी	1150		
दो बार मेज लगवाई	400	सरकारी समर्थन मूल्य	1450
बीज की बुवाई	400		
दो बार यूरिया पर खर्च	540		
पांच बार ट्यूबवैल का पानी	3500	गेहूँ की बिक्री	26100
कटाई	5000		
निकलवाई	2000	तूड़ी की बिक्री	9000
मंडी तक किराया	300		
कुल लागत (रुपये में)	15290	कुल आमदनी (रुपये में)	35100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची

नोट : उपर्युक्त आंकड़े महेंद्रगढ़ जिले के नगर नारनौल की अनाज मंडी मे आने वाले किसानों से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त किये गये हैं जिसमे 30 किसानों का साक्षात्कार किया गया।

और धान की फसल से किसान को साल में केवल 30000 से 35000 रुपये की ही बचत होती है। किसान की हालत तो दिहाड़ी करने वाले मजदूर से भी दयनीय है। पिछले कुछ समय से बढ़ती लागत व घटती आमदनी से अन्य खर्च तो दूर सामान्य रूप से परिवार चलाना भी मुश्किल होता जा रहा है। फसल भले ही किसान की होती हो, परंतु उसका मुनाफा किसान से ज्यादा आढ़तियों को मिलता है। कोई मार्ग न दिखते हुए किसान आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं। पिछले 20 वर्षों में करीब तीन लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं।[16] आत्महत्या निराशा का सूचक है, लेकिन इसके लिए हिम्मत की जरूरत होती है। आत्महत्या करने वाले ये किसान राजनीतिक तंत्र तक अपनी आवाज पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन उनकी मौतें भी संवेदनहीन हो चुकी व्यवस्था को निद्रा से जगा नहीं पाई हैं।

सुझाव

अगर यह कहा जाए कि किसानों को रामभरोसे छोड़ दिया गया है तो गलत नहीं होगा। सरकार अभी तक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बना सकी जिससे दूसरे क्षेत्रों की तरह कृषि में नुकसान की भरपाई हो सके। कई बार ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति बनी जब मुआवजे के रूप में किसान को सौ रुपये से भी कम राशि का चेक थमा दिया गया। यह जले पर नमक छिड़कने जैसा है। ऐसे में व्यवस्था पर से धरती पुत्र का भरोसा टूटने लगा है। किसानों को इस बदहाल स्थिति से निकालने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

- हर किसान की फसल का बीमा होना चाहिए। जिन किसानों की प्रीमियम भरने की हिम्मत नहीं, उनका प्रीमियम सरकार भरे।
- बीमा कंपनियां पूरा नुकसान वहन न करे तो भी किसान को इतना मुआवजा जरूर मिले जिससे उत्पादन लागत कवर हो।
- आपदा प्रभावित क्षेत्र में गिरदावरी में देरी न की जाए।
- सरकार के प्रतिनिधि किसानों के बीच जाकर उन्हें आश्वस्त करें जिससे खुदकुशी जैसी नौबत न आए। किसानों को खाद, पानी, बीज और बिजली के लिए मिल रही सरकारी सहायता को दुरुस्त करना होगा।
- किसानों को कृषि की नवीनतम तकनीकों से अवगत कराया जाए कि कैसे लागत कम रखें जिससे आपदा के समय कम नुकसान हो।
- सरकारी स्तर पर उनको फसलों का उचित दाम दिलाया जाए। फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में इजाफा किया जाए।
- मंडी में बिचौलियों की भूमिका को खत्म किया जाए।
- सरकारी मुआवजे की रकम को दोगुना किया जाए।
- गोदामों की स्थिति व रख रखाव के इंतजामों की धरातल पर समीक्षा करते हुए अन्न भंडारण की व्यवस्था दुरुस्त करनी होगी।
- अनाज के भंडारण का इंतजाम गांवों में ही कर देना चाहिए। साथ ही फसल की खरीद गांव के भंडार गृह से ही प्रारंभ कर देनी चाहिए ताकि गरीब किसानों को शहरी मंडियों व मुनाफाखोरों के चक्कर न काटने पड़े।

खेती से होने वाली आमदनी में इजाफा नहीं हुआ तो किसानों के लिए कोई उम्मीद नहीं बचेगी। किसानों को कर्ज नहीं आमदनी चाहिए। वर्षों से किसानों को बेहतर कमाई से वंचित किया जा रहा है। एक के बाद एक आने वाली सरकारें जानबूझकर किसानों को गरीब बने देखना चाहती हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. www.haryana.gov.in, accessed on 25/07/2015 at 4.30 pm
2. वही
3. दैनिक जागरण, रोहतक, 16 अप्रैल 2015, पृ. 9
4. वही
5. www.prsindia.org, accessed on 25/07/2015 at 5.10 pm
6. www.springer.com, accessed on 26/07/2015 at 5.29 pm
7. दैनिक जागरण, रोहतक, 16 अप्रैल 2015, पृ. 9
8. www.agricoap.nic.in,accessed on 27/07/2015 at 11.46 am
9. www.hwc.nic.in, accessed on 03/08/2015 at 10.16 pm
10. wap.business-standard.com, accessed on 29/07/2015 at 10.22 pm
11. वही
12. www.hwc.nic.in, accessed on 03/08/2015 at 10.16 pm
13. www.tribuneindia.com, accessed on 03/08/2015 at 11.16 pm
14. वही
15. दैनिक जागरण, रोहतक, 16 अप्रैल 2015, पृ. 9
16. www.ncrb.in, accessed on 05/08/2015 at 9.36 pm

पी.एच.डी. शोधार्थी लोक प्रशासन विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक,
सम्पर्क-9015482250

हरित क्रान्ति और हरियाणा का विकास

❑कमलेश चौधरी

हरियाणा का नाम आते ही कृषि व किसान पर आधारित प्रदेश की छवि आँखों में उभर आती है। जो हरा भरा व सम्पन्न है, पर सच्चाईयाँ कुछ इससे इतर भी है।

हरियाणा का निर्माण हुए 51 साल बीत गये हैं। इन वर्षों में कृषि में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। हरियाणा के सन्दर्भ में इस कालखण्ड को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग हरित क्रान्ति का उद्‌भव, दूसरे कालखण्ड में हरित क्रान्ति का प्रभाव व तीसरा यानी वर्तमान कालखण्ड जो हरित क्रान्ति के दुष्परिणाम की उपज है।

आजादी के बाद यकीनन देश की जनता को अन्न उपलब्ध कराना जरूरी था। इसके लिये ठोस कृषि नीति की आवश्यकता थी। इसके परिणामस्वरूप हरित क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ। विदेश में तैयार किये गये उन्नत बीज, उपज बढ़ाने के लिए तैयार किये गये रासायनिक उर्वरक, सस्ते ब्याज पर उपलब्ध कृषि उपकरण आदि चीजों की शुरूआत हो गई। यहां हरियाणा की कृषि में एक टर्निंग प्वाईंट आया - ट्रैक्टरों का आगमन और बैलों की विदाई। फसलों की बम्पर पैदावार होने लगी। परम्परागत सिंचाई के साधनों की जगह अब कृषि भूमिगत जल पर आधारित थी। सो सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध होने पर तीन-तीन फसलें ली जाने लगी। एकबारगी लगा कि किसान का जीवन सम्पन्न हो गया। कच्चे घरों की जगह पक्के मकान, मोटरसाईकिल, फ्रिज, टेलीविजन, कृषि उपकरण गांवों के किसानों के घर की शोभा बढ़ाने लगे। यह दौर 1990 के दशक तक बरकरार रहा और हरियाणा ने कृषि विकास के अनेक नये कीर्तिमान में स्थापित किये। हरियाणा देश ही नही विदेशों में एक चर्चित राज्य बन गया।

इसके बाद नब्बे का दशक बीतते-बीतते इस विकास में ठहराव दिखाई देने लगा। इसका कारण यह है कि हरियाणा में अस्सी प्रतिशत किसानों के पास जोत की जमीन पांच एकड़ या उससे कम है। अब तक ये किसान बैलों पर निर्भर थे तो गुजारा ठीक हो जाता था। मगर उन्होंने भी बड़े जमीदारों की नकल करके ट्रैक्टर खरीद लिये। जिन्होंने ट्रैक्टर नही खरीदे वे ट्रैक्टर वालों से किराये पर अपनी जमीनें जुतवाने लगे। इस तरह खेती करना महंगा होता गया।

यहां हरियाणा की कृषि में एक टर्निंग प्वाईंट आया - ट्रैक्टरों का आगमन और बैलों की विदाई। फसलों की बम्पर पैदावार होने लगी। परम्परागत सिंचाई के साधनों की जगह अब कृषि भूमिगत जल पर आधारित थी। सो सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध होने पर तीन-तीन फसलें ली जाने लगी। एकबारगी लगा कि किसान का जीवन सम्पन्न हो गया। कच्चे घरों की जगह पक्के मकान, मोटरसाईकिल, फ्रिज, टेलीविजन, कृषि उपकरण गांवों के किसानों के घर की शोभा बढ़ाने लगे।

विदेशी बीज और विदेशी उर्वरकों ने जमीन की स्वाभाविक उर्वरता को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप फसलों में बीमारी आने लगी। कई बार तो आन्ध्रप्रदेश में कपास, उत्तरप्रदेश में गन्ना और हरियाणा में धान की पूरी की पूरी फसल ही तबाह हो गई। इसका तोड़ ढूंढने में मोन्सेटो, कारगिल जैसी कम्पनियां सक्रिय हो गई। लेकिन इसकी मार अभी तक बड़े किसानों तक नही पहुंची थी। छोटा किसान ही इस दुश्चक्र का शिकार हुआ था।

तीसरे कालखण्ड में विश्व व्यापार संगठन और डंकल प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करके तत्कालीन सरकारों ने भारतीय किसान व कृषि की कमर तोड़ दी। सरकार ने किसानों को हर चीज के ऋण देना शुरू कर दिया। शायद सरकार को यही एकमात्र समाधान दिखाई दिया। पहले कृषि उपकरणों के लिये कर्ज, फिर बीज के लिये कर्ज, खाद के लिये कर्ज, फिर फसल बचाने के लिये पेस्टीसाईड खरीदने के लिये कर्ज, बैंक की लिमिट खत्म हो जाये तो साहूकार या आढ़ती का कर्ज। मर खप कर फसल पैदा कर ली तो भाव तय नही। मण्डी में आढ़ती, बनिये, बिचौलों की लूट का शिकार बनते हुए किसान का सफर कई बार सल्फास की गोली या फांसी का फंदे पर लटक कर तय होता है। इस दुष्चक्र में हरियाणा ही नहीं पूरे देश का किसान फंस गया है। समाधान कुछ दिखाई नही देता। यद्यपि सरकारों ने किसानों के ऋण माफ किये है। मगर किसान को जरा जरा सी बात पर ऋण न लेना पड़े। ऐसी नीति अभी तक नहीं बनी। हरियाणा में किसानों की आत्महत्या के आंकड़े बढ़ रहे है।

इन तीनों कालखण्डों के घटनाक्रम को देखें तो सवाल उठता है जो हरित क्रान्ति किसान के हित को देखते हुए शुरू की गई थी वह इस तरह असफल क्यों हो गई।

हरित क्रान्ति या कृषि का विकास समय की जरूरत थी। लेकिन इस को लागू करते समय अपने परम्परागत साधनों, कुदरती उर्वरकों एवं सिंचाई के स्रोतों को एकदम दरनिकार किया गया। फलस्वरूप तालाब, जोहड़, छोटी नदियां उपेक्षित होकर बर्बाद हो गई। इसकी दोहरी चोट खेती किसान पर पड़ी। बोरवेल का खर्चा बढ़ा। भू-जलस्तर गिरता चला गया। मोटरें नीचे जाती गई हर वर्ष बोरवेल में ओर पाईप डालने पड़े जिस पर इतना खर्चा होता है कि पूरी फसल बेचकर भी चुकता नही होता।

ऐसा करना मजबूरी बन गया है क्योंकि परम्परागत साधनों की पूरी तरह बर्बादी के कारण उनके पास कोई विकल्प बचा ही नही। यदि बोरवेलों के साथ अपनी परम्परागत विरासत को भी बचाया जाता तो स्थिति इतनी बदतर नही होती। संतुलित समन्वय बना कर विकास का माडल तैयार किया जाना चाहिए था। हरियाणा के कई क्षेत्र 'डार्क जोन' में आ चुके है।

इस कारण खेती व किसानों की कमर

तोड़ने में ट्रैक्टरों का भी बहुत योगदान है। ट्रैक्टर के लिये पांच लाख और उसके साथ लगते उपकरणों का भी पांच से छः लाख लगभग ग्यारह बारह लाख का कर्ज किसान को उम्रभर के लिये बंधुआ बना देता है।

तीसरा कारण है ऊटपटांग बीज जिन्हें टरमीनेटर कहा जाता है। उन्होंने भी कृषि व किसान की कमर तोड़ने में कोई कसर नही छोड़ी है। इस तरह के बीज हर फसल के लिये खरीदने पड़ते है। किसान अपना बीज तैयार नही कर सकता। बीज की प्रजाति के अनुसार रसायनिक उर्वरक, पानी व पेस्टीसाईड भी अलग से खरीदने को बेबस है किसान। बड़ी-बड़ी कम्पनियां मोटा मुनाफा कूटने के लिए किसान की जेब पर कैंची चला रही हैं। चाहे वे उर्वरक कम्पनी हो या ट्रैक्टर, कृषि उपकरण बनाने वाली कम्पनी हो या पेस्टीसाईड बेचने वाली कम्पनी।

इस स्थिति से उबरने के लिए ऋण माफी काफी नहीं, बल्कि एक स्थायी नीति बनानी चाहिए जिससे किसान को छोटी-छोटी जरूरतों के लिए ऋण न लेना पड़े। दलहन व तिलहन की फसलों पर जोर देकर गन्ना व चावल का क्षेत्र सीमित किया जा सकता है। जिससे हमारा भूमिगत जल भण्डार बर्बाद होने से बच सके। बैलों से खेती करने वाले किसानों को प्रोत्साहन के रूप में सब्सिडी दी जानी चाहिए।

एक बात जिसकी ओर ध्यान देना जरूरी है कि किसान का दो रूपये में बिकने वाला आलू अंकल चिप्स के पास जाकर 200 रूपये किलो क्यों हो जाता है। टमाटर का भाव 125 रूपये किलो क्यों हो जाता है। इस भारी मुनाफे में किसान का हिस्सा तय होना चाहिए। स्वदेशी बीजों को भी वैज्ञानिक विधि से उन्नत करने के प्रयास किये जाये। डा. वंदना शिवा 'बीज बचाओ अभियान के तहत इसी काम में जुटी हुई है। मूल्य तय करते समय किसान की लागत व मेहनत मिलाकर ही मूल्य तय किया जाना चाहिये। तभी हमारी कृषि भी बचेगी और हमारे किसान भी। इससे केवल हरियाणा का ही नही पूरे राष्ट्र का किसान समृद्ध होगा। कृषि प्रधान देश में कृषि का विकास ही राष्ट्रीय विकास की गारंटी होता है।

सम्पर्क-098134-46370

•

बदलते हालात-पिछड़ती कृषि

❑डा. जोगिन्द्र सिंह मोर

धरती की सदियों से इकट्ठी की हुई उत्पादन शक्ति को आधी सदी से भी कम समय में हमने उसे निचोड़ कर रख दिया है। हमने धरती से निकाला ज्यादा है और उसे दिया कम है। अपनी खर्च हो चुकी उत्पादन शक्ति को खुद नये सिरे से पैदा करने की शक्ति धरती में जरूर है, परन्तु इसके लिए हम उसे समय नहीं देते। इस क्षमता के लिए धरती को सूर्य तथा केंचुए जैसे कीड़े की जरूरत है। फसल के बाद तुरंत अगली फसल से धरती का सूर्य से रिश्ता दूर हो गया है। जौहल कमेटी ने खेत को खाली रखने के लिए किसान को भारी मुआवजा देने की सिफारिश की है।

रासायनिक खादों व कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग ने धरती की सतह इतनी जहरीली कर दी है कि उसको उपजाऊ बनाने वाले जीव खत्म होते जा रहे हैं और यह जहर अनाज व साग सब्जियों से होकर मानव को महाबीमारियों की तरफ धकेल रहा है।

कृषि क्षेत्र के लिए जल संकट बहुत बड़ी समस्या है। यदि प्रत्येक वर्ष ट्यूबवैल की पाईप एक-दो दो मीटर गहरी करते जाएंगे, तो कहां पहुंचेंगे। धरती से पानी निकालने के तो लाखों सुराख बना दिए हैं, परन्तु जिन सुराखों से धरती बारिश का पानी पीती है, वे सारे बंद किए जा रहे हैं।

बहुत प्रचार हुआ है कि किसान गेहूं व धान की फसली चक्र से बाहर निकले, परन्तु किसान की अपनी मजबूरी है। उसकी जमीन थोड़ी रह गई है। अभी धान व गेहूं की फसल की पैदावार अन्य फसलों के मुकाबले निश्चित है। यह थोड़ी बहुत खराब मौसम की मार झेल लेती है। इनकी मंडियां है और सरकार इनके भाव भी निर्धारित करती है। बेशक ये भाव किसान को कम लगते हों, परन्तु उसको तसल्ली होती है कि कम से कम इतना तो मिल जाएगा तथा समय पर मिल जाएगा। तिलहन व दलहन की फसलें एक भी फालतू बारिश सहन नहीं कर पाती। इस सबके बावजूद यदि इनकी पैदावार किसी वर्ष अधिक हो जाए तो भाव इतने गिर जाते हैं कि अगले वर्ष तक किसान इनको बोने का विचार छोड़ देता है। सरकार के सक्रिय सहारे के बिना किसान के लिए फसली चक्र बदलना संभव नहीं।

भारतीय किसान की असली लड़ाई विश्व व्यापार संगठन से है, लेकिन विश्व व्यापार संगठन में रहते हुए भी हम अपनी कृषि व्यवस्था को चौपट करने वाली वस्तुओं की आयात पर प्रतिबंध लगा सकते हैं।

कृषि क्षेत्र की दशा सुधारने के लिए हमें ठोस निर्णय लेने होंगे, ताकि देश के आधार स्तम्भ किसान वर्ग को वर्तमान परिस्थितियों से उबारा जा सके। इसके लिए कुछ सुझावों पर गौर किया जा सकता है जैसे :-

1. फसलों के लिए अच्छे किस्म के बीजों की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित की जाए।
2. सरकार को प्रत्येक पंचायत क्षेत्र में सहकारी गोदाम स्थापित करने को प्रोत्साहन देना चाहिए।
3. कानूनी न्यूनतम मजदूरी को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाए। कृषि पर आधारित मजदूरों के लिए पैंशन योजना लागू की जाए।
4. चीनी उद्योग के लिए नियमों में ढील दी जाए, ताकि गन्ने का उपयोग बढ़ सके और गन्ना पैदा करने वालों को बेहतर मूल्य मिल सके।
5. फलों, सब्जियों की पैदावार और मुर्गीपालन को बढ़ावा दिया जाए। डेयरी, मत्स्यपालन और रेशम उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए उपाय किए जाएं।
6. जो रियायतें उद्योगों को उपलब्ध हैं वही कृषि को भी मिलनी चाहिएं।
7. प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए अलग कोष स्थापित किया जाए।

•

हरियाणा में खेती किसानी-विमर्श

□सुरेंद्र कुमार

आधुनिक हरियाणा में कृषि को समझने के लिए कोई एक सिद्धांत या एक वैचारिक फार्मूला काम में नहीं लाया जा सकता। जब हम पहले के अध्ययनों पर निगाह डालते हैं, तो उनमें कई अलग-अलग पहलू उभरकर सामने आते हैं जो कई बार अंतर्विरोधी भी होते हैं।

हरियाणा के खेतिहर ढांचे को समझने के कई आख्यान हैं। उनमें से तीन आख्यान गिनाये जा सकते हैं। ऐसा नहीं है कि ये तीनों आख्यान एक दूसरे से कटे हुए हों। बल्कि यूँ कहें कि तीनों आपस में एक -दूसरे पर निर्भर हैं।

पहला- शुद्ध अकादमिक विमर्श जो कि प्रतिष्ठित शोध पत्र-पत्रिकाओं में चलता है। यह विमर्श आर्थिक-सामाजिक पक्षों के तकनीकी पहलुओं पर प्रकाश डालता है। इनमें शीला भल्ला, टॉम ब्रास, सुरिन्दर जोधका, सत्य पॉल और प्रेम चौधरी प्रमुख हैं।

दूसरा आख्यान है - गंभीर पत्रकारिता से जुड़े समूहों और विचारकों का, जिन्होंने अकादमिक काम और आम जन के बीच की कड़ी की भूमिका निभाई है। उदाहरणार्थ प्रोफेसर दौलत राम चौधरी जैसे विचारक।

तीसरा है - आम किसान की रोजमर्रा की समस्याओं से जूझने में मदद करते हुए किसान संगठनों और कार्यकर्ताओं का।

जब हम इन तीनों किस्म के आख्यानों को देखते हैं तो बहुत सी चीजे़ समान मिलती हैं जबकि कुछ बातें एक दूसरे से बिल्कुल उलट। हरियाणा में कृषि के स्वरूप और समस्याओं को लेकर कोई एक रंग का विचार मुमकिन नहीं है।

एक विचार तो ये है कि आज की कृषि असल में कृषि ही नहीं है, क्योंकि उसका पूरा स्वरूप पूंजी पर निर्भर हो गया है। सिर्फ ज़मीन में कोई चीज़ पैदा कर देने से क्या हम उसे कृषि कहें या नहीं? 'पूंजी' के प्रवेश के साथ ही 'औद्योगिकता' अंदर आ जाती है। ये वो कृषि नहीं है जो हजारों सालों से परिवार-आधारित, आत्म-निर्भर और टिकाऊ थी। अगर ये पूंजी आधारित है और परिवार श्रम से ज्यादा मशीनों-कीटनाशकों- उन्नत बीज किस्मों की फिक्र करती है तो हम आखिर किसको बचाने की बात कर रहें हैं?

हरियाणा का ऐतिहासिक कृषि-ढांचा परिवार के इर्द-गिर्द है। अब वो स्थिति बिल्कुल वैसी नहीं है। यहां सिर्फ एक 'भावनात्मक अपील' पैदा करने का प्रयास नहीं है जिसमें 'महान प्राचीनता' में लौट जाने जैसा कोई ख्याल हो।

तो हरियाणा की कृषि को पिछले पचास साल के आईने में जब हम देखते हैं तो एक बात रह-रहकर सामने आ जाती है। पूंजीवादी ढांचे वाली कृषि में एक ओर तो 'हरित क्रांति'-किसान खुशहाली-गांव की समृद्धि जैसे चमकदार पहलू हैं और दूसरी तरफ ऋण संकट और आत्महत्याएं भी हैं। जो भी हो हरियाणा ने समृद्धि का एक स्तर तो पाया ही है। चाहे प्रति व्यक्ति आय की बात हो या फिर गरीबी का उन्मूलन, हरियाणा आज भारत के सर्वाधिक अग्रणी राज्यों में एक है। यह सच है कि हरियाणा के एक तबके में समृद्धि आई है।

हरियाणा की राजनीति किसान और कृषि की राजनीति कही जाती है। यह लुभावने और भावुकता भरे मुहावरों का इस्तेमाल करती है। हरियाणा में एस.वाई.एल. नहर के पानी का वायदा और फिर उससे आने वाली समृद्धि का सपना कई चुनावीं घोषणा-पत्रों का अहम हिस्सा रहा। इस सबमें एक बात और जोड़ना महत्वपूर्ण है कि हरियाणा में किसान राजनीति है, लेकिन स्वतंत्र किसान आंदोलन नहीं।

हरियाणवी कृषि के इतिहास में 'हरित क्रांति' एक मील का पत्थर थी। इससे समृद्धि आई, फसलों का उत्पादन बेहद तेज गति और उछाल के साथ बढ़ा और खुद-काश्त यानी खेत के मालिक के खुद ही खेती करने का रूझान भी बढ़ा।

हरित क्रांति एक समय बाद ठहराव की स्थिति में आ गई। असल में हुआ ये कि जहां एक तरफ खाद्यान्न का उत्पादन लगातार बढ़ा वहीं दूसरी ओर खेती पर आने वाली लागत भी बढ़ती गई। जैसे यूरिया, कीटनाशक और मशीनों की कीमतें लगातार बढ़ी हैं।

भूमि की उत्पादकता की एक सीमा तो होती ही है। जमीन की उत्पादकता एक हद पर जाकर रूकती है। एक एकड़ में पैदा होने वाले अनाज को कई गुणा बढ़ा दिया गया। उन्नत बीज, यूरिया और कीटनाशकों के इस्तेमाल से बम्पर फसलें हासिल हुईं।

हरित क्रांति के समय बीजों की नई किस्मों की एक बड़ी भूमिका रही थी। उसमें भी एक ठहराव सा आ गया। बदलते समय में बीजों की किस्मों में हमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं दिखा।

हरियाणा में बड़ी जोत के किसान अधिक नहीं है। छोटी जोत के किसानों की जोत और भी छोटी होती गई है। भूमिहीन खेत-मजदूरों के हालात लगातार खराब हुए हैं।

राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा कम हुआ है। उद्योग जिस तरह से बढ़ा है उसने कृषि से उखाड़े गए श्रम को रोजगार नहीं दिया है। उद्योग खुद संकट और मंदी के दौर से गुजर रहा है।

1991 के बाद अर्थव्यवस्था की सुई पूर्णतया बाजार की तरफ घूम गयी। चाहे जो भी हो बाजार और सरकार को हर हाल में किसान केंद्रित और किसान हित में नीतियां बनाने के लिए काम करना चाहिए।

सम्पर्क - 9518600050

•

किसानों की समस्याएं कतई लाइलाज नहीं हैं: पी साईनाथ

कृषि विशेषज्ञ पी साईनाथ ने 11 जून को यूट्यूब पर लाइव स्ट्रीमिंग के जरिए हिंदुस्तान में किसानों की समस्याओं को सिलसिलेवार ढंग से समझाया। साईनाथ आधा घंटे तक अपनी बात बोले, फिर उन्होंने सवालों के जवाब दिए। जैसे-जैसे साईनाथ बोलते गए, ये साबित होता गया कि किसानों की समस्याएं कतई लाइलाज नहीं हैं और सरकारें और कॉर्पोरेट घराने मिल कर किसानों को लूटने में लगे हुए हैं। साईनाथ ने किसानों से जुड़े मुद्दों पर जो कहा, उस में से खासम-खास हम यहां दे रहे हैं:

ताज़ा आंदोलनों पर:

इस बार हुए आंदोलन अब तक हुए आंदोलनों से अलग हैं। पिछले 10-20 सालों में हुए आंदोलन उन इलाकों में होते थे जो खेती में पिछड़े माने जाते थे, मसलन विदर्भ। इस बार आंदोलनों का केंद्र नासिक-मंदसौर जैसे इलाके रहे हैं जो अपेक्षाकृत समृद्ध रहे हैं। माने किसानों के हालात बद से बदतर हुए हैं।

किसानों की मुश्किलें समझने के लिए आंदोलनों की जगह किसानों और खेत-मज़दूरों की जिंदगी की स्टडी होनी चाहिए। हर बार किसानों की समस्या आंकड़ों में गुम कर दी जाती है।

किसानों की समस्या को कर्ज या आत्महत्या तक सीमित करना बेवकूफी है। कर्ज़ और आत्महत्याएं किसानों की समस्याओं का नतीजा हैं, कारण नहीं।

किसानों की कर्ज माफी से सरकार को नुकसान पर:

केंद्र सरकार ने जब 2008 में किसानों का कर्ज़ माफ किया था तो राहत का कुल आंकड़ा था 56,000 करोड़। ये फायदा 4 करोड़ परिवारों को बंटा। इसी साल केंद्रीय बजट में 'स्टेटमेंट ऑफ रेवेन्यू फॉरगॉन' में दर्ज हुआ 78,000 करोड़ का नुकसान कुछ कॉर्पोरेट घरानों को दी सब्सिडी की वजह से था। इस साल ये नुकसान 5, 34,000 हज़ार करोड़ है। ये पैसा देश के 1-2 प्रतिशत 'क्रीम' लोगों को ही फायदा पहुंचाता है।

पूरी दुनिया में खेती तगड़ी सब्सिडी पर होती है। लेकिन भारत में मार्केट प्राइसिंग के नाम पर सब्सिडी को लगातार कम किया जा रहा है। सरकार के पास पैसा तो है। लेकिन उसकी प्राथमिकता में किसान नहीं हैं। 'नुकसान' का ढिंढोरा पीट कर दी जाने वाली राहत किसानों को नहीं ही मिलती। लोन माफ उनका ही होता है जिन्होंने बैंक से लोन लिया है। ज़्यादातर किसान बाज़ार से महंगे सूद पर पैसा उठाते हैं। उन्हें राहत नहीं मिलती।

मदद के नाम पर होने वाली बदमाशी पर :

लोन जिन शर्तों पर माफ किया जाता है, उसमें भी सरकारें खूब झोल करती हैं। एकड़ के हिसाब से लिमिट फिक्स की जाती है, जबकी अलग-अलग जगहों पर एकड़ के हिसाब से होने वाला फायदा-नुकसान अलग होता है। महाराष्ट्र में ऐसे उदाहरण सामने आए हैं जब लोन माफ इस तरह से किया गया कि एक इलाके के किसानों को ज़्यादा फायदा मिले, बनिस्बत दूसरी जगहों के। एक खास फसल उगाने वाले किसानों को फायदा पहुंचाने के उदाहरण भी सामने आए हैं।

केंद्र सरकार कहती है कि खेती से आय दोगुनी कर दी जाएगी। लेकिन वो ये नहीं बताते कि वो नॉमिनल इन्कम की बात कर रहे हैं या रीयल इन्कम। अगर सरकार नॉमिनल इन्कम की बात कर रही है तो इससे बड़ा मजाक कुछ नहीं हो सकता। नॉमिनल इन्कम तो अपने आप बढ़ जाती है। असल बात ये है कि रीयल इन्कम (माने वो पैसा जो किसान के हाथ में आता है) पिछले कुछ सालों में या तो स्थिर रही है या घटी है।

सरकार - कॉर्पोरेट गठजोड़:

सरकारों ने कॉर्पोरेट के साथ मिल कर किसानों को जम कर चूना लगाया है। उदाहरण के लिए एक पैकेट बीज का जर्मिनेशनर रेट पहले 80-88 फीसदी रखना होता था। माने एक पैकेट के 100 बीजों में से 80 में अंकुर न फूटे तो बीज को बेचने लायक नहीं माना जाता था। अब इसे घटा कर 60 प्रतिशत कर दिया गया है। तो कंपनियां कानून के दायरे में रह कर 40 फीसदी कचरा बेच रही हैं। हर पैकेट में। ऐसे ही कई और उदाहरण हैं।

कम सब्सिडी की वजह से कॉर्पोरेट फार्मिंग कंपनियां बढ़ती जा रही हैं। सरकारी नीतियों के चलते हर दिन 2000 किसान खेती छोड़कर दूसरा काम ढूंढने निकल रहे हैं। ये लोग इन कंपनियों के लिए सस्ते मज़दूर बन जाते हैं।

किसान आत्महत्या के आंकड़ों में होने वाला झोल:

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के डाटा को लगातार इस तरह से पेश करने की कोशिश हो रही है जिससे लगे कि किसानों की आत्महत्या के मामले कम हो रहे हैं। 'किसानों के परिजनों द्वारा आत्महत्या' की तरह के अजीबो-गरीब कॉलम बनाए जा रहे हैं। इससे किसानों की आत्महत्या वाले कॉलम में नाम कम हो जाते हैं।

खेती से जुड़ी परेशानियों के चलते बहुत बड़ी संख्या में औरतें आत्महत्या कर रही हैं। लेकिन चूंकि औरतों का नाम पट्टे में नहीं होता, उसकी मौत को किसान आत्महत्या माना ही नहीं जाता।

माइक्रो-क्रेडिट पर:

माइक्रो-क्रेडिट वाले किसानों को कानून के दायरे में रह कर लूटते हैं। माइक्रोक्रेडिट की गाइडलाइन के तहत वो 26 प्रतिशत तक ब्याज ले सकते हैं। इतने ब्याज़ पर पैसा लेकर किसी की ज़िंदगी नहीं सुधर सकती। माइक्रो-क्रेडिट किसानों की मैक्रो

समस्या नहीं सुलझा सकता।

महिला किसानों की स्थिति:

देश में खेती से जुड़ा 60 फीसदी काम औरतें करती हैं। लेकिन समाज उनका नाम जमीन के पट्टे पर लिखवाना नहीं चाहता। इससे 60 फीसदी किसानों के मुद्दे अपने-आप छूमंतर हो जाते हैं।

औरतें किसान नहीं मानी जातीं तो किसानों को फायदा पहुंचाने वाली किसी भी पहल से वो बाहर होती हैं।

मवेशियों पर:

सरकार ने मवेशी खरीदना-बेचना इतना दूभर कर दिया है कि किसान, पशु व्यापारी और मीट व्यापारी वगैरह सब परेशान हैं। इसमें मराठा, दलित, मुसलमान सबका नुकसान हो रहा है।

मवेशियों के रेट में 3 प्रतिशत से ज़्यादा की गिरावट किसानों पर असर डालने लगती है। सरकार के बनाए कानूनों के चलते मवेशियों के रेट 60 प्रतिशत तक गिरे हैं। इससे मवेशियों की देसी नस्लों के खात्मे का खतरा पैदा हो सकता है।

किसानों की समस्या से निपटने के लिए सुझाव:

सरकार को किसानों की समस्याओं को समझने के लिए कम से कम 10 दिन का विशेष संसद सत्र बुलाना चाहिए। इसमें से कम से कम एक दिन स्वामीनाथन कमेटी के सुझावों पर विचार होना चाहिए। एक दिन किसानों को खुद अपनी समस्याएं रखने के लिए देना चाहिए।

केरल का 'कुटुंबश्री' जैसे मॉडल पूरे देश में लागू करने चाहिए। इसके तहत 50,000 भूमिहीन औरतें लीज़ पर ज़मीन लेकर खेती कर रही हैं। इस मॉडल ने इन औरतों की ज़िंदगी बदल के रख दी है।

देश भर में इस तरह की एक राय पैदा करने की कोशिश की जा रही है कि किसानों की समस्याओं का हल इतना मुश्किल है कि सरकार चाह कर कुछ नहीं कर सकतीं। 1 जून 2017 से महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में किसान सड़क पर उतरा तो किसी को कुछ सूझा ही नहीं। देवेंद्र फडनवीस तय ही करते रह गए कि असल किसान कौन हैं जिनसे वो मीटिंग फिक्स करें। शिवराज सिंह चौहान को एक मीटिंग के बाद मनचाहा होते न दिखा तो वो टेंट खोंच कर उपवास पर बैठ गए।

साईनाथ ने जिस तरह डेढ़ घंटे में सबका कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया, साबित हुआ कि किस तरह सिस्टेमैटिक ढंग से किसान को लूटा जा रहा है, उसकी आवाज़ दबाई जा रही है। साथ ही ये भी मालूम चलता है कि नज़र पैदा की जाए तो किसानों के मुद्दे और उनकी परेशानियां समझी जा सकती हैं और फिर उनकी मदद की जा सकती है। •

साभार: लल्लन टाप द्वारा निखिल जून 12, 2017

लघु कथा

सुखरू कभी आत्महत्या नहीं करेगा

❑ **निशा भोसले**

जिन्दगी की आपा-धापी में मुझे इतना समय ही नहीं मिल पाता कि मैं सुदूर गांव जाकर अपना खेत, घर, बगीचा देख आती। गांव में ही सुखरू अपने परिवार के साथ रहता और खेती का हमारा सारा काम संभालता था। मैं शहर से उसे पैसे भेजती रहती वह खेतों के लिए बीज, खाद और कीड़े मारने की दवाई जैसी जरूरत की चीजें खरीद लाता। जब उसे किसी चीज की जरूरत पड़ती वह मुझे पोस्टकार्ड में लिखता। मैं उसे पैसे भेज देती।

इधर कुछ महीनों से सुखरू की कोई चिट्ठी नहीं मिली। मैं परेशान हुई। मुझे लगा कि एक बार गांव जाकर देख आऊं। मैं ट्रेन से रायपुर पहुंची वहां से बस से राजिम और राजिम से बैलगाड़ी का सफर तय करते हुए मैं अपने गांव चारभाठा पहुंची। अपने पुश्तैनी मकान को जर्जर स्थिति में देखकर मुझे अपना बचपन याद आने लगा। दो बच्चे आपस में खेल रहे थे शायद सुखरू के ही बच्चे होंगे। मैं अन्दर गई तो देखा सुखरू टूटी चारपाई पर पड़ा था। उसके शरीर में जगह-जगह घाव दिख रहे थे। मैंने उससे पूछा-''तुम्हारी तबियत इतनी ज्यादा खराब है और तुमने मुझे चिट्ठी क्यों नहीं लिखी''?

पहले तो वह मुझे वहां अचानक देखकर डर गया, फिर सहमकर बोला- 'मेरे पास तो खाने के लिए भी पैसे नहीं है। मेरा परिवार भूखा मर रहा है, अगर मैं आपको बता देता कि खेतों में काम करने लायक नहीं हूं तो आप मेरी जगह किसी दूसरे को रख लेते और पैसे भी नहीं भेजते''। यह कहकर वह हांफने लगा था, उसकी सांसें फूल रही थी। पास में उसकी पत्नी खड़ी थी उसने पानी का गिलास उसके हाथों में देते हुए मेरी तरफ देखकर बोली- 'मालकिन आप तनिक बैठ जाइये...'। मैं पास पड़ी एक टुटी कुर्सी पर बैठ गई। तभी सुखरू बोलने लगा-'अब मेरा शरीर इतना कमजोर हो गया है कि मैं और कहीं काम करने लायक नहीं रहा। मेरे पास आत्महत्या करने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं बचा...'।

उसकी बातें सुनकर मैं सन्न रह गई। मैंने कहा-''सुखरू तुम मुझसे कभी आत्महत्या करने जैसी बातें मत करना। हमें पता है कि तुम हमारे कितने पुराने और विश्वसनीय आदमी हो। तुम्हारी ईमानदारी की वजह से ही तुम बाबूजी से लेकर आज तक हो। तुम्हें निकालकर किसी और को इस जिम्मेदारी को सौंपने जैसी बात हम सोच भी नहीं सकते'। यह सुनकर सुखरू की आंखें भर आई।

मैं उसके टपकते आंसू को पोंछती हुई बोली-'तुम चिन्ता मत करो, तुम जल्दी स्वस्थ हो जाओगे और खेती का काम करने लगोगे'। यह कहकर मैंने उसके हाथों में सौ-सौ के कुछ नोट थमा दिये और मैं दरवाजे की तरफ बढ़ने लगी। सुखरू के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान उभर आई। बाहर उसके दोनों बच्चे नंग-धड़ंग धूल भरी सड़क पर मुस्कुराते हुए खेल रहे थे। मैं मन ही मन सोचती रही कि सुखरू जैसा किसान मेरे रहते हुए कभी आत्महत्या कर ही नहीं सकता। •

सम्पर्क-09127112933

तय था हत्या होगी
समकालीन कहानी में किसान

❐पल्लव

'हिन्दी के विमर्शवादी लेखन ने साहित्यिक रचनाओं के विषयों को बहुत सीमित कर दिया है। ... भारतीय किसानों में ज्यादातर लोग वही हैं जो इन साहित्यिक विमर्शों के पात्र हैं लेकिन विमर्शों की राजनीति के चलते किसान को किसान के रूप में या मजदूर को मजदूर के रूप में देखने के बजाय स्त्री, दलित, आदिवासी आदि के रूप में देखना जरूरी हो जाता है और यह भुला दिया जाता है कि साम्राज्यवाद किसी देश पर (प्रत्यक्ष या परोक्ष) आक्रमण करते समय वहाँ के लोगों की लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र जैसी पहचानें नहीं पूछता और अपने देश की सरकार अगर किसानों की दशा सुधारने के लिए भूमि सुधार जैसे उपाय करना चाहे, तो ऐसे उपाय इन अलग-अलग पहचानों के आधार पर नहीं किये जा सकते।' रमेश उपाध्याय, कथन - 54

तो क्या यह एक कारण है कि हिन्दी कहानी के अपूर्व उछाल के इस लकदक दौर में किसान नहीं है? प्रेमचंद, रेणु, शेखर जोशी, विद्यासागर नौटियाल, सुरेश कांटक या विजेन्द्र अनिल की कहानियों में आते रहे वे किसान कहानी में नहीं अखबार में एक या दो कॉलम की खबर में कैद हो गए जिसका शीर्षक हमेशा 'आत्महत्या' से मिलता जुलता होता है। भारत खेती किसानी करने वालों का देश है, यहीं 'उत्तम खेती मध्यम बान, नीच नौकरी भीख निदान' जैसी कहावत प्रचलित हो सकती थी और हमारे देखते-देखते किसानी से मुक्ति खोजता किसान जीवन से भी हार मानता जा रहा है। यह पूंजीवादी भूमण्डलीकरण की नीतियों का ही परिणाम है कि हमारे यहाँ किसानी पर सबसे ज्यादा मार पड़ी है और देश के सबसे सम्पन्न इलाकों के किसानों ने सबसे ज्यादा आत्महत्या की। आत्महत्या समस्या का निदान हरगिज नहीं है लेकिन इससे इन किसानों की निरुपायता और प्रतिरोध की बलवती इच्छा का परिचय तो मिलता ही है। शुरुआत बहुत पहले हो चुकी थी,1936 में प्रेमचंद ने विश्वसनीय ढंग से दिखा दिया था कि खेती अब मुनाफे का सौदा नहीं रही। होरी का बेटा गोबर शहर चला जाता है न लौट आने के लिए। इसके बाद आजादी की नयी बयार में हरित क्रांति, श्वेत क्रांति जैसे कुछ पल तो आए लेकिन यह सब बहुत थोड़ी देर का दृश्य था। बीते दस-बीस वर्षों की बात की जाए तो कृषि संरचना में नये दबाव और ग्रामीण जीवन में धन की गैर जरूरी कृत्रिम भूख ने मिलकर तबाही का यह दृश्य निर्मित किया है। उपभोक्तावाद मध्यवर्ग का ही दुश्मन नहीं है बल्कि उसने छोटे किसानों-मजदूरों और बच्चों को भी अपनी चपेट में ले लिया है। इस दौर की हिन्दी कहानी को देखें तो सीधे-सीधे और प्रकारान्तर भी दुर्दशा का दस्तावेज मिलता है जो किसानों के जीवन को बेहद बारीकी से देख रहा है।

जयनन्दन के करीब दस-बारह वर्ष पहले आए अपने संग्रह 'विश्व बाजार का ऊँट' में 'छोटा किसान' शीर्षक से एक कहानी लिखी थी जिसमें दादू महतो के गाँव छोड़ जाने का वृत्तान्त बुना गया था। असल बात यह है कि गोबर के शहर जाने की प्रक्रिया कभी थमी नहीं लेकिन इसे नयी गति इन पिछले सालों में ही मिली जब किसान को यह पक्का विश्वास हो गया कि रात दिन करने पर भी फसल की लागत न निकलना तय है और खेती अब वाकई झूठी मरजाद है। इस दृष्टि से देखें तो शहर आकर रिक्शा चला रहे, होटलों पर काम पर रहे या कैसी भी मजदूरी कर रहे आदमी की कहानी दरअसल उस किसान की ही कहानी मालूम होती है जो अपने खेतों से निकाल दिया गया है। खेतों से चिपक कर गाँव में रह रहा किसान जब भी कहानी में आया तब उसने कोई प्रसन्न करने वाला समाचार नहीं दिया। क्या आश्चर्य कि इन ज्यादातर कहानियों का अंत भी दुखद और त्रास से भरा ही था। जयवंदन के दादू महतो गांव ऐसे छोड़ रहे हैं मानो जीवन से ही विदा ले रहे हों। कहानीकार भी उसके यहाँ खबर लेने पहुँचा तो साथ में बैंक या प्रशासन के वे अफसर थे जो उससे कर्जा वसूलने जा रहे थे। कैलाश बनवासी ने अपने दूसरे कहानी संग्रह 'बाजार में रामधन' (2004) में दो बातें स्पष्ट कर दी थी, पहली पारंपरिक कृषि की विदाई और दूसरी गाँव की उपजाऊ भूमि पर इण्डस्ट्री की नजर। इस संग्रह की शीर्षक कहानी बैलों की बिक्री के बहाने पारंपरिक किसानी का मर्सिया सुनाती है तो 'एक गाँव फुलझर' में लग रहा कारखाना गाँव के जीवन को किसी भी तरह उन्नत करने का संकेत नहीं दे रहा था। हाल में आए उनके नये संग्रह 'पीले कागज की अगली इबारत (2008) की एक कहानी 'झुका हुआ गाँव' में वे बताते हैं - 'गाँव में अजब सी उदासी पसरी थी। गली, घर, छप्पर-छानी सब ओर इसी उदासी का भूरा रंग था। परती जमीन का धूसर रंग।' इन बीते चार सालों में यहाँ के ज्यादातर लोग बैंक के कर्जदार हो चुके हैं और अब बैंक के अफसर आए हैं जो 'ऋण वसूली कैंप' में बैठे हैं। और सब यही कह रहे थे - छूटबो साहब... छूटबो मालिक! हर कोई कर्जे से मुक्त होना चाहता है लेकिन कहाँ से लाए वह धन जो उसे मुक्ति दे ? वरिष्ठ कथाकार पुन्नी सिंह को कहानी का शीर्षक भी 'मुक्ति' ही था जो 'परिकथा' के प्रवेशांक (मार्च-अप्रेल 2006) में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी किसानों की समस्या का दूसरा चित्र है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि खेती कर रहे एक तबके में संपन्नता भी आई। वे बड़े किसान, मझोले किसान या ऐसे किसान थे जिन्हें आय के दूसरे स्रोत भी हासिल थे। इस कहानी में कृषि में एम.एससी. की उपाधि प्राप्त एक युवा किसान रविंदर आत्महत्या कर लेता है और इसका एक ही कारण है भूख। यह भूख धन अकूत के लालच से पैदा हुई है। रातों रात अमीर बन जाने का लालच। कौन बनेगा करोड़पति। कहानी घर-घर की। चमचमाती कारें, झकाझक साड़ियाँ और

आलीशान मकान। रविंदर पढ़ा लिखा है और नये दौर का किसान है। उसे लगता है कि गेहूँ, मक्का या दूसरी पारंपरिक फसलों के दिन लद गए। वह नयी खेती करना चाहता है। सफेद मूसली की खेती। लाख-सवा लाख की लागत लगाकर बीस लाख रुपये कमाने की उसकी जिद इतना धन तो दे ही देती है कि वह सल्फास की गोलियां खरीद सके। यह कहानी बीज, खाद और कीटनाशक के धंधे में उतर आए देशी-विदेशी साहूकारों की असलियत भी खोलती है जो बड़े बड़े सपने दिखा रहे हैं। इन सपनों के चित्र महेश कटारे भी खींच लाते हैं। उनके हालिया संग्रह 'छछिया भर छाछ' (2008) में अधिकांश गांव की कहानियाँ होने पर भी एक कहानी ऐसी नहीं जिसमें किसान के सामने आत्महत्या की मजबूरी हो लेकिन उनकी कहानियाँ वह सत्य उद्घाटित करती ही है जो आगे जाकर रविंदर जैसे योग्य नौजवानों को अकाल मृत्यु की ओर धकेल देते हैं। संग्रह की एक कहानी 'इकाई, दहाई.....' का रामलखन एक संपन्न किसान है। सुखी और समृद्ध। लेकिन उसे दुख है कि खूब पैसा होने पर भी जीवन अच्छा नहीं है। क्यों? क्योंकि टीवी कहता है, अखबार कहते हैं, रोज रोज आ रही नई कारें- मोटर साइकिलें - पेकेज्ड फूड और मॉल्स सब कोई बता देते हैं कि तुम क्या खाक जीते हो? होता यही है कि भैंस-खेत और घर को देखने वाली पत्नी की ओर जब रामलखन का ध्यान गया तो 'वह मन ही मन झुंझला उठा-बाजार एक से बढ़कर कई बालसफा क्रीमों से भरा पड़ा है, इसने एक भी तो कभी न आजमाई। सकल पदारथ है जग माही करमहीन नर पावत नाहीं।' और फिर वह कैलकुलेटर दबाने लगा। रुपए खूब रुपए ढेर सारे। कटारे कहानी में नहीं बताते कि रामलखन को अंत में क्या मिला? मुकम्मल कहानी का एक लक्षण है कि वह समस्या की ओर इस ढंग से इशारा कर दे कि पाठक विचलित हो जाए और पता लगाए कि ऐसा क्यों हो गया? और क्या होगा अंततः ? इसी से बदलाव का सवाल भी जुड़ जाता है। पाठक को बेचैन करने वाली रचनाएँ उसे रास्ते की तलाश का जुनून देने वाली होती हैं चाहे लेखक रास्ते की बात ही न करता हो। इस काम में कटारे तुलसीदास की इस लोक प्रचलित उक्ति का ऐसा उपयोग करते हैं कि बाजारीकरण का कुरूप चेहरा बेपर्द हो जाता है। आखिर जब रामलखन को ढेर-ढेर धन चाहिए तो क्या वह गेहूँ बोएगा?

हरीचरन प्रकाश की कहानी 'चींटियों की आवाज' इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। दो स्तरों पर चल रही यह कहानी हमारे लोकतंत्र में गहरा चुके भ्रष्टाचार और उसमें एक गरीब किसान की ट्रेजडी को बिल्कुल नयी तरह से ला रखती है। कहानी एक सरकारी बाबू शुजात तल्हा के मार्फत गढ़ी गई है जिनके पास फुरकान अहमद उर्फ जिग्गन का प्रार्थना पत्र आया है। शुजात तल्हा जिलाधिकारी कार्यालय की चिट्ठी पत्री संभालते हैं। उनकी सरदर्दी यह कि जिग्गन की चिट्ठी हर दूसरे चौथे दिन आ जाए कि न्याय दिलाओ। हुआ यह था कि चपरासी की भर्ती में अपने लड़के को लगवाने के लिए जिग्गन ने रिश्वत दी, इधर कोर्ट का स्टे आ गया और भर्ती अटक गई। अब न भर्ती हो और न कोई रुपए लौटाए। जिग्गन ने ये रुपये खेत बेचकर जुटाए थे। अब वह क्या करे? हरीचरन प्रकाश ने इस ट्रेजडी की गंभीरता को दिखाने लिए एक चूहे का रूपक गढ़ा। एक चूहा शुजात तल्हा के घर में उधम मचाए और एक जिग्गन के घर में भी। शुजात के बेटे ने एअरगन का सहारा लिया और जिग्गन जूते से उसे मारता है। जिग्गन के चूहे को चींटियां खा जाती हैं। इधर जिग्गन टाइपशुदा नोटिस भेज रहा था जिसमें पैर के अंगूठे की छाप होती थी। 'दरअसल जिग्गन मरना नहीं चाहता था। उसकी मारने की इच्छा हो रही थी। लेकिन वह मरने मारने दोनों से डरता था।' और 'एक दिन जिग्गन की लाश बिना किसी नोटिस के तालाब के किनारे मिली। चींटियाँ उसके आँख, कान और नाक में घुसी हुई थीं।' कहानी यहीं खत्म नहीं होती। अब शुजात तल्हा का प्रमोशन हो चुका है और एक दिन बगीचे में वह चौंक पड़ता है क्यों कि मुर्दाखोर चींटियां आ रही है, और वह उनकी आवाज सुन रहा है। क्या यह जादुई यथार्थवाद है? ये चींटियां कौन हैं जो जिग्गन को खा गईं? जिनसे शुजात भी चौंक रहा है? पाठक के लिए समझना मुश्किल नहीं। हरीचरन प्रकाश का कौशल यह है कि वे विडंबना का अद्‌भुत दृश्य रचते हैं। शुजात की बेटी फातिमा का बी.टेक. में एडमिशन हो गया है एक सिफारिश से और जिग्गन के बेटे की न नौकरी लगी, न पैसा मिला। ठगाए जाते रहने की यह किसान कथा अपने अंकन में जहां मार्मिक है वहीं चींटियों की आवाज हमारे दौर की विकट सचाई।

'फंदा' बसंत त्रिपाठी की कहानी है जो 'परिकथा' के जनवरी फरवरी 2009 अंक में आई है। विदर्भ के किसानों की कहानी। बसंत मूलतः कवि हैं और कुछ अरसे से कहानियां भी लिख रहे हैं। यह कहानी देवाजी सरोदे नामक किसान की आत्महत्या से उपजती है और इस हत्या का कारण तलाश करते हुए बसंत ठेठ वर्धा जिले के समुद्रपुर गांव पहुंचते हैं। कहानी का वाचक अमित किसानों की आत्महत्या पर एक प्रोजेक्ट कर रहा है और जब वह देवाजी तक पहुंचता है तो उसका सामना किसी अहा ग्राम्य जीवन वाले किसान से नहीं होता। देवाजी भिड़ते ही पूछते हैं- 'क्यों साब, गांव के भीतर कोई सुराग नहीं मिल रहा है क्या?' फिर यह जानकर कि वह 'रिसर्च' कर रहा है उनका सवाल सुनिए - 'अच्छा, तो तुम कांट्रेक्टर हो। तुम्हारी पगार मासिक नहीं, सालाना बनती है। क्यों साब... कितने में लिया है यह कांट्रेक्ट?' समस्याओं का एनजीओकरण कर पैसा बनाने की प्रवृत्ति पर देहात का आदमी ही खरे ढंग से बोल सकता है। आगे और देखिए - 'साब, गांव के भीतर जाओ। वहाँ पुलिस तुमको आत्महत्या करने वालों के बारे में कुछ बताएगी। उनकी घरवालियों से पूछो, वे भी रोते-धोते कुछ बताएंगी। बाप तो दोनों में से एक ही का जिन्दा है, वह भी कर्ज की रकम की कुछ मालूमात देगा। मरने वालों के बच्चों और परिवार का जिकर कर देना..... हो गया तुम्हारा कांट्रेक्ट पूरा। फिर दूसरी आत्महत्याओं का इंतजार करना। वैसे आजकल तुम लोगों को बहुत दौड़भाग करनी पड़ रही है न। क्या करें साब, कभी-कभी तो तुम लोगों को दौड़ाने का मौका मिलता है, वरना जिंदगी भर तो हम ही दौड़ते रहते हैं।' आगे अमित के यह पूछने पर कि दलाल तो पहले भी थे फिर आत्महत्याएं क्यों? तो देवाजी का यह उत्तर हमारी व्यवस्था सही विवरण है - 'बात तुम्हारी बरोबर है, साब। दलाल तो पहले भी थे। लेकिन उनके पास की ताकत से ज्यादा ताकत हमारे पास थी, जीने की ताकत। और चीजों पर उनकी पकड़ भी इतनी मजबूत नहीं थी। पहले

हम उनसे कर्ज लेते थे और फसल अपनी उगाते थे। कर्ज हम अब भी उनसे ही लेते हैं, बैंकों में भी मुंह मार लिया करते हैं लेकिन फसल अपनी नहीं उगा पाते। अब तो हमउ न बीजों को बोते हैं जो बाजार में सरकार भेजती है। हमारी फसल और हमारे बीज दोनों की बाजार में अब कोई कीमत नहीं रह गई है। ये कपास देख रहे हो न! सफेदी फलों से झांकने लगी है। पहले इसे देखकर हमारे पुरखे नाचने लगते थे। बैल-बंडी दुरुस्त करने लगते थे। लेकिन अब इन्हें देखकर हमको कोई उत्साह नहीं होता। क्या कीमत रह गई है इनकी बाजार में? इस साल का कपास दीवाली तक सरकार की मंडियों में ठूंस दो तो होली तक पैसा मिलेगा, वह भी पहले से बहुत कम। सरकार के हाकिम कहते हैं, पैदावार बढ़ाओ। पैदावार बढ़ाते हैं तो कीमत कम कर देते हैं। आखिर हारा हुआ काश्तकार रोज-रोज मरने से एक बार मरने का रास्ता चुन लेता है। बोलो क्या गलत करता है? और देवाजी की आत्महत्या का समाचार अमित को पढ़ना पड़ा। देवाजी की आत्महत्या अमित को विचलित करती है क्योंकि देवाजी पढ़ा लिखा किसान था, अपने समय के यथार्थ को पहचानता और उससे जूझता हुआ किसान। यहीं नहीं अमित की महंगी सिगरेट छीन कर पी जाने में भी उसे कोई संकोच नहीं हुआ था। वह जानता था कि किसके पैसे से सिगरेट आ रही है। उसने कहा था – 'साब, मेरा नाम तुम दैनिक के कोने में नहीं, बीच में देखोगे। लिखा होगा कि देवाजी गणपतराव सरोदे ने काश्तकारों के जीवन-वास्तव को बदलकर रख दिया।' जीवन तो बदला किंतु देवाजी की पत्नी का, जो अब कर्ज ओढ़े बैठी विधवा है। बसंत की यह कहानी समस्या का चित्र ही नहीं खींच देती अपितु इसके वास्तविक कारण तलाश करती है। असल दुश्मन की तलाश। बसंत की मानें तो असल दुश्मन और कोई नहीं अमित है यानी किसानों पर रिसर्च करने वाला युवक। या कहें कि खाता पीता वह वर्ग जो अपने समय की सच्चाई को चुभला रहा है और मजे मार रहा है। कहानी के प्रारंभ में अमित से स्टडी रूम का चित्र और बेडरूम में पत्नी की उघड़ी जाँघें दरअसल अपना औचित्य कहानी के अंत में साबित करती हैं। विश्व बैंक के प्रोजेक्ट से अमित खोज कर रहा है कि किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं। क्या यह अपने आप में एक क्रूर सच्चाई नहीं है कि मरने वालों के अध्ययन के लिए हमारी व्यवस्था धन दे रही है लेकिन किसान आत्महत्या न करें इसके उपाय में व्यवस्था की दिलचस्पी कहाँ? किसानों की आत्महत्या पर हिंदी में यह पहली कहानी है जो कारणों की तलाश करती हुई ठेठ विदर्भ तक जाती है और खाली हाथ नहीं लौटती।

कथादेश के फरवरी 2009 अंक में प्रियदर्शन मालवीय की कहानी 'विकास पर्व में जग्गू, फग्गू की भूमिका' में इस समस्या के एक और पक्ष को तलाशा गया है। यह कहानी बताती है कि किसान की जमीन से बड़ा कोई दोस्त नहीं और उसे मुआवजा देकर बेदखल करना दरअसल उसकी हत्या कर देना है। याद करें अरुन्धति राय ने अपने प्रसिद्ध लेख 'बहुजन हिताय' में बांधों के बनने पर मुआवजे का यथार्थ बताकर चौंका दिया था। कहानी में जग्गू जमीन छिनने की एवज में मिली मुआवजे की राशि शेयर बाजार में होम कर देता है और चूहे मारने की दवाई से इस समस्या का निदान खोजता है। यह कथाकार की युक्ति है कि फग्गू उसका भाई है और वह सावधान किसान है जो आसानी से चक्कर में नहीं आता। ट्रेक्टर नहीं चाहिए। और उसे कोई प्रलोभन बांधने में सक्षम नहीं। जग्गू की मौत फग्गू को भी कर्ज में डूबो देती है और लेकिन फग्गू अंत में सूदखोर जगदीश नाटे की हत्या कर देता है। कथाकार का निष्कर्ष हे – 'जिन्हें हमारी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की सही समझ है उन्हें यह अहसास है कि फग्गू ने तो सिर्फ मच्छर मारा है, गिद्धों को मारना तो बाकी ही है और फग्गू की और कस्बे वालों की असली लड़ाई अब शुरू होगी।' क्या सचमुच ऐसा होगा? कहानीकार को नहीं कहानी को सच मानें तो ऐसा होना सचमुच मुश्किल है। जब 'लड़ना' हमारे समाज में एक नकारात्मक मूल्य की तरह स्थापित किया जा रहा हो और व्यवस्था का आतंक लगातार सिर पर मंडरा रहा हो तब मरने से पहले कोई मारने का जोखिम भले उठा ले लेकिन इसे समाधान नहीं कहा जा सकता। हमारे दौर के महत्वपूर्ण कथाकार चंद्रकिशोर जयसवाल ने 'कथाक्रम' के जनवरी मार्च 2007 अंक में 'समाधान' लिखा था। अपनी इस कहानी में उन्होंने किसानों की आत्महत्या पर व्यवस्था का पक्ष लिखा था और यह पक्ष आज भी अधिक मजबूत दिखाई देता है। व्यवस्था ने इस संकट का अंतत: यह समाधान खोज लिया है – 'पिछले चुनाव में हमने फिल्मी स्टारों को प्रचार करने के लिए पैसे दिए थे या नहीं? घण्टे के हिसाब से पैसे चुकाने पड़े थे। उनसे बहुत कम पैसों में साधु-महात्मा हमारा काम कर देंगे। उन्हें मुंहमांगा देंगे हम, श्रीमान! अगर उन्हें लगा कि उचित मजूरी नहीं मिल रही है, तो हम गच्चा खा जायेंगे। कम मजदूरी पर क्या वे बोलेंगे कि नरक में किसानों को देखकर आये हैं? किस्से गढ़ेंगे कि किस युग में कौन किसान आत्महत्या के कारण किस नरक में ठेला गया था? मरियल आवाज में उनके साधारण प्रवचन का कितना असर पड़ेगा किसानों पर?' क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का सबसे अधिक इस्तेमाल उन ताकतों ने किया है जो समाज की प्रगति में अवरोधक हैं। धार्मिक पाखण्ड ऐसे दिनों में भी अपने शबाब पर हैं जब

कर्ज हम अब भी उनसे ही लेते हैं, बैंकों में भी मुंह मार लिया करते हैं लेकिन फसल अपनी नहीं उगा पाते। अब तो हमउ न बीजों को बोते हैं जो बाजार में सरकार भेजती है। हमारी फसल और हमारे बीज दोनों की बाजार में अब कोई कीमत नहीं रह गई है। ये कपास देख रहे हो न! सफेदी फलों से झांकने लगी है। पहले इसे देखकर हमारे पुरखे नाचने लगते थे। बैल-बंडी दुरुस्त करने लगते थे। लेकिन अब इन्हें देखकर हमको कोई उत्साह नहीं होता। क्या कीमत रह गई है इनकी बाजार में? इस साल का कपास दीवाली तक सरकार की मंडियों में ठूंस दो तो होली तक पैसा मिलेगा, वह भी पहले से बहुत कम। सरकार के हाकिम कहते हैं, पैदावार बढ़ाओ। पैदावार बढ़ाते हैं तो कीमत कम कर देते हैं। आखिर हारा हुआ काश्तकार रोज-रोज मरने से एक बार मरने का रास्ता चुन लेता है। बोलो क्या गलत करता है?

किसान आत्महत्या कर रहे हैं, मजदूर छंटनी का विरोध करते हुए गोली खा रहे हैं या नंदीग्रामों में जमीन छीनी जा रही है। यह कहानी नव साम्राज्यवाद की भूमंडली ताकतों और दक्षिणपंथी पोगापंथ के गठजोड़ का उद्घाटन कर यह बताती है कि किसान के पक्ष में कम से कम ये तो नहीं ही होंगे। यह उद्घाटन जायसवाल जैसे अनुभव संपन्न कथाकार के बस की ही बात थी जो समस्या की जटिलता और अंतर्गुम्फन को जानता हो। हवाई बातें कर गांव और किसान की कहानी लिखना बड़ा आसान है लेकिन वह ठीक उसी तरह निष्प्राण है जैसे किसान के पक्ष में व्यवस्था का शोर। जायसवाल इस कहानी में तीखा व्यंग्य बार-बार करते है। जरा देंखे-

– 'शिंगनापुर गांव के किसानों ने निर्णय लिया है कि वे किडनी बेचेंगे। जब जान नहीं बच रही है, तो किडनी को क्यों बचाना? उन्होंने गांव में बैनर लगा दिया है: 'किसान किडनी बिक्री केन्द्र'। मैं तो कहता हूं, हुजूर, कि जहां चाह वहां राह।'

– बिजली और डीजल की मार तो सब पर पड़ रही है। इनसे सिर्फ किसान ही तो परेशान नहीं है। सबको मरना चाहिए था, सिर्फ किसान ही क्यों मर रहे हैं ? किसानों के पास तो खेत हैं, वे बिना बिजली-डीजल के घास उपजाकर भी खा सकते हैं। औरों को तो जिन्दा रहने के लिए घास का आसरा भी नहीं है।

– हम अनुदान में कोई कटौती नहीं कर सकते, बिन्दा बाबू ! किसान मरते हैं, मरें ; इन संस्थाओं को हमें मरने नहीं देना है। ये हमारे हाथ पैर हैं। अगर किसी क्षेत्र में दो-चार किसान मर गये, तो संस्था वाले संस्था को बन्द कर दाल-रोटी के जुगाड़ के लिए कोई और धन्धा पकड़ लेंगे। और फिर, यह क्यों नहीं सोचते कि बाहर का बखेड़ा हमारे घर के अन्दर आ जाएगा। इन संस्थाओं से हमारे कितने ही छोटे-बड़े नेता और कार्यकर्त्ता जुड़े हुए हैं। अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी चलाइएगा ?

खेत छोड़कर मजदूर बन गए किसान को भी मुक्ति नहीं मिल रही। 'पहल 88' में प्रकाशित लोकबाबू की कहानी 'मुजरिम' किसानी का वह शोक पत्र है जिस ने बांचना 'कठोर करेजे' का काम है। यह कहानी फूलझर गांव की है। याद कीजिए कैलाश बनवासी के यहां भी यही गांव आया है – 'एक गांव फूलझर' तब वहां फैक्ट्री बन रही थी। लोक बाबू बताते हैं – 'ललित इसी फूलझर गांव का रहने वाला था। खेती किसानी थी। भाइयों के बंटवारे में खेत छोटे होते गए। व्यापारियों, उद्योगपतियों ने थोड़े अधिक रुपयों का लालच देकर वह जमीन भी कब्जा ली। बड़ा भाई दुर्ग से लगी इस्पात नगरी भिलाई में नौकरी करने चला गया। छोटा किसानी छूटने पर ट्रक ड्राइवर हो गया। मंझला यानी ललित फूलझर से दो किलोमीटर दूर एक डामर फैक्ट्री में काम करने लगा।' यह ललित इधर अस्पताल में भर्ती है। वाचक बताता है कि 'फैक्ट्री से साइकिल पर सवार वह निकल ही रहा था कि फैक्ट्री की ही एक ट्रक ने उसे दे मारा। वह उछला और जमीन पर एक पैर आ गिरा। एक मोटा राड उसके पैर में आ घुसा। हड्डी टूटी अलग फैक्ट्री के मालिक ने माह भर उसका राजनांदगांव के सरकारी अस्पताल में इलाज कराया। टूटी हड्डी तो लगभग जुड़ गयी, मगर राड वाला घाव नासूर बन गया। फैक्ट्री के मालिक ने नया वर्कर रख लिया। इधर ललित अपने बड़े भाई के रिश्तेदार के रूप में इस्पात संयंत्र के बड़े अस्पताल में भर्ती हो गया।' आगे होता यह है कि जैसे तैसे आधा अधूरा इलाज करवा कर ललित काम पर लौटता है। पत्नी की मौत के बाद घर की जिम्मेदारी उसी पर है। नौकरी पर आधी तनख्वाह, टी.बी. की नयी बीमारी और बच्चे। भिलाई के अस्पताल से छूट कर ललित सोचता था कि वह अब सब ठीक कर लेगा लेकिन वह टूटता गया। उसकी हिम्मत जवाब देने लगी। उसे यह लगने लगा कि उसके मरने की नौबत आ गई है और उसके मरने के बाद बच्चों का क्या होगा?

अब कहानी नया मोड़ लेती है जब ललित अग्रिम तनख्वाह लेकर अपने बच्चों को शहर घुमाने ले जाता है। नहा धोकर साफ कपड़े पहने बच्चे और ललित शहर में रिक्शा किराये पर लेकर घूम रहे है। खा-पी रहे हैं। खूब मौज। 'पिता को खाने पीने पर इतना खर्च करते बच्चों ने पहले कभी न देखा था। जूली खुश थी कि अब घर पर जाकर उसे खाना नहीं बनाना पड़ेगा।' लेकिन तब ये बच्चे नहीं जानते थे कि पिता का इरादा क्या है? खैर। अभी तो बच्चों को ट्रेन देखनी थी। मंदिर के दर्शन करने थे और 'प्रसाद' चखना था। पिता उन्हें रेल की पटरियों के नजदीक ले जाते हैं और झोले में रखी बोतल का प्रसाद चखाते हैं। 'पिता ने तीन प्लास्टिक के गिलासों में पेग बनाया। सबमें पानी भी बराबर-बराबर डाला। फिर ललित ने अपना गिलास उठाकर आंखें बंद की। प्रभु का स्मरण किया-हे प्रभु, मेरा मनोरथ पूरा कर। शक्ति दे।' शक्ति वह जो सब संकटों से मुक्ति देने वाली हो। मुक्ति का मार्ग पहले कभी इतना आसान न था। एक ही उपाय अथवा निरुपाय? भगवान का घर यानी स्वर्ग। भगवान मुक्ति देने वाले हैं। उनके यहां किस बात का संकट ? कोई भेदभाव ऊंच-नीच नहीं। नशा बढ़ रहा है। शाम गहरा गई है और 'इसी समय एक मालगाड़ी धड़धड़ाते हुए पटरियों पर दौड़ती हुई दिखाई दी।... ललित मौके की ताक में ही था। ललित ने भगवान का स्मरण किया और अचानक अश्वनी की छाती पर सवार हो गया। इसके पहले कि अश्वनी कुछ बोल पाता, ललित ने अपनी जेब से निकाल कर हाथ में धरे रूमाल से अश्वनी का गला घोंट दिया। थोड़ी देर दबाए रखा कहीं काम अधूरा न रह जाय। अश्वनी थोड़ी देर हाथ पैर मारता छटपटाता रहा, मगर अंगद के पांव की तरह जमे अपने पिता को छाती पर से डिगा न सका। उसकी

शिंगनापुर गांव के किसानों ने निर्णय लिया है कि वे किडनी बेचेंगे। जब जान नहीं बच रही है, तो किडनी को क्यों बचाना? उन्होंने गांव में बैनर लगा दिया है: 'किसान किडनी बिक्री केन्द्र'। मैं तो कहता हूं, हुजूर, कि जहां चाह वहां राह।

सांस उखड़ गयी।' फिर बड़ी बेटी जूली, छोटी सिमी... और 'उसने अनिल की गर्दन पर भी रूमाल कस दिया।..... अब कोई मेरे परिवार का क्या बिगाड़ेगा! मैं ही सब ठीक किये जाता हूँ।' लेकिन अभी सिमी को ट्रेन दिखाने का वादा अधूरा था। 'तब उसने अपनी बैसाखी सम्हाली। सिमी के छोटे से शरीर को किसी तरह कांधे पर उठा, लड़खड़ाता हुआ रेलवे लाईन के पास पहुंच गया। अभी कोई रेलगाड़ी आती दिखायी नहीं दे रही थी। वह सिमी को लेकर रेल पटरी पर सो गया।'

आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौल कर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी। (रामदास)

ज्ञानरंजन ने इस कहानी पर टिप्पणी में लिखा है 'यह किसानी छूटने, जमीन छूटने की कहानी है। कफन के 70 साल बाद पाठक इस कहानी के मार्फत भारतीय किसान जीवन को देखें। इसे हम दलित जीवन की कहानी मानते हैं। सामाजिक जीवन में अर्थशास्त्र के दबंगों ने जीवन को जितना पद दलित किया है, वह लोकबाबू की कहानी में दिखता है।' यहां आकर विमर्शवादी अस्मिताएं बौनी मालूम होती हैं जब हत्यारा छुरा लेकर हमारी छाती पर चढ़ आया है और वह केवल हमारे खेत से हमें बेदखल नहीं' कर रहा अपितु उसकी रक्त पिपासा अदम्य है। कहानी इस हत्यारे की पहचान कर रही है। हाँ, यह स्वीकार करना होगा कि खेती किसानी पर कहानियां मात्रा और भार में कम हैं लेकिन इनकी प्रतीकात्मक उपस्थिति भी अर्थवान है। बीते दिनों काशीनाथ सिंह और शिवमूर्ति के उपन्यास क्रमश: 'रेहन पर रग्घू' और 'छलाँग' अपने-अपने ढंग से गाँव की इन समस्याओं को देख रहे थे। वहीं राजू शर्मा का 'हलफनामे' पहला गंभीर उपन्यास था जो संपूर्णत: इस समस्या पर है। चरणसिंह पथिक का कहानी संग्रह 'बात यह नहीं है', सत्यनारायण का 'सितम्बर में रात' सत्यनारायण पटेल का 'भेम का भेरू मांगता है कुल्हाड़ी ईमान' और गौरीनाथ की कहानियाँ खेती किसानी के नये-नये संकटों का दस्तावेज हैं।

कहना न होगा कि भारत की अर्थ व्यवस्था की रीढ़ आज भी खेती किसानी है और नव साम्राज्यवाद ने ठीक इसी रीढ़ पर घात लगाई है। फूलझर गांव में ललित को भरपेट रोटी न मिली और शहर अपने दरवाजे पहले ही बंद कर चुका है। ललित, रामलखन, जग्गू, देवाजी, जिग्गन, रविंदर सबकी कहानी एक जैसी पीड़ा भरी है। क्या आश्चर्य कि किसान के दुर्भाग्य की यह कठोर कथा पहले ही लिखी जा चुकी है और दुर्भाग्य कि इसे फिर-फिर दुहराना पड़ रहा है। गोदान की पंक्तियों से यह चर्चा समाप्त करना उचित होगा - 'थाना-पुलिस, कचहरी-अदालत सब है हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेकस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। भगवान ना करें, कोई बेईमानी करें। यह बड़ा पाप है, लेकिन अपने हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है।' •

सम्पर्क-011-27498876

पुस्तक परिचय

हरियाणवी लोकजीवन : बदलते आयाम

□अनीता मलिक

सुनीता 'आनन्द' की सद्य प्रकाशित कृति 'हरियाणवी लोक जीवन के बदलते आयाम' में हरियाणवी लोक जीवन एवं संस्कृति से जुड़े 13 निबंध संकलित हैं। पुस्तक के शीर्षक निबंध 'हरियाणवी लोक जीवन के बदलते आयाम' में लेखिका ने हरियाणा के अतीत और वर्तमान का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ''बदलाव के इस दौर में हरियाणवी लोक जीवन भी समय के साथ-साथ बदलता गया है ... इसकी बोली,भाषा, रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, लोक धर्म, लोक विश्वास एवं अंध विश्वास, लोक कलाएं और संस्कार आदि सब कुछ बदल गया है और बदलता जा रहा है।''

'ईब म्हारो गाम वो ना रह्यो' में अपने गाँव के उदाहरण से हरियाणा के बदलते गांवों की तस्वीर प्रस्तुत की है। 'हरियाणा की लुप्त होती हवेली परम्परा' में चिंता व्यक्त की है कि हवेलियों के लुप्त होने से संयुक्त परिवार टूटे हैं और एकल परिवार सामने आए हैं, उससे एक अलग ही किस्म की संस्कृति विकसित हुई है, जो कि हरियाणवी लोक जीवन में बदलाव का आधार तो बनी है किन्तु इसके परिणाम सकारात्मक न होकर नकारात्मक रूप में ही सामने आए है।

'लुप्त होती हरियाणा परम्परा खोड़िया' में स्त्री लोक नाट्य खोड़िया तो 'लुप्त होती हरियाणवी परम्परा सीठणे' में शादी-विवाह के दौरान गाए जाने वाले उपालम्भ गीतों के लुप्त होते जाने पर गहरी चिन्ता व्यक्त की है। 'हरियाणा में लुप्त होने को आई मुंह दिखाई लेख' में भी लेखिका ने इस परम्परा के अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डाला है। 'लुप्त होते हरियाणा के ऊँट' में लेखिका ने ज्ञानवर्धक एवं विचारणी सामग्री प्रस्तुत की है। 'हरियाणवी संस्कृति के संवाहक मेरे कुछ परिचित हस्ताक्षार' में उदयभानु हंस से लेकर वर्तमान पीढ़ी के बिल्कुल नवोदित हस्ताक्षर तक का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके साहित्यिक अवदान उल्लेख उनसे की जा सकने वाली अपेक्षा और सम्भावना को रेखांकित किया है।

'हरियाणा के ऋतु गीत' में लेखिका ने विभिन्न ऋतुओं में गाए जाने वाले हरियाणवी गीतों की सोदाहरण चर्चा की है, तो 'हरियाणा प्रदेश के लोक गीतों में नारी वेदना' में लेखिका ने नारी मन की उस पीड़ा को व्यक्त किया है जो कि वह अब तक लोक गीतों के बहाने प्रस्तुत करती रही है।

हरियाणवी संस्कृति से संबंधित साहित्य में वृद्धि करने वाली यह पुस्तक पठनीय व संग्रहणीय है। लेखिका निश्चित रूप से बधाई की पात्र है।

पुस्तक : हरियाणवी लोक जीवन के बदलते आयाम, लेखिका: सुनीता 'आनन्द', प्रकाशक : शब्द-शब्द संघर्ष, सोनीपत-131001(हरियाणा)

किसानी का मतलब है मौत !

□अमित मनोज

दिल्ली के जंतर-मंतर पर पिछले दिनों एक घटना घटी। वह यह कि वहाँ कुछ किसानों ने अपना मूत्र इसलिए पी लिया था कि महीने भर तरह-तरह के प्रदर्शन के बाद भी उनकी सुनी नहीं जा रही थी। वो तो अगले ही दिन अपना मल भी खाने वाले थे, पर शुक्र है कि उनके राज्य के मुख्यमंत्री के आश्वासन पर वे वापिस अपनी धरती पर चले गए, अन्यथा न जाने कितने संवेदनशील लोगों से कोई कौर मुंह में नहीं लिया जाता।

जाने-माने उपन्यासकार संजीव का उपन्यास किसानों के दुख-दर्द की कथा बड़ी शिद्दत से कहता है। 'फांस' कभी भी चैन से जीने नहीं देती। वह चुभती रहती है और जीवन के सुख को दुख में बदलती रहती है। फांस हर उस किसान के तन-मन में चुभी है जो खेती के सहारे दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करना चाहता है। यह फांस खेती और कर्ज दोनों की है। खेती के कारण कर्ज लेना पड़ता है और कर्ज़ के कारण खेती हो नहीं पाती। जो किसान एक बार कर्ज ले लेता है, वह ताउम्र उसकी गिरफ़्त से निकल नहीं पाता। कर्ज से किसान खाद-बीज की व्यवस्था करता है और उसी खाद-बीज की लागत निकलने में नाकामयाब रहता है।

'फांस' की एक पात्र है-शकुन। छोटी यानी कलावती और बड़ी यानी सरस्वती की मां। मोहन की पत्नी। वह एक बहुत बड़ी बात कहती है-'इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, क़र्ज़ में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है।' शकुन ने यह वाक्य ऐसे ही नहीं कहा। शकुन मेहनती किसान है और अपनी गृहस्थी को संभालने वाली। वह कर्ज का पैसा लेकर बिल्कुल नहीं जीना चाहती यही वजह है कि बैंक से लिया कर्ज वह अपने गले का जेवर बेचकर उतारती है। बावजूद इसके वह अपने पति को बचा नहीं पाती।

संजीव जी के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता ही यही है कि वे लेखन से पहले लिखे जाने वाले विषय पूरा शोध करते हैं। छोटी यानी कलावती बड़ी यानी सरस्वती को कहती है-'कारपोरेट-सोशल रेस्पोंसिबिलिटी इन देसी-विदेशी सेठों की जिम्मेवारी। आपूर्ति उतनी ही होती है जितने में इसका ग्राहक बचा रहे। किसी को भी किसानों की आत्महत्या की फिक्र नहीं, किसी को भी नहीं।'

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने किसानों को बर्बाद करने की ठानी हुई है। कम्पनियों के लिए किसान एक ग्राहक है। महज एक ग्राहक। किसानों के अर्थशास्त्र को कम्पनियों ने ही बिगाड़ा है और बिगाड़ रही हैं। कम्पनियों ने किसान को ऐसे सपने दिखाए कि उसने अपने देसी बीजों को बचाना छोड़कर सब कुछ को कम्पनियों के हवाले कर दिया। किसान को लगता है कि उसके देसी बीज कंपनियों के बीजों के आगे बहुत फीके और बेकार हैं। किसान ने पहले अपने बीज को छोड़ा और कंपनियों के बीजों पर अपनी निर्भरता कायम की। कंपनियों ने महंगे दर से बीज बेचा और कीटनाशकों के नाम पर भी खूब तबाही मचाई। कोई भी किसान इन बीजों को अपने खेतों में बोकर समृद्ध होना तो दूर, अपने जीवन को बचा ही नहीं पाया। बाजार एक ग्राहक से नाता इतना ही रखता है जितना कि उसे मुनाफा मिलता रहे। किसान जिये कि मरे, उससे उसे कोई सरोकार नहीं।

'फांस' में एक के बाद एक आत्महत्याएं होती है। आत्महत्याएं नहीं, हत्याएं। हत्या करने वालों के कुछ हाथ दृश्य में हैं तो कुछ अदृश्य। आत्महत्या करने वाले किसान कहीं भी किसी तरह की खैरात के भरोसे नहीं हैं। इसमें सब मेहनती और विजन वाले किसान हैं। सुनील ऐसा ही किसान है जो किसानों की आत्महत्या के विरुद्ध है। वह ऐसी योजनाएं बनाता है कि किसानों को आत्महत्या जैसा कोई कदम न उठाना पड़े। सुनील कहता था, एक भी आदमी ने अगर मेरे रहते आत्महत्या की तो मेरे जीवन को धिक्कार है। तब भी सुनील आत्महत्या कर लेता है। सुनील की योजना अलग तरह की होती है। वह किसानों को निरीह नहीं देखना चाहता।

मशीनीकरण से किसानों ने अपने खेतों में अधिक से अधिक उपज के लिए खूब श्रम किया, तब भी खेतों से उनका पेट न भर पाया। सुनील भी अपनी योजना और मेहनत से खेतों में कुछ ऐसा करना चाहते हैं कि सबके लिए वे प्रेरणा बनें। फिर भी उन्हें एन्डो-सल्फान पीना पड़ता है। सुनील को जैसे यह कोई प्रायश्चित करना पड़ा हो। सुनील आख़री बार अपने ही सपनों की नींव को देखते हैं और निराश होते हैं। 'विदा मेरी बायको, विदा मेरे होनहार बेटे विजयेन्द्र, विदा मेरी बेटियो, विदा मेरे बैलो, विदा मेरे गाँव के लोगो, पाटिल जी, दोस्तो, शेतकरी परिवारो, मेरे अपने, मेरे सपने।' कथन केवल अकेले सुनील का ही नहीं है। यह हर उस किसान का कथन है जो आत्महत्या को गले लगा रहा है।

आत्महत्याएं इस उपन्यास में जैसे 'उत्सव' की तरह हैं। किसान को छोड़कर इस उत्सव में सब शामिल हैं। सबके सब तमाशाई। सरकार, कंपनियां, गैर-सरकारी संगठन, मीडिया। सब जैसे एक ही थैली के चट्टे-बट्टे। बिट्ठल शंकर राव, शिबू, आशा वानखेड़े, नीलू का पिता सब ऐसे किसान जो अपार संघर्ष के बाद भी अंत में हार जाते हैं। इन किसानों के पास ऐसा कोई विकल्प नहीं है कि वे उसे अपना लें या उसके सहारे अपने जीवन की नैया को आगे खिसका लें। वे खेती को तुरंत छोड़ देना चाहते हैं, पर मजबूर हैं। कोई आसरा न होता है तो वे भक्ति की शरण में जाते हैं और सोचते हैं कि जैसे सबका पार लगता है, उनका भी लग जायेगा। नए बीज तक के लिए उन्हें औरों के मुंह की तरफ देखना पड़ता है। उनके पास कई समस्याएं हैं। खेती को बचाए रखना। बीज के संघर्ष करना। कर्ज की चिंता। मजूरी की तलाश कि खेती से न सही, मजूरी से ही पेट भर जाए। लड़कियां और उनकी शादी की

चिंता। सबमें किसान फंसा हुआ है और इस फंदे से निकलने को तड़प रहा है। उसे कोई राह ही नहीं सूझती। वह अपने परिवार के साथ रहना चाहता है और उसके लिए तमाम कोशिशें भी करता है, तब वह सबसे आसान राह अपनाता है। वह सोचता है- जब जीवन ही नहीं रहेगा तो दुख अपने आप ही खत्म हो जायेंगे।

किसानों के पक्ष में मीडिया कोई काम नहीं करती। किसान उसकी टीआरपी बढ़ाने में कभी कामयाब नहीं रहे। हमारे देश में किसानों की रिकार्ड आत्महत्याएं हुई हैं, बावजूद इसके मीडिया की चुप्पी आज तक टूट नहीं पायी। 'फांस' में भी हमें मीडिया पर एक टिप्पणी ऐसी देखने को मिलती है जो मीडिया की भूमिका की ठीक से रेटिंग करती है। छोटी किसी बात पर बड़ी को कहती है -'पिछले बरस सात हजार किसानों ने आत्महत्या की थी। अखबार, रेडियो, टी.वी.। सबने अफीम खा ली, खबर तक न हुई।' छोटी की यह टिप्पणी सब प्रकार के मीडिया पर है। इलेक्ट्रोनिक और प्रिंट दोनों मीडिया एक जैसे हैं।

किसान के दुख-दर्द से मीडिया का जैसे कोई नाता न हो। 'अफीम खा ली हो' का मतलब यहाँ बहुत बड़ा है। मीडिया को अफीम खिलाई किसने। उन्हीं बड़े सेठों और कम्पनियों ने जिनका अंतिम लक्ष्य ही अनाप-शनाप पैसा कमाना है। उपन्यास में किसानों की लगातर होती हत्याओं की कवरेज में मीडिया को कोई रुचि नहीं है, जबकि मुंबई के फैशन शो को कवर करने के लिए मीडिया के पास खूब समय है। उसे खेतों में मरते किसानों से अधिक रैम्प पर कैटवाक करती सुंदरियां लुभाती हैं।

संजीव जी के किसान, सुंदरियों और मीडिया से जुड़े दृश्य आपस में मिलकर एक अलग तरह का वातावरण प्रस्तुत करते है। सुंदरियों के चेहरों और बदन को निहारता कैमरा कब विदर्भ में पहुँच जाता है। एक तरफ खूब चिकने और चमकदार चेहरे हैं तो दूसरी तरफ खुरदरे और चमकहीन चेहरे हैं। मीडिया का कैमरा खुरदरे चेहरों पर रुकता ही नहीं है। उसे लॅक्मे की सुंदरियों की चाल भाती है। उस चाल की कवरेज के लिए उसे बड़े-बड़े गिफ्ट मिलने हैं। मरते हुए किसान मीडिया को क्या दे सकते हैं।

किसानों के साथ-साथ यह उपन्यास आदिवासियों के कई मुद्दे उठता है। आदिवासी लम्बे समय से इन्हें उठाते आ रहे हैं। विकास के नाम पर आदिवासियों के संसाधनों की घेरेबंदी पोल खोलता है।

'बांस बेचकर हम दो-चार पैसा कमाते हैं, मावा बेचकर भी, तेंदू के पत्ते और दूसरी चीज बेचकर भी और यहाँ दाल-भात में मूसरचंद बना हुआ है वन विभाग। उसे घूस दो तो चोरी चुपके काटो, नहीं तो छूने भी नहीं देगा। भगवान की धरती, भगवान के पेड़ और बीच में ये भंड़ुआ कौन ?' विद्यासागर नौटियाल की एक कहानी इस उपन्यास को पढ़ते हुए बराबर याद आती है जिसमें वनरक्षक एक घासवाली को पकड लेता है और वह घास व पेटीकोट में से एक की डोरी खोलने की बात करता है तो घासवाली के दिल और दिमाग में भूखी भैंस की छवि रहती है और वह अंत में अपने पेटीकोट की डोरी खोलने की मजबूरी को चुनती है।

महुआ, तेंदू पत्ता, बांस, सूखे मेवे आदि चीजें जिन पर मालिकाना हक सिर्फ आदिवासियों का है। ये आदिवासियों के जीवन का आधार है, लेकिन तंत्र उसे छीनने पर उतारू है। शकुन इस पर अपना एतराज भी करती है -'बांस बेचकर हम दो-चार पैसा कमाते हैं, मावा बेचकर भी, तेंदू के पत्ते और दूसरी चीज बेचकर भी और यहाँ दाल-भात में मूसरचंद बना हुआ है वन विभाग। उसे घूस दो तो चोरी चुपके काटो, नहीं तो छूने भी नहीं देगा। भगवान की धरती, भगवान के पेड़ और बीच में ये भंड़ुआ कौन ?' विद्यासागर नौटियाल की एक कहानी इस उपन्यास को पढ़ते हुए बराबर याद आती है जिसमें वनरक्षक एक घासवाली को पकड लेता है और वह घास व पेटीकोट में से एक की डोरी खोलने की बात करता है तो घासवाली के दिल और दिमाग में भूखी भैंस की छवि रहती है और वह अंत में अपने पेटीकोट की डोरी खोलने की मजबूरी को चुनती है।

किसानों से जुड़े कई सवाल हैं जिन्हें इस उपन्यास में शिद्दत से उठाया गया है। पढाई-लिखाई करने के बावजूद भी किसान के बच्चों के भविष्य की कोई गारंटी न होना। अकेले खेतों को बेच-बेचकर किसान अपने परिवार के ब्याह-शादी जैसे काम निपटाए या उन खेतों को बेचकर अपनी औलाद का कैरियर बनाये। यह एक किसान का मजबूरी में कथन है कि 'शेत बेचकर पढ़ाया अब शेत बेचकर घूस दो। नौकरी लगेगी या नहीं कोई गारंटी नहीं। पढ़े-लिखे लड़के शेती करना अपमान समझते हैं। शेत से गए, बेटों से गए, आमदनी से गए, उम्र से गए। और बेटे सूदखोरों की तरह सिर पर सवार।' इसी में वे किसान बहुत समझदार माने जाते हैं जो खेतों को बेचकर अपनी औलाद को नौकरी दिलवा देते हैं। उदाहरण के तौर पर इस उपन्यास में धनौर के एक किसान दिल्लू ने अपने पांच एकड़ खेत बेचकर प्यून की नौकरी पा ली तो उसके दिन बदल गए। जिस किसान को कोई अपनी लड़की देने को तैयार न था, अब उसकी शादी हो रही है।

विकास की चमक ने हम सबको इतना अंधा कर दिया। बैलगाड़ियां और खेती के लिए दूसरे ठेठ साधन इसलिए लुप्त हो गए हैं कि मशीनीकरण ने अपने पैर बड़ी तेजी से फैला लिए हैं। छोटे और भूमिहीन किसानों के पास इतने साधन नहीं हैं कि वे बिना बैंक या साहूकार के यहाँ जाए दूसरी मशीनें खरीद लें। खेती और किसान के प्रति यूँ भी हमारे विकास पुरुषों और महाजनों की राय बेहतर नहीं है।

पूँजी के इस युग को लूट का युग कहा जाए तो कोई गलत नहीं होगा। किसानों को लूटने के कई तरीकों के बारे में यह उपन्यास हमें बताता है। किसान के पास जमीन ही सबसे महंगी वस्तु होती है, जिसके सहारे वह अपने परिवार की नौका को धकेलता रहता है। ज़मीन से ही उसका स्टेटस तय होता है। यदि किसी किसान के पास जमीन नहीं है, तो समझिए कि समाज और भाईचारे में उसकी प्रतिष्ठा इतनी कम हो जाती है कि कई किसान तो इसी अपमान में अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेते हैं।

बीज किसान के लिए सबसे अधिक जरूरत की चीज हैं। हर नयी फसल के बीजों के लिए किसान के पास अपनी एक व्यवस्था होती है। किसान अपनी पैदावार में से ही कुछ गुणवत्ता वाले बीजों को अगली बार की बिजाई के लिए रख

लेता है। लेकिन वैश्वीकरण के दौर में कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियां रोज नए-नए ग्राहक ढूँढने में व्यस्त हुई हैं, उनकी पहली नजर ही किसान के देसी बीजों पर पड़ी है। वे अपना सबसे पहला आक्रमण ही किसान के बीजों पर करती हैं। उसके पीछे उनका उद्देश्य किसानों की आत्मनिर्भरता पर चोट करना है। पहले वे बीज खत्म करेंगे, तभी किसान की निर्भरता उन पर टिकेगी। बीज पर निर्भरता के बाद खाद और कीटनाशकों के लिए किसान को इन्हीं कम्पनियों के सामने हाथ जोड़ने पड़ेंगे।

बैल किसान का सबसे परिश्रमी और विश्वसनीय साथी रहा है। किसान के लिए बैल महज एक पशु नहीं होता। अनेक कहानियों-उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में भी बैल के प्रति मोहन का स्नेह देखा जा सकता है। मोहन बाघमारे तो बल्कि अपने बैल को 'भाई' तक कहता है। एक दिन मोहन को बैल बेचना ही पड़ता है तो यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उसे कितनी मजबूरी में यह कदम उठाना पड़ा होगा। यही नहीं बैलों के सहारे जो सब-कुछ को बदलने की कुव्वत रखता हो, जिसने शेतकरी आंदोलन में अपना प्रतिरोध दर्ज किया हो, वह आत्महत्या का रास्ता चुनना क्यों पसंद करता है।

मोहन एक इकाई है जो मरता है तो जाने कितने किसान मरते हुए दिखायी देते हैं। वह अकेला ही बड़बड़ाता रहता है। पेड़-पंछी आदि से घंटों बात करता रहता है। उसकी यह स्थिति किन कारणों से हुई होगी, यह किसी से छुपा नहीं है। मोहन की तरह अनेक किसान हैं जो दिनों-दिन पागलपन की अवस्था में पहुँच रहे हैं।

किसानों के जीवन और मरण पर इसी उपन्यास में मोहन की पत्नी सिंधुताई के मुख से कही गई यह टिप्पणी गौर करने लायक है-'मरना एक युक्ति है और जीना एक बंधन। आये दिन तो आत्महत्या की खबरें सुनते रहते हैं। जिधर देखो उधर, कोई पेड़ की डाल पर लटका पड़ा है, कोई कुएं में गिरा पड़ा है तो कोई कीटनाशक खाकर मुंह से झाग फेंक रहा है।'

संजीव के इस उपन्यास में किसान खेती और उसके भविष्य पर पूरा विचार करते हैं। उनके इस बतियाने में कहीं कोई बड़ी मजबूरी छुपी है। किसान के सामने एक तरह से किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति बनी हुई है। वह करे तो क्या करे, उसकी समझ में नहीं आता। इस संदर्भ में सदा और नाना की यह बातचीत गौर करने लायक है ''अगले साल तुम शेती छोड़ रहे हो और कुछ भी करोगे। यह बताने के लिए तुम दो-दो बीड़ियां तोड़ चुके, माने पक्का इरादा है।'

-'तुम लोगों को मजाक क्यों लग रहा है ?'

'इसलिए कि एक जज कलम की निब तोड़ने गए, कमजोर थे मेरी तरह। नहीं तोड़ पाये निब। सौ में चालीस शेतकरी ऐसे हैं जो कहते हैं कि इसी दम किसानी छोड़ दें बशर्ते उनके सामने कोई और उपाय हो और बाकी रहा तू तो तू पहली बार यह धमकी नहीं दे रहा।'

यह है किसान का यथार्थ। खेती और जीवन छोड़ने के लिए जाने कितनी बार वह प्रयास कर चुका होता है। सबको उसका प्रयास फालतू लगता है। उसकी मजबूरी से किसी को जैसे कोई सरोकार ही नहीं होता। वह खेती छोड़े या जीवन, उससे किसी को क्या। लोन-वोन देने के लिए 'ऋण मेले' लगते हैं। लेकिन किसान की समस्याएं सुनने के लिए किसी तरह का कोई मेला नहीं लगता।

सूखे की समस्या सुलझाने की बजाय सरकार किसानों को अधिक दूध वाली गायों का आबंटन करती है। गायों के लिए घास की समस्या है और गायें किसानों की मदद की बजाय उनके लिए दूसरी तरह के संकट खड़ा करती हैं। इतने ज्यादा दूध की खपत के लिए कोई ग्राहक भी चाहिए। किसानों की मूल समस्या पर ध्यान देने की बजाय उसे उपाय के नाम पर दूसरी समस्याओं में उलझाया जाता है।

किसान के भविष्य को जांचते-परखते हुए नयी पीढ़ी बिल्कुल नहीं चाहती कि वह खेती के जंजाल में खुद को फंसाए। उसकी नजर अपनी आमदनी के लिए स्थायी ठिकाने को तलाशने में है। वे बैल और जमीन से अपने पिता और दादाओं की तरह मोह नहीं रखते। वे महज उसे वस्तु समझते हैं और अपने लाभ के लिए उसका सौदा करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। मोहन बाघमारे और दूसरे किसानों के बच्चे इसीलिए खेतों का सौदा करके उन्हें अकेला छोड़कर भाग जाते हैं।

मोहन दादा का एक बहुत मार्मिक प्रसंग इस उपन्यास में देखने को मिलता है। यहां 1936 में प्रकाशित प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का होरी बराबर याद आता है। होरी का जीवन भी गाय जैसी साधारण सी चीज से संचालित होता है। यहां मोहन का भी। होरी भी जीवन भर गाय को पाने के लिए संघर्ष करता है। यहां मोहन को भी गाय के लिए बहुत बड़ा प्रायश्चित करना पड़ता है। किसानों की धर्मभीरुता इस कद्र अधिक होती है कि उन्हें कोई भी अपने ढंग से मूर्ख बनाने में सफल हो जाता है। स्वामी निरंजन देव गिरी के बताए प्रायश्चित के अनुसार 'मोहन दादा भाई (बैल) की खाली नाद के पास खड़े हुए हैं। उनके गले जोगियों-सा एक थैला लटकाकर भाई के गले का फंदा डालकर, सिंधुताई भिक्षा का पात्र देकर भीगी नेत्रों से विदा कर रही है। पूरा गाँव मर्माहत हो उठा है।' मोहन दादा का प्रायश्चित न टूटने पाए, को ध्यान में रखते हुए जब 'देखो, कोई लाख पुकारे, आदमी की बोली भूलकर भी न बोलना, सिर्फ बैल की बोली—'बां...बां' करके इशारे से बात समझाना।' सलाहात्मक टिप्पणी दी जाती है तो अंदाजा लगाया जा सकता है कि मोहन दादा का बाकी का जीवन कितना जोखिम भरा होगा। किसानों को हमने इसी स्थिति में ला छोड़ा है कि वे बां-बां करें। इस बां-बां से किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा कि किसान आखिर क्या कहना चाहता है वह ? सरकारें, योजनाकार, रिसर्च-स्कॉलर, जन-प्रतिनिधि सब इसी बां-बां को समझने में खुद को व्यस्त दिखा रहे हैं। इस बां-बां का अर्थ जिस दिन समझ में आ गया, उस दिन सब सेमिनारों, रिपोर्टों, नीतियों, योजनाओं की पोल खुल जायेगी। उस दिन महसूस होगा कि भूख सिर्फ अन्न से ही मिट सकती है जिसे हमारे देश का किसान अपने खेतों में

'मरना एक युक्ति है और जीना एक बंधन। आये दिन तो आत्महत्या की खबरें सुनते रहते हैं। जिधर देखो उधर, कोई पेड़ की डाल पर लटका पड़ा है, कोई कुएं में गिरा पड़ा है तो कोई कीटनाशक खाकर मुंह से झाग फेंक रहा है।'

खून-पसीने के साथ उगाता है।

यदि सही में किसानों की फिक्र करते तो वे हर्गिज़ यह न कहते—'हम बिकाऊ हैं। हमारा सब कुछ बिकाऊ है। हमें खरीद लो। मार डालो या काट डालो। सिर्फ पेट भर भोजन और इनसान की जिंदगी दे दो हमें।' और ना साईंपुर गाँव के लोग सरकार से लिखित अनुमति मांगते कि वे आत्महत्या करना चाहते हैं, सरकार उन्हें इसकी इजाजत दे।

किसानों के हित में सोचने की बजाय सरकारी लोग उन पर रिपोर्टों के नाम पर जितना समय और धन खर्च करते हैं, यदि वह गंभीरता से किया जाए तो किसानों का सही में भला हो सकता है। किसानों पर केंद्रित सेमिनार में युवा पत्रकार पराग देशपांडे द्वारा प्रस्तुत जब यह रिपोर्ट 'मैं भंडारा जिले की हकीकत बता रहा हूँ- जिस सरकार से आपने आत्महत्या करने का परमिशन मांगा है, उसी के अधिकारी हवाई जहाज से ऊपर ही मुआइना कर नाप गए - कितना पानी। 300 रुपये अनुदान मिले हैं मकान बनाने को। खुद के टॉयलेट तक के लिए लाखों और शेतकरी को पूरे मकान के लिए 300 ! चूहे की बिल भी ना बने। वाह रे तुम्हारा शेतकरी प्रेम ! कितनी मेहरबान है सरकार! भर दिया दामन वादों से! वादे! वादे! वादे!'

उपन्यास में बनगांव, मेंडालेखा, गड़चिरोली आदि जगहें केवल महाराष्ट्र या उपन्यास की ही नहीं हैं। ये प्रतीक के तौर पर इस्तेमाल हुई हैं। इस सूची में जाने कितनी जगहें शामिल हैं। यहां के किसान के सामने कोई रास्ता ऐसा नहीं है जिस पर वह चल सके और कहे कि देखो वह अपने पैरों पर चल सकता है और उसे सहारा देने के लिए देखिये कितने सारे लोग रास्ते में खड़े हैं। वह अकेला है और त्रस्त है। वह अकेला है और निराश है। वह अकेला है और मजबूर है। बावजूद इसके संजीव किसानों को आत्मनिर्भर बनाने और देसी-विदेशी कम्पनियों से उन्हें बचाने के लिए आशान्वित हैं। वे चाहते हैं कि बीज जैसी मूलभूत चीजों के लिए हमारे किसानों को किसी कम्पनी का मुंह न ताकना पड़े। इसीलिये उनके पात्र छोटी व विजयेन्द्र मिलकर एक मिनी कृषि अनुसंधान केन्द्र खोलते हैं और खेती में अपनी किस्मत आजमाने वाले किसानों के लिए आशा का दीपक बनने की कोशिश में हैं। ●

सम्पर्क - 9416907290

लघु कथा

बाबाजी का भोग

❒प्रेमचंद

रामधन अहीर के द्वार पर एक साधु आकर बोला - बच्चा तेरा कल्याण हो, कुछ साधु पर श्रद्धा कर।

रामधन ने जाकर स्त्री से कहा- साधु द्वार पर आये हैं, उन्हें कुछ दे दे।

स्त्री- बरतन मांज रही थी, और इस घोर चिंता में मग्न थी कि आज भोजन क्या बनेगा, घर में अनाज का एक दाना भी न था। चैत का महीना था। किंतु यहां दोपहर ही को अंधकार छा गया था। उपज सारी-की-सारी खलिहान से उठ गयी। आधी महाजन ने ले ली, आधी जमींदार के प्यादों ने वसूल की। भूसा बेचा तो बैल के व्यापारी से गला छूटा, बस थोड़ी-सी गांठ अपने हिस्से में आयी। उसी को पीट-पीटकर एक मन-भर दाना निकाला था। किसी तरह चैत का महीना पार हुआ। अब आगे क्या होगा। क्या बैल खायेंगे, क्या घर के प्राणी खायेंगे, यह ईश्वर ही जाने ! पर द्वार पर साधु आ गया है, उसे निराश कैसे लौटायें, अपने दिल में क्या कहेगा।

स्त्री ने कहा- क्या दे दूं, कुछ तो रहा नहीं?

रामधन- जा, देख तो मटके में, कुछ आटा-वाटा मिल जाय तो ले आ।

स्त्री ने कहा- मटके झाड़-पोंछकर तो कल ही चूल्हा जला था। क्या उसमें बरकत होगी ?

रामधन- तो मुझसे तो यह न कहा जायगा कि बाबा घर में कुछ नहीं है। किसी के घर से मांग ला।

स्त्री- जिससे लिया उसे देने की नौबत नहीं आयी, अब और किस मुँह से माँगूँ ?

रामधन- देवताओं के लिए कुछ अँगौवा निकाला है न, वही ला, दे आऊँ !

स्त्री- देवताओं की पूजा कहां से होगी ?

रामधन- देवता मांगने तो नहीं आते ? समाई होगी करना, न समाई हो न करना।

स्त्री- अरे तो कुछ अँगौवा भी पंसेरी दो पंसेरी है ? बहुत होगा तो आध सेर। इसके बाद क्या फिर कोई साधु न आयेगा। उसे तो जवाब देना ही पड़ेगा।

रामधन- यह बला तो टलेगी, फिर देखी जायगी।

स्त्री झुंझलाकर उठी और एक छोटी-सी हांडी उठा लायी, जिसमें मुश्किल से आध सेर आटा था। वह गेहूँ का आटा बड़े यत्न से देवताओं के लिए रखा हुआ था। रामधन कुछ देर खड़ा सोचता रहा, तब आटा एक कटोरे में रखकर बाहर आया और साधु की झोली में डाल दिया।

महात्मा ने आटा लेकर कहा- बच्चा, अब तो साधु आज यहीं रमेंगे। कुछ थोड़ी-सी दाल दे, तो साधु का भोग लग जाय।

रामधन ने फिर आकर स्त्री से कहा। संयोग से दाल घर में थी। रामधन ने दाल, नमक, उपले जुटा दिये। फिर कुएँ से पानी खींच लाया। साधु ने बड़ी विधि से बाटियां बनायीं, दाल पकायी और आलू झोली में से निकालकर भुरता बनाया। जब सब सामग्री तैयार हो गयी, तो रामधन से बोले- बच्चा, भगवान के भोग के लिए कौड़ी-भर घी चाहिए। रसोई पवित्र न होगी, तो भोग कैसे लगेगा?

रामधन- बाबाजी, घी तो घर में न होगा।

साधु- बच्चा, भगवान् का दिया तेरे पास बहुत है। ऐसी बातें न कह।

रामधन- महाराज, मेरे गाय-भैंस कुछ नहीं है, घी कहां से होगा ?

साधु- बच्चा, भगवान् के भंडार में सबकुछ है, जाकर मालकिन से कहो तो ?

रामधन ने जाकर स्त्री से कहा- घी मांगते हैं, मांगने को भीख, पर घी बिना कौर नहीं धँसता !

स्त्री- तो इसी दाल में से थोड़ी लेकर बनिये के यहां से ला दो। जब सब किया है तो इतने के लिए उन्हें क्यों नाराज करते हो ?

घी आ गया। साधुजी ने ठाकुरजी की पिंडी निकाली, घंटी बजायी और भोग लगाने बैठे। खूब तन कर खाया, फिर पेट पर हाथ फेरते हुए द्वार पर लेट गये। थाली, बटली और कलछुली रामधन घर में मांजने के लिए उठा ले गया।

उस रात रामधन के घर चूल्हा नहीं जला। खाली दाल पकाकर ही पी ली।

रामधन लेटा, तो सोच रहा था- मुझसे तो यही अच्छे ! ●

कृषि क्षेत्र और किसानों का दोहन करने वाला कारोबारी मीडिया

❑अनिल चमड़िया

राजस्थान के किसान गजेन्द्र सिंह ने दिल्ली के जंतर मंतर पर फांसी लगा ली। टेलीविजन और अखबारों में बड़े बड़े अक्षरों में खबर छप गई। उत्तर प्रदेश के भट्टा परसौल में कांग्रेस के नेता राहुल गाँधी पहुंच गए तो किसानों का आंदोलन टीवी की सुर्खियों में आ गया। जंतर मंतर पर तमिलनाडु के किसानों को मीडिया में जगह पाने के दिल्ली के पास के सूखे खेतों में नंगे होकर अपने आसपास मृत इंसानों की खोपड़ियां रखकर मीडिया के फोटोग्राफरों से तस्वीरें उतरवानी पड़ी। इन उदाहरणों के जरिये हम ये समझें कि क्या इससे किसान, किसानी और किसान जीवन को मीडिया में जगह मिली? या फिर आत्महत्या की घटना को जगह मिली और राहुल गांधी को जगह मिली? तमिलनाडु के किसानों के नंगे बदन और मृत इंसानों की खोपडियों की तस्वीरों से जो सनसनी पैदा होती है उसको जगह मिली? बेहद बारीकी से समझने की जरुरत है कि किन कारणों से मीडिया में किसानों और किसानी को कभी कभार जगह मिलती है। 1988 में दिल्ली के वोट क्लब पर महेन्द्र सिंह टिकैत ने एक ऐतिहासिक धरने का आयोजन किया था। तब दिल्ली के मीडिया ने किसानों के उस विरोध की कड़ी आलोचना की थी और उसे अखबार के पाठकों (तब निजी घराने के टीवी चैनल नहीं थे) के किसान विरोधी मानसिकता की अभिव्यक्ति के रुप में देखा गया था। देश के इतिहास में मीडिया कभी भी किसानों के आंदोलनों के साथ खड़ा नहीं हुआ है और ना ही उससे यह अपेक्षा की जानी चाहिए।

देश का किसान जिस दिन ये समझने में कामयाब हो जाएगा कि इस देश में एक भी कारोबारी मीडिया उनका नहीं है बल्कि उनका विरोधी है, किसानों में एकता आ जाएगी और वे एक दूसरे से अपने दुख सुख को साझा करने के रास्ते निकाल लेंगे। याद करें तो 1980 के दशक में भारत भर में जगह-जगह किसान आंदोलन हो रहे थे। पश्चिमी महाराष्ट्र में शरद जोशी तो नंजुन्दास्वामी कर्नाटक में किसान नेता के तौर पर खड़े हुए। लेकिन आज कोई भी किसान नेता दिखता है? पूंजीपतियों और व्यापारियों या फिर कर्मचारियों और मजदूरों के अखिल भारतीय संगठन हैं, लेकिन किसान अखिल भारतीय स्तर पर प्रभावी रूप से संगठित नहीं हैं। इसीलिए भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कारोबारी मीडिया को समझना राजनीति की गहरी से गहरी बात को समझ लेना है।

मीडिया सूचनाएं नहीं देता है, बल्कि वह अपने नजरिये के अनुकूल सूचनाएं देता है। इसीलिए यह समझना भी जरुरी है कि वह किस तरह की सामग्री को नहीं देता है। किसान केवल ट्रैक्टर, बीज, खाद, पेस्टीसाइड, लागत मूल्य, खरीद मूल्य नहीं है। किसान का मतलब कृषि क्षेत्र है। कृषि क्षेत्र खेत में पैदावार तक सीमित नहीं है। वह गांव में रहता है। इसके साथ जानवर जुड़े है। बाग बगीचे है। किसानों के दिनचर्चा में आने वाले दूसरे तमाम तरह के काम है। पैदावर पर निर्भर दूसरे तरह के उत्पाद में लगे लोग हैं। खेत मजदूर हैं। महिलाओं का जीवन है। जब ये कहा जाता है कि कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार रहा है तो इसके मायने हैं कि देश की 75 प्रतिशत से ज्यादा की आबादी कृषि क्षेत्र के दायरे में आती है।

मीडिया किसी भी क्षेत्र में विकास की दिशा के लिए माहौल बनाता है। माहौल तरह तरह से बनते हैं। जैसे जब हरित क्रांति के लिए एक माहौल बनाना था तो सोना उगलने धरती वाले गाने फिल्मों में बजने लगे। लेकिन वह माहौल किसके लिए बनाया जा रहा है, यह नजरिया महत्व रखता है। कृषि क्षेत्र क्या उस क्षेत्र में लगे लोगों के विकास के लिए है। विकास का मतलब उनके रहन सहन के स्तर और सामुदायिक चेतना का विस्तार से है। यदि किसान व कृषि क्षेत्र उनके लिए है जिन्होंने अपने विकास की एक परिभाषा तय कर रखी है और उस विकास के लिए कृषि क्षेत्र को दुहने की नीयत से माहौल बनाया जाता है तो देश में किसान और कृषि क्षेत्र के मौजूदा हालात में पहुंचना स्वभाविक है।

किसान गरीब होता चला आ रहा है

क्या किसी ने किसी कारोबारी मीडिया में ये पढ़ा या टेलीविजन पर किसानों के बारे में सुना कि वे आजादी के बाद से गरीब क्यों होते चले गए? 1970 के रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के बुलेटिन के अनुसार 1967-68 में दो करोड़ साठ लाख लोग 34 नया पैसा प्रतिदिन पर, चार करोड़ तेरह लाख लोग 81 नये पैसे और आठ करोड़ छब्बीस लाख लोग एक रुपये तीन पैसे पर जिंदा रहते थे। यानी 20 करोड 64 लाख लोग प्रतिदिन एक रुपया या उससे कम पर अपना जीवन गुजारते थे। दूसरी तरफ 1967 से 1969 के दौरान सरकार ने 99 कंपनियों के 146 व्यक्तियों को ज्यादा पारिश्रमिक देने की स्वीकृति दी। 144 प्रमुख लोगों में में 63 विदेशी थे। इनमें 27 हजार रुपये (कार, घर, मेडिकल की सुविधाओं के अलावा) महीने तक पारिश्रमिक था। यहां इस नमूने से अमीरी गरीबी के बीच की खाई को समझने का एक नजरिया मिलता है। नौकरीपेशा वालों और आम आदमी के बीच एक हजार गुना से ज्यादा का फर्क दिखता है। उद्योग धंधे करने वाले और आम आदमी के बीच यह फर्क तो कई हजार गुना हैं।

1974 में सरकार ने 105 रूपये प्रति क्विंटल गेहूं की खरीददारी करने की घोषणा की। उस समय बाजार में प्रति क्विंटल गेहूं 125 रूपये था। जब सरकार ने लेवी लेने की कोशिश की तो बाजार में रातो रात गेहूं की कीमत 170 से 180 रूपये प्रति क्विंटल हो गई। चीजों की कीमत नहीं होती है। किस ताकतवर के नियंत्रण में कोई चीज है उसके हिसाब से कीमत तय होती है। 1967 में एक सौ किलों गेहूं में 121 लीटर

डीजल मिलता था। अब उतने गेहूं में दस गुना कम लीटर डीजल मिलता है। डीजल 67 पैसे लीटर से लगभग सौ गुना बढ़ गया है। एक क्विंटल गेहूं में 1800 ईंटे और साढ़े नौ थैले से ज्यादा सिमेंट मिल जाता था तो 2.6 क्विंटल गेहूं में एक तौला सोना और 195 क्विंटल में 35 हार्स पावर का मैसी ट्रैक्टर मिल जाता था। लेकिन अब एक ट्रैक्टर के लिए तीन गुना चार गुना क्विंटल गेहूं तो एक तौला सोना के लिए दस गुना ज्यादा गेहूं बेचना पड़ सकता है। दाल की कीमत तीस चालीस घंटे में जितनी बढ़ जाती है उसके अनुपात में खेत मजदूर की मेहनत की कीमत तीस वर्षों में भी नहीं बढ़ी है। एक पुरूष खेत मजदूर 1946 में पूर्वी उत्तर प्रदेश में 25 पैसे पाता था। 1974 तक बढ़कर ढाई रूपये हुआ। भारत सरकार की बात माने तो अब उत्तर प्रदेश में अठावन रूपये न्यूतम मजदूरी है। सबको पता है कि न्यूनतम मजदूरी कानून कितना चलता है। लेकिन इतनी मजदूरी मान भी लें तो 1946 में उत्तर प्रदेश में रूपये का चौथाई मिलता था। आज उस जमाने के जार्ज पंचम के सिक्के की कीमत बाजार में 265 भारतीय रूपये है। उस रूपये का कितना हिस्सा आज मिलता है? भारत सरकार ने 1950-51 और 1956-57 में कृषि श्रमिक जांच समितियों द्वारा अध्ययन कराया तो खेत मजदूरों की आय में बारह प्रतिशत की कमी आई थी। जबकि 1951 से 1974 तक कृषि उपभोग मूल्यों और खाद्यानों के दामों में पांच सौ पचास गुना की बढ़ोतरी आंकी गई थी। 1955-56 में खेत मजदूर जो औसत 88 रूपये का कर्जदार था वह 1974 में बढ़कर 900 रूपये हो गया। हरियाणा में एक हेक्टेयर में गेहूं की फसल से 1970 में 611 रुपये की आमदनी होती थी। वह 1974 -79 में घटकर 565 रुपये हो गई। मध्यप्रदेश में 1970-71 में जो 299 रुपये की आमदनी होती थी वह घटकर 1977-78 में 255 रुपये हो गई।

मीडिया का ढांचा

मीडिया एक धंधा है। इस धंधे में यही सिखाया जाता है कि अपने लाभ के लिए किस तरह की सामग्री कब और कैसे पेश करनी है। मीडिया कृषि क्षेत्र के लिए नहीं है। वह शहरी विकास के लिए है। उसमें जो पूंजी लगी है वह शहरी विकास के लिए ही है। वे कृषि क्षेत्र में शहरी विकास के लिए माहौल,वातावरण,संस्कृति की जगह तैयार करते है। यानी मीडिया कृषि क्षेत्र के तमाम संसाधनों व लोगों को अपने फलने फूलने के लिए ग्राहक बनाता है। इसकी एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमीर देशों ने अपने विकास को जारी रखने के लिए दुनिया भर के गरीब और पिछड़े देशों के लिए विकास की एक परिभाषा तय की और उसमें मीडिया को सबसे बड़ा हथियार बनाया गया। हमारे देश में कृषि क्षेत्र उस समय दूसरे क्षेत्रों के मुकाबले उन्नत थी। लिहाजा कृषि क्षेत्र और किसानी अमीरों की आंखों में गड़ गई । कारोबारी मीडिया का मतलब अमीरों के विकास के पक्ष में माहौल बनाने की एक धंधा है। जैसे एक ट्रैक्टर के लिए कई तरह के पूर्जे जगह जगह तैयार किए जा सकते हैं और उन पूर्जों को मिलाकर ट्रैक्टर तैयार कर लिया जाता है। उसी तरह से अमीरी के लिए भी तरह तरह के पूर्जे होते हैं। भारत जैसे देश में कृषि क्षेत्र के अर्थ व्यवस्था का मुख्य आधार होने के बावजूद किसान समेत उस क्षेत्र के लोगों की हालत इतनी बदत्तर कैसे हुई है और उस हालात में कारोबारी मीडिया दूसरे अमीरों और उनके धंधों के साथ खुद कितना अमीर हुआ है, यह अध्ययन किया जा सकता है। उसका पूरा कारोबार दूसरे अमीरों के साथ अपनी अमीरी बढ़ाने के इर्द-गिर्द चलता है। भारत में उसका कोई अलग चरित्र नहीं हैं।

पत्रकारिता की पढ़ाई का बदलता ढांचा

जब कृषि क्षेत्र में सबसे ज्यादा कमाई होती थी तब देश में पत्रकारिता की पढ़ाई कृषि क्षेत्र के लिए खुले संस्थानों में ही होती थी। समाज के जागरूक युवक युवतियां पत्रकारिता के क्षेत्र में जाते थे ताकि देश के किसानों, मजदूरों, ग्रामीण क्षेत्रों के हालात को लेकर लोगों को जगाकर उन्हें जोड़ा जा सके। किसानों और कृषि क्षेत्र में लगे लोगों की तकलीफें क्या है, यह उन्हें बताने की जरुरत नहीं होती है। वे अपने हालात से वाकिफ होते हैं। पत्रकारिता का काम ये होता है कि वह ऐसे सभी लोगों को एकजुट होने के लिए माहौल तैयार करें। जैसे अंग्रेजों से आजादी के लिए लोगों को जोड़ा गया। वर्षों से गुलामी झेल रहे सभी लोगों को इसके लिए तैयार किया गया कि वे एकजुट होकर अंग्रेजों को भगा सकते है और गुलामी से मुक्त होकर खुशहाल जीवन जी सकते हैं। लेकिन कृषि से उद्योग और उसके बाद सेवा क्षेत्र में बढ़ोतरी के साथ ही पत्रकारिता की पढ़ाई का ढांचा भी बदल गया।

शिक्षण संस्थान कारखाने की तरह होते हैं जहां अपने अनुकूल लोग तैयार किए जाते हैं। कृषि संस्थानों में पत्रकारिता की पढ़ाई ठप्प हो गई है। पत्रकारिता की पढ़ाई फाइव स्टार होटलों की तरह के संस्थानों में होती है। लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं और एक पत्रकार को कई कई लाख रुपये की तनख्वाह मिलती है। गरीबी के हालात में रहने वाले पत्रकार मीडिया के मालिकों की तरह ही मीडिया कंपनियों के हिस्सेदार हो गए है या फिर अपनी कंपनियां शुरु कर दी है। कई पत्रकार सैकड़ों करोड़ रुपये की संपति के मालिक हो चुके हैं। समाज में सक्रिय रहने वाले युवक युवतियों के लिए कारोबारी मीडिया में नौकरी नहीं रह गई है। बड़े से बड़े संस्थानों से पत्रकारिता सीखना अनिवार्य सा कर दिया गया है।

1967 में एक सौ किलों गेहूं में 121 लीटर डीजल मिलता था। अब उतने गेहूं में दस गुना कम लीटर डीजल मिलता है। डीजल 67 पैसे लीटर से लगभग सौ गुना बढ़ गया है। एक क्विंटल गेहूं में 1800 ईंटे और साढ़े नौ थैले से ज्यादा सिमेंट मिल जाता था तो 2.6 क्विंटल गेहूं में एक तौला सोना और 195 क्विंटल में 35 हार्स पावर का मैसी ट्रैक्टर मिल जाता था। लेकिन अब एक ट्रैक्टर के लिए तीन गुना चार गुना क्विंटल गेहूं तो एक तौला सोना के लिए दस गुना ज्यादा गेहूं बेचना पड़ सकता है। दाल की कीमत तीस चालीस घंटे में जितनी बढ़ जाती है उसके अनुपात में खेत मजदूर की मेहनत की कीमत तीस वर्षों में भी नहीं बढ़ी है। एक पुरूष खेत मजदूर 1946 में पूर्वी उत्तर प्रदेश में 25 पैसे पाता था। 1974 तक बढ़कर ढाई रूपये हुआ।

मोंसेंटो का उदाहरण

मोंसेन्टो अमेरिकी कंपनी है। दुनिया भर में खेती के लिए बीज का धंधा करती है। पहले हरित क्रांति का शोर मचाकर कारखाने में बनने वाले ट्रैक्टर, खाद, पेस्टीसाइड आदि से पैदावार बढ़ाने का धुंआधार प्रचार किया गया। प्रचार गाना बनाकर, फिल्में तैयार करके, टेलीविजन में प्रोग्राम बनाने के अलावा कई तरह से किया जाता है। अब बीजों की नई नस्ल का प्रचार किया जा रहा है। मोंसेंटों दुनिया में सबसे अमीर कंपनी में एक हैं। वह कई वर्षों से वह किसानों के बीच यह प्रचार कर रही है कि बीटी कॉटन का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करें। राजनीति बिकाऊ हो गई है इसीलिए उसे यहां सरकार की तरफ से दिक्कत नहीं हो रही है। लेकिन देश में कुछ लोग हैं जो अपने जमीर को बचाए रखना चाहते हैं। उन्हें लगता है कि जम्हूरियत तभी बचेगी, जब देश में लोगों के पास जमीन रहेगी। पानी पर उसका हक होगा और बीज को अगली फसल के लिए बचाकर रखने की परंपरा जीवित रहेगी। किसान अपने बीज को उन्नत करने की प्रक्रिया में शामिल हो। बीटी कॉटन के बारे में पुरानी पीढ़ी के एक पत्रकार जसपाल सिंह सिधु ने तीन किश्तों में एक लेख लिखा। उनका अपना खेत भी है। यह लेख पंजाबी के एक अखबार में छपना था। तीनों किश्ते बीटी कॉटन पर थी। लेकिन इसी बीच मोंसेन्टो ने पंजाब के भटिंडा से बीटी कॉटन की बिक्री के प्रचार के एक समारोह का आयोजन किया। पूरे पंजाब से बीज बेचने वाले बुलाए गए। लेकिन जिस दिन समारोह हो रहा था उसके एक दिन पहले लेख की पहली किस्त छप गई। उसका शीर्षक था कि 'बीटी कॉटन के बीज फंसा रहे है किसानों को चक्रव्यूह में।' समारोह के दिन दूसरी किश्त छप गई जिसमें मोंसेन्टो को सीधे-सीधे कटघरे में खड़ा किया गया था। उसका शीर्षक था 'भ्रष्टाचार राहि बीटी कॉटन को आगे बढ़ा रही है अमेरिकन कंपनी'। बस क्या था मोंसेन्टो के स्थानीय अधिकारियों ने उस समाचार पत्र को विज्ञापन देने से मना कर दिया। जबकि राज्य के दूसरे समाचार पत्रों को बड़े महंगे-महंगे विज्ञापन दिए गए थे। जिस अखबार में विज्ञापन लेख छपा लेकिन विज्ञापन नहीं मिला तब अखबार के मालिक ने पूछा। आखिर ऐसा लेख छापने की क्या जरूरत थी? नीचे के संवाददाता को विज्ञापन हासिल करने के लिए कमीशन मिलता है। उसने भी कहा कि उसी दिन इस लेख को छापने की क्या जरूरत थी। तब उस अखबार के लोकल ऑफिस ने मोंसेन्टो को चेतावनी दी कि यदि दूसरे अखबारों की तरह उसे विज्ञापन नहीं दिया गया, तो वे उसकी खबरों का बहिष्कार कर देंगे। उस अखबार के संवाददाता का साथ दूसरे समाचार पत्रों के संवाददाताओं ने भी दिया। मोंसेन्टो को पता था कि इस तरह संवाददाताओं को नाराज कर लेंगे तो उसके प्रचार की हवा निकल जाएगी क्योंकि विज्ञापन से ज्यादा असर अखबारों में छपी खबरों का होता है।

पत्रकारिता पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण इसी तरह से होता है। कंपनियों के साथ इसी तरह लेन देन से मीडिया का कारोबार चलता है। इन दिनों समाचार पत्रों और चैनलों को विज्ञापन इसलिए नहीं मिलते हैं कि विज्ञापन से सीधे विज्ञापनदाता को फायदा होगा। फायदा इस रूप में कि उसकी चीजों के ग्राहक बढ़ेगें। विज्ञापन इसीलिए भी दिए जाते हैं ताकि खास तरह की संस्कृति का मीडिया प्रचार करें। उनकी भाषा और संस्कृति से बाजार बनता है। उनके खिलाफ आवाज उठाने में भी मीडिया हिचकिचाएगा। जैसे – एक समय में लिबर्टी में मजदूरों का कई महीनों से आंदोलन चल रहा था लेकिन इसकी खबर देश के किसी दूसरे हिस्से में किसी को नहीं थी। क्योंकि जूते बनाने वाली उस कंपनी ने मीडिया को चमकदार चांदी के जूते पहना दिए थे। मजदूर इसी तरह मीडिया से गायब नहीं हो गए हैं।

हम इतिहास में जाकर देखें तो कारोबारी मीडिया कभी कृषि क्षेत्र और किसानों के हित में समर्थन के लिए नहीं खड़ा हुआ। जब कभी कृषि क्षेत्र में संगठित होकर जुझारू आंदोलन करने की स्थिति होती है तो मीडिया सबसे ज्यादा उग्रता का परिचय देता है। जैसे शहर के खाते पीते लोगों को किसी मुद्दे पर मीडिया लामबंद करने का अभियान चलाता है उसी तरह से कभी बदहाली में जीने वाले किसानों और कृषिक्षेत्र के लोगों को लामबंद करने के लिए अभियान नहीं चलाता है। यह मीडिया के चरित्र और उसके आर्थिक-सामाजिक हितों को स्पष्ट करता है। •

सम्पर्क-94684-56745

<u>लघुकथा</u>

कीमत

सुरेश बरनवाल

रमलू किसान ने इस बार उगी धान की फसल मंडी में 12 रूपये किलो बेची थी। पैसे की तुरन्त जरूरत के कारण उसने अपनी जरूरत को घटाते हुए कम से कम धान अपने घर में बचाकर रखा और बाकी बेच दिया था। परिवार बड़ा था इसलिए तमाम कोशिशों के बावजूद पूरे साल के लिए बचाकर रखा गया धान जल्दी ही खतम हो गया। उसे बाजार से चावल खरीदना पड़ा। जब चावल खरीद कर रमलू घर आया तो वह बहुत उदास था।

''क्या हुआ?''-उसे उदास देखकर उसकी पत्नी ने पूछा।

''चावल पच्चीस रूपये किलो मिला है।''-वह खाट पर बैठता बोला।

''पर यह तो बहुत अधिक कीमत है। इतने में तो हमारा धान दो किलो आ जाता।''- वह बोली।

रमलू ने कुछ कहा नहीं पर सारा दिन उदास रहा।

रात को पत्नी पूछ बैठी-''अब क्या सोच रहे हो?''

रमलू बोला-''हम पूरे परिवार के लोगों ने इतनी मेहनत करके रात-दिन एक किया और आठ रूपया एक किलो पर खर्च करके चावल उगाया। हमें इतनी मेहनत करके चार रूपये एक किलो धान पर मिला। पर यह कौन हैं जिसने बिना मेहनत किए, हमारा चावल खरीदते ही एक किलो पर 13 रूपये कमा लिए। उसने तो धान उगाया भी नहीं था। उसने तो धूप, बारिश में अपनी कमर नहीं तोड़ी थी।''

रमलू की पत्नी इस प्रश्न से आतंकित हो चुपचाप खड़ी रह गई।

•

सम्पर्क - 9896561712

स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के कुछ खास बिन्दु: प्रदीप कुमार

सभी किसानों की इस समय बस एक ही मांग मुख्य रूप से सामने आ रही है और वह है स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट लागू करना। किसानों की एकसुर में सरकार से मांग है कि वो स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट लागू करे। देश में हरित क्रांति के जनक प्रोफेसर एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में 18 नवंबर 2004 को राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन किया गया। इस आयोग को देश में किसानों की हालत सुधारने के लिए उपाय तलाशने का जिम्मा दिया गया था। आयोग ने करीब दो साल बाद अक्टूबर 2006 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी। इस रिपोर्ट में किसानों की परेशानी के कारणों और बढ़ती किसान आत्महत्याओं पर ध्यान केंद्रित कर किसानों के लिए राष्ट्रीय कृषि नीति की सिफारिश की गई। मगर किसी भी सरकार ने इन पर कोई ध्यान नहीं दिया। एक नजर डालते हैं स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के कुछ खास बिन्दुओं पर :

1 भूमि सुधार : आयोग ने कहा कि फसलों और पशुधन के लिए भूमि के मुद्दे को सुलझाना बहुत ही जरुरी है। देश में किसानों के पास कितनी भूमि हो यह एक अहम मसला है। आयोग के अनुसार भूमि के स्वामित्व से पता चलता है कि हमारे देश में इसे लेकर काफी असमानता है। ऐसे में भूमि सुधार को लेकर स्वामीनाथन आयोग ने कहा कि अतिरिक्त भूमि और बंजर भूमि का वितरण किया जाए। इसे लेकर आयोग ने कई सिफारिशें की हैं-

- मुख्य खेती भूमि और वन की भूमि को कॉर्पोरेट को गैर-खेती उद्देश्य के लिए ना दिया जाए।
- ग्रामीणों और जनजातियों का वन भूमि में पशु चराने और निश्चित सीजन में प्रवेश के अधिकार को सुनिश्चित किया जाए। और साथ ही सार्वजनिक संसाधनों पर भी उनका अधिकार सुनिश्चित किया जाए।
- सरकार को 'नेशनल लैंड यूज अडवाइजरी सर्विस' बनानी चाहिए जो मौसम और व्यापार जैसे तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निर्णय ले सके कि जमीन को किस उपयोग में लाया जाना चाहिए।
- कृषि भूमि की बिक्री को नियंत्रित करने के लिए सरकार को तंत्र विकसित करना चाहिए जोकि खरीददार के कृषि भूमि की मात्रा, प्रस्तावित उपयोग आदि पर आधारित होगा।

2. सिंचाई : सिंचाई को लेकर भी आयोग ने कई सिफारिशें दी हैं जोकि निम्नलिखित हैं-

- नियमों में विस्तार से सुधार किया जाए ताकि किसानों को जरुरत के मुताबिक लगातार और बराबर पानी मिलता रहे यानी उनकी पानी तक पहुंच सुनिश्चित हो सके।
- रेनवॉटर हार्वेस्टिंग के जरिये पानी की आपूर्ति और जलस्तर को रिचार्ज करना अनिवार्य किया जाना चाहिए। साथ ही, 'मिलियन वेल्स रिचार्ज' कार्यक्रम चलाना होगा खासतौर से निजी कुंओं पर इसके तहत खास ध्यान देना होगा।

3. कृषि उत्पादकता : आयोग ने माना है कि जोत के आकार के अलावा उत्पादकता भी किसान की आय तय करने में अहम भूमिका निभाती है। हालांकि अन्य कई देशों के मुकाबले भारत में भूमि की प्रति ईकाई उत्पादकता काफी कम है। कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए आयोग ने कई सिफारिशें की हैं-

- कृषि से जुड़े क्षेत्रों जैसे सिंचाई, जल निकासी, भूमि विकास, जल संरक्षण, अनुसंधान विकास और रोड संपर्क के लिए जरुरी मूलभूत सुविधाओं के लिए सार्वजनिक निवेश को बढ़ाना होगा।
- मिट्टी के पोषण से जुड़ी कमियों को दूर करने के लिए आधुनिक मिट्टी जांच लैबोरेट्री के लिए राष्ट्रीय नेटवर्क बनाना होगा।
- संरक्षित खेती को बढ़ावा देना होगा जिसकी मदद से किसान मिट्टी के स्वास्थ्य, जल की मात्रा और गुणवत्ता के साथ ही जैव विविधता को संरक्षित और संवर्धित कर सकेंगे।

4. क्रेडिट और बीमा : आयोग मानता है कि समय पर और उचित क्रेडिट यानी ऋण छोटे किसानों की मूलभूत जरुरत है। ऐसे में आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं -

- सरकार को औपचारिक क्रेडिट (ऋण) सिस्टम बनाकर गरीब और जरुरतमंद किसानों तक लाभ पहुंचाना चाहिए।
- सरकार की मदद से किसानों को मिलने वाले कर्ज की ब्याज दर 4 प्रतिशत से कम की जाए।
- जब तक किसान कर्ज चुकाने की हालत में ना जाए उससे कर्ज न वसूला जाए। और प्राकृतिक आपदा या अन्य किसी परेशानी में किसानों के कर्ज का ब्याज माफ किया जाए।
- प्राकृतिक आपदाओं से किसानों की रक्षा के लिए एग्रीकल्चर रिस्क फंड बनाया जाना चाहिए।
- महिला किसानों को भी संयुक्त पट्टा के साथ किसान क्रेडिट कार्ड उपलब्ध करवाए जाएं।
- फसल, पशुधन के साथ-साथ किसानों का भी बीमा किया जाए इसके लिए एक समन्वित सिस्टम विकसित किया जाए।
- फसल बीमा कवर को पूरे देश में और सभी फसलों तक फैलाया जाए। इसमें प्रीमियम कम रखा जाए और एक ग्रामीण इंश्योरेंस विकास फंड बनाया जाए ताकि ग्रामीण बीमा के कार्यक्रम को आगे फैलाया जा सके।

5. खाद्य सुरक्षा : खाद्य सुरक्षा को लेकर भी आयोग ने कई सिफारिशें प्रस्तुत कीं -

- यूनिवर्सल पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम बनाया जाए। आयोग ने कहा कि इसके लिए सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी के एक प्रतिशत हिस्से की जरुरत होगी।
- पंचायत और स्थानीय संस्थाओं की मदद से सरकार की उन योजनाओं को एक बार फिर से संगठित किया जाए जिन्हें कुपोषण दूर करने के लिए चलाया गया था।

– महिला स्वयं सहायता समूहों की सहायता से सामुदायिक खाना और पानी बैंक स्थापित करने होंगे, जिनसे ज्यादा से ज्यादा लोगों को खाना मिल सके। ये सभी हर जगह अन्न और पानी के भंडारण के सिद्धांत पर आधारित होंगे।
– छोटे और सीमांत किसानों की कृषि से उत्पादकता, गुणवत्ता और लाभ बढ़ाने में मदद करनी होगी।

6. किसानों की आत्महत्या की रोकथाम : आयोग ने माना था कि पिछले कई सालों में बड़ी संख्या में किसानों ने आत्महत्याएं की हैं। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, पंजाब, राजस्थान, ओडिशा और मध्य प्रदेश में आत्महत्या के कई मामले सामने आए। राष्ट्रीय किसान आयोग ने किसानों की आत्महत्याओं को रोकने की जरुरत पर पर प्राथमिक स्तर पर बल देने की बात कही है। इसके लिए आयोग ने कई सिफारिशें भी कीं –
– किसानों को कम कीमत पर बीमा और स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाएं। जिन इलाकों में आत्महत्याएं हुई हैं वहां पर राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन को प्राथमिकता देते हुए पहुंचाना होगा।
– किसानों के लिए राज्य स्तर पर किसान आयोग गठित करने चाहिए जिसमें किसानों का ही प्रतिनिधित्व हो ताकि किसानों की समस्याओँ पर सरकार जल्द से जल्द कार्रवाई करे।
– किसानों के लिए माइक्रोफायनेंस यानी सूक्ष्म वित्त नीति को फिर से गठित किया जाए। किसानों को तकनीकी, प्रबंधन और विपणन के क्षेत्र में मदद मिले।
– सभी गांवों में सभी फसलों का बीमा कराया जाना चाहिए। इसके निर्धारण के लिए ब्लॉक नहीं बल्कि गांव को इकाई माना जाए।
– कुँए के जल के रिचार्ज को बढ़ावा देने के साथ वर्षा जल संरक्षण को भी बढ़ावा दिया जाए। हर गांव में ग्राम सभा को जल स्वराज के तौर पर पानी पंचायत के रूप में काम करना चाहिए।
– किसानों को उचित समय और स्थान पर सस्ती कीमत पर गुणवत्ता वाले बीज और अन्य साधनों की उपलब्धता सुनिश्चित कराई जाए।
– किसानों को कम खतरे और कम कीमत वाली तकनीकी दी जानी चाहिए जिनसे किसानों को अधिकतम आय मिले क्योंकि वे फसल की खराबी के दर्द को नहीं सह सकते हैं। खासकर महंगी तकनीक से जुड़कर जैसे बीटी कॉटन आदि।
– शुष्क क्षेत्रों में बहुत अहम फसल जैसे जीरा आदि के मामले में बाजार हस्तक्षेप योजना की जरुरत पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
– वैश्विक भावों से किसानों की रक्षा करने के लिए आयात शुल्क पर तेजी से फैसला लेने की जरुरत है।
– आत्महत्या के लक्षणों की पहचान करने के लिए लोगों के बीच में सार्वजनिक जागरुकता अभियान चलाना आदि।

7. किसानों की प्रतियोगितात्मकता : आयोग ने माना कि छोटे और सीमांत जोतों वाले किसानों की कृषि प्रतियोगितात्मकता बढ़ानी जरुरी है। इससे उनकी उत्पादकता में सुधार होगा। इसे लेकर आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें दीं –
– कमोडिटी आधारित छोटे किसान संगठनों जैसे लघु कपास किसान एस्टेट आदि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ताकि विकेंद्रीकृत उत्पादन का केंद्रीकरण हो सके जैसे पोस्ट हार्वेस्टिंग प्रबंधन, वैल्यू एडिशन और विपणन आदि। इससे किसान को लाभकारी संस्थानात्मक समर्थन मिलेगा और किसान और उपभोक्ता के बीच सीधा संबंध भी स्थापित होगा।
– न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी को लागू करने में सुधार किया जाए। गेहूं और धान के अलावा दूसरी फसलों के भी न्यूनतम समर्थन मूल्य का प्रबंध होना चाहिए। मोटे अनाज और दूसरे पोषक अन्न को स्थायी रुप से पीडीएस यानी सार्वजनिक वितरण प्रणाली में शामिल करना चाहिए।
– एमएसपी फसल की कुल लागत से 50 फीसदी अधिक होना चाहिए।
– 93 कमोडिटी के हाजिर और वायदा भाव के आंकड़े मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज(एमसीएक्स) और एनसीडीईएक्स और एपीएमसी के इलेक्ट्रानिक नेटवर्क के जरिये 6000 टर्मिनल के तहत 430 कस्बों और शहरों में उपलब्ध होने चाहिए।

8. रोजगार : भारत में श्रमबल में संरचनात्मक बदलाव धीरे-धीरे हो रहा है। 1961 में जहां खेती में काम करने वाले लोगों की संख्या 75.9 फीसदी थी तो वहीं 1999-2000 में यह घटकर 59.9 फीसदी रह गई। लेकिन ग्रामीण इलाकों में जनसंख्या के बड़े भाग को खेती अभी भी रोजगार उपलब्ध कराती है। रोजगार को लेकर भी स्वामीनाथन आयोग ने कुछ सिफारिशें दी थीं-
– अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर बढ़ाने के उपाय करने चाहिए
– अधिक श्रम आधारित क्षेत्रों पर जोर देना होगा और इन क्षेत्रों की बेहतर वृद्धि के लिए काम करना होगा।
– श्रम बाजारों की कार्य पद्धति में श्रम के मानकों में गिरावट किए बिना सुधार लाना होगा।
– गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों को प्रोत्साहन देना होगा जिनमें श्रम की मांग बढ़ रही होगी। जैसे (1) व्यापार, (2) रेस्टोरेंट और होटल, (3) यातायात, (4) निर्माण कार्य, (5) मरम्मत और (6) कुछ निश्चित सेवाएं।
– किसानों की 'नेट टेक होम इनकम' यानी घर ले जाने लायक आय सिविल सर्वेंट यानी सरकारी कर्मचारी के वेतन से तुलनायोग्य हो।

9. जैव संसाधन : ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोग बड़ी संख्या में अपने पोषण और जीविका सुरक्षा के लिए विस्तृत जैव संसाधनों पर निर्भर करते हैं। इसे लेकर भी आयोग ने कुछ सिफारिशें की थीं-
– जैवविविधता तक पहुंच के पारंपरिक अधिकारों का संरक्षण होना चाहिए जिनमें गैर लकड़ी वन उत्पादों जैसे औषधीय पौधे, गोंद और राल, तेलीय पौधे शामिल होने करने होंगे।
– प्रजनन के जरिए फसलों और खेतों के साथ-साथ मछली के संरक्षण और सुधार के लिए काम करना होगा।
– समुदाय आधारित नस्ल संरक्षण को प्रोत्साहित करना होगा (यानी उपयोग के माध्यम से संरक्षण),
– स्वदेशी नस्लों के निर्यात और अवर्गीकृत पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपयुक्त नस्लों का आयात करने के लिए अनुमति।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं

पैतृक सम्पति

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मलबा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि-वह भी परती
चमरौधे जूते का तल्ला,
छोटी, टूटी बुढ़िया औगी,
दरकी गोरसी बहता हुक्का,
लोहे की पत्ती का चिमटा।

कंचन सुमेरु का प्रतियोगी
द्वारे का पर्वत घूरे का,
बनिया के रुपयों का कर्जा
जो नहीं चुकाने पर चुकता।

दीमक, गोजर, मच्छर, माटा-
ऐसे हजार सब सहवासी।
बस यही नहीं, जो भूख मिली
सौगुनी बाप से अधिक मिली।

अब पेट खलाये फिरता है।
चौड़ा मुंह बाये फिरता है।
वह क्या जाने आजादी क्या?
आजाद देश की बातें क्या??

•

मैंने उसको

मैंने उसको
जब-जब देखा
लोहा देखा,
लोहा जैसा-
तपते देखा,
गलते देखा,
ढलते देखा,
मैंने उसको
गोली जैसा
चलते देखा

•

किसान से

जल्दी-जल्दी हांक किसनवा!
बैलों को हुरियाये जा।
युग की पैनी लौह कुसी को
'भुई' में खूब गड़ाये जा।।

पुरखों के हड्डी के हल को,
आगे आज बढ़ाये जा।
वैभव के सूने खेतों की
छाती चीर दिखाये जा।।

बीजों के धारण करने की,
पूरी साध जमाये जा।
आगामी संतति के हित में,
कुड़ की राह बनाये जा।।

अपना प्यारा खून पसीना,
सौ-सौ बार चुआये जा।
आजादी की हर तड़पन को,
बारंबार जिलाये जा।।

अपनी कुरिया की चिनगी से
सब में आग लगाये जा।
जर्जर दुनिया के ढांचे को,
'भभ' 'भभ' आज जलाये जा।।

शोषण की प्रत्येक प्रथा का,
अंधियर गहन मिटाये जा।
नये जनम का नया उजाला,
धरती पर बरसाये जा।।

गांव-नगर, बे-घर वालों के,
लाखों-लाख बसाये जा।
मेहनत वालों के रहने को,
ऊंचे गेह उठाये जा।।
हल-हंसिया का और हथौड़ा-
का परचम लहराये जा।
अब अपनी सरकार बनाकर,
जीवन में मुसकाये जा।।

•

धरती

यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधों पर
बरसात घाम में,
जुआ भाग्य का रख देता है,
खून चाटती हुई वायु में,
पैनी कुसी खेत के भीतर,
दूर कलेजे तक ले जाकर,
जोत डालता है मिट्टी को
पांस डालकर,
और बीज फिर बो देता है
नये वर्ष में नयी फसल के।
ढेर अन्न का लग जाता है।
यह धरती है उस किसान की!

नहीं कृष्ण की;
नहीं राम की,
नहीं भीम, सहदेव, नकुल की,
नहीं पार्थ की,
नहीं राव की, नहीं रंक की,
नहीं किसी की, नहीं किसी की;
धरती है केवल किसान की।

सूर्योदय, सूर्यास्त असंख्यों
सोना ही सोना बरसाकर
मोल नहीं ले पाए इसको;
भीषण बादल
आसमान में गरज-गरजकर
धरती को न कभी हर पाये,
प्रलय सिंधु में डूब-डूबकर
उभर-उभर आयी है ऊपर।
भूचालों-भूकंपों से यह मिट न सकी है।

यह धरती उस किसान की,
जो मिट्टी का पूर्ण पारखी,
जो मिट्टी के संग साथ ही,
तपकर, गलकर,
जीकर, मरकर,
खपा रहा है जीवन अपना,
देख रहा है मिट्टी में सोने का सपना;
मिट्टी की महिमा गाता है
मिट्टी के ही अंतस्तल में,
अपने तन की खाद मिलाकर;
मिट्टी को जीवित रखता है;
खुद जीता है।
यह धरती है उस किसान की।

•

भाई का पत्र

चिट्ठी आई भाई की कुछ रुपया भेजो?
पीछे घर गिर गया नहीं है आगे छप्पर,
मुश्किल में है जान लगी हैं आंखें छत पर।
जाने कब गिर जाये मुंडेरें खिसक रही हैं,
तुम बस रहे विदेश रखे छाती में पत्थर।

कभी न लिखता पत्र लिख रहा लाचारी में,
जो कुछ भी था बचा न अबकी बीमारी में।
बाकी पड़ा लगान न अबकी धान बो सका,
पूरा होगा साल न खेतों यारी में।

जंगल बेच जमींदारों ने रार संजोई,
रह जाती है ईंधन बिन अधपकी रसोई।।
पुरखों की जादाद करूं क्या सर पर रख कर,
रुपयों कर्ज, उधार नहीं जब देता कोई।

सोचा-समझा खूब बहुत मन को समझाया,
बेच रहा हूं नीम द्वार की, शीतल छाया।
गई चैत की फसल बेबसी के घेरे में,
निगल गया खलिहान न घर में दाना आया।

ऐसी हालत में बोलो क्या खर्चे-खायें,
कब तक ड्योढ़ा ले-लेकर परिवार जिलायें।
डपट रहा दुष्काल जिंदगी की चिंता है,
किस धरती में रहें कहां पर पैर जमायें।

पिछली बार गिरा जो धौला, फिर न उठ सका,
चला गया सुरधाम हाय साथी मेहनत का।
मांग-चांग कर बैल बीज धरती में डाले,
पर हो गए अनाथ लगा खेती को झटका।

बिन बैलों की काश्त, स्वप्न में मोर नचाना,
बिन सरगम का गीत, भूख में गाल बजाना
तुम तो कवि हो जरा कल्पना करके देखो।
छोड़ दिया है यहां जवानी ने इठलाना।

लिखना तो है बहुत, नहीं कुछ भी लिख पाता
देखें दिन का फेर अभी क्या-क्या दिखलाता।
विपदा आयी पास नहीं है साथी कोई,
पैसा ही बन गया आज नाते का नाता।

बिना दवा के मरी अभी कंचन की साली,
लखपतशाह दाब बैठे हैं लोटा-थाली।
कुछ लोगों को छोड़ गांव का गांव दुखी है,
अबकी अपने गांव न आयेगी दीवाली।

इसुरी पंडित बुरी तरह हैं काल-गाल में,
उनके यहां पड़ गया डाका अभी हाल में,
दिन में लूटे गए फूट बस गांव न सनका,
डूब मरी सुखदा खेरे के देवताल में।

चक-चक हुई, हुई पंचों में कानाफूसी,
शोर हुआ तो कहा पुलिस ने, यह हैं रूसी।
जोर जुल्म की मार गांव में हिला न तिनका,
सुखदा की सम्पति उड़ गयी जैसे भूसी।

उल्टे रोज़े बड़े, फंसे इसुरी के नाना,
न्याय कहां हुक्काम जहां लेते नज़राना।
क्या बतलाएं धनियों की सरकार हो गयी,
रचते पंच-प्रपंच बनी पंचायत थाना।

मरा संता बेमौत, लुट गया सोना भुर्जी,
जालिम ने सब खेत लगा रक्खे थे फर्जी।
दौड़-धूप की खूब मगर कुछ काम न आई,
दीमक के मुंह लगी न्याय की थाती, अर्जी।

किसकी किसकी कहें गांव के बुरे हाल हैं,
खद्दर-धारी पंचायत में गोलमाल है।
झूठों के सरताज कसम गांधी की खाते,
भूखों मरें किसान मगर नेता निहाल हैं।

प्रीतम, तुला प्रकाश, नन्द सिंह, जोधा भाई,
अपना-अपना दांव लगा बन गये सभाई।
सागर सिंह, घनश्याम सिंह ने चोले बदले,
और मिनिस्टर का साला बन गया जमाई।

तबसे उनके रामराज्य का ठाठ-बाट है,
अत्याचारों में बढ़ती है लूटपाट है।
अबकी मंडल कांग्रेस में संघी आये,
विजयी-विश्व तिरंगा प्यारा अब सपाट है।

कुछ दिन पहले सागर ने ध्रुव को पिटवाया,
लाये थे वह यहां लाल झंडे की माया।
सुक-सुक हुई, कलेजे धड़के, उठी भुजाएं,
लेकिन अब है पुलिस राज आतंक समाया।

दुख दे रहा सुराज, किसान कराह रहे हैं,
भइया फिर अब तुम्हें यहां सब चाह रहे हैं,
तड़प रहे हैं लोग, घोर बेचैनी फैली,
उठने को तूफान, अभी कुछ थाह रहे हैं।

थोड़ा लिखा, समझना ज्यादा, भूल न करना
रुपया देना भेज मुसीबत देती धरना।

कविताएं

संजय कुंदन

बासमती चावल

क्या तुम अपनी पतीली की फुसफुसाहट
सुन पा रहे हो
या उस बुढ़िया की पदचाप
जो चांद पर चरखे कातना छोड़
तुम्हारे लिए खीर बनाने आ रही है।

क्या तुम हमें सचमुच पहचानते हो

क्या हमें देखकर तुम्हें
पानी से लबालब खेत याद आते हैं
और बगुले, मेंढक, घोंघे

विजेता आएंगे और
हमें जीतकर ले जाएंगे
तब तुम अपने खेत की
एक मुट्ठी मिट्टी दे सकोगे हमें

वे हमें ले जाएंगे
और बो देंगे अनजान मिट्टी में
हम तौले जाएंगे अनजान मंडियों में
फिर बिकने आएंगे तुम्हारे ही घर
गले में एक विचित्र नाम
का पट्टा डाले
तब कैसा लगेगा तुम्हें

जब हम लेंगे अपना और अपने
देश का नाम
तब हमारे पक्ष में बोल सकोगे तुम
अगर तुम मौन रहे
तो कितना मुश्किल होगा
गवाही देने के लिए सुभुत को बुला पाना
कहां-कहां ढूंढते फिरेंगे हम वारिस शाह को

क्या तुम्हें खेतों की ओर चले जाते
विशालकाय जूतों के निशान दिखायी देते हैं

तुम्हारे सिरहाने एक अजनबी सौदागर
रख गया एक अनुबंध पत्र
कितने समझौते करोगे तुम
वे तुम्हारे पोखरों से
उठा ले जाएंगे गुलाबी आंखों वाली
मछलियां
वे फांस ले जाएंगे
सबसे मीठा गाने वाली चिड़िया
एक दिन तुम्हें अपने हाथ को
साबित करना पड़ेगा
अपना हाथ

तुम्हारे हाथ, पैर घड़ी की सुइयों में
तब्दील होने लगे हैं

क्या तुम्हारे पास खेतों में
बिल बनाते चूहों के बारे में
सोचने के लिए थोड़ा समय है

अगर कोई सुग्गा खेतों में भरककर
तुम्हारी गोद में प्राण त्यागने आएगा
तो अपने समय का एक छोटा टुकड़ा
दे सकोगे उसके लिए

•

सुरेश सेन निशांत

हरसूद नहीं है हमारा गांव

हरसूद नहीं है हमारा गांव
किसी पानी में भी नहीं डूब रहा
पर विस्थापन है कि नहीं रुक रहा
आज ही निकला है यहां से एक और कुनबा
दूर मैदानों की ओर
अपना माल-असबाब लेकर
सभी दुःखी और आपदाओं को
अपनी कथरियों में बांध।

हरसूद नहीं है हमारा गांव
नहीं गुजरती इसके पड़ोस से कोई भी नदी
बहुत दूर है चूने पत्थर का
वह कीमती पहाड़ भी
न बांध बन रहा
और न कोई सीमेंट फैक्टरी ही
लग रही है इसके सीने पर
न दंगों की आंग ने
झुलसाया है इसका कोई दर

फिर भी हर दिन हो रहा है खाली
पता नहीं कौन है जो
कर रहा है हस्ताक्षर
लोगों के विस्थापन पर
कौन है जो
धकेल रहा है उन्हें
इनकी सिवान से बाहर
अपशगुनों की ये कैसी बारिश है
जो टिकने ही नहीं दे रही
लोगों के यहां पांव।

बारिश भी वक्त पर हुई थी
ठीक ढंग से जोती गई थी
वह उर्वर जमीन भी
फसलों को न नील गायों ने चरा
और न जंगली सुअरों ने ही उजाड़ा
फिर भी बंजर है जमीन
खेतों के बीच खड़े
उदास हैं क्षत-विक्षत बिजूके।

पता नहीं किसने बांटे थे
वे धोखेबाज बीज
जो खेतों में नमी और
खाद-पानी होने के बावजूद
उगे ही नहीं

है कोई जो कर रहा है
लोगों को दर-बदर
पर उंगली भी नहीं उठ रही उसकी ओर।

हरसूद नहीं है हमारा गांव
किसी पानी में भी डूब रहा
पर विस्थापन है कि नहीं रुक रहा।

•

राजेंद्र कुमार

क्या करें हम खुदकुशी के सिवा

कहां हैं वो खेत
जो हमें अपना कहकर पुकारें
देख कंधे पर हमारे हल
रोम रोम खिल जाएं मिट्टी के

कहां हैं वो बीज
जिन्हें हम सहज सकें
अगली फसल की आस-सा

कहां है वह फसल
जिसकी लहलहाती बालियों में
पसीने की बूंदें हमारी
दाना बन हुलसतीं
दाना उमगता हमारी रंगों में दौड़ने को

कहां हैं वो खेत
कहां हैं वो बीज
कहां हैं वह फसल

खेत अब उनके हैं
जो खाने से ऊबे
कमाने को आतुर हैं

बीज अब उनके हैं
जिन्हें
सब कुछ अपने नाम से
पेटेंट करा लेने की हड़बड़ी है

फसलें अब उनकी हैं
शीत-ताप से जिन्हें भेद करने की
जरूरत नहीं

बालियों में दाने हैं
उनके लिए रुपयों की फलियां हैं

खाली हमारे लिए
ढोने को डलियां हैं
जिनमें वो
अन्न नहीं, कर्ज हमें देते हैं
जगहें हमारे लिए
मुर्दाघरों में हैं

अन्न पेट के लिए नहीं
उनके यहां
अन्न है रखने को गोदामों में

कैसे तब्दील करें हम
अपने पसीने को
अपने लिए
अन्न के दानों में?

•

अमृतलाल मदान

किसानी जीवन का ऋण

अधखुली नींद में
अधखुली खिड़की से
दिखने लगा था
धीरे धीरे सरकता
पूरा खिला चांद
लुक्का-छिप्पी खेलता
छोटी-छोटी बदलियों के संग
आधी रात के आकाश में।
सोचा, उठकर
कोई प्रेम कविता लिखूं
यादों की बदलियों में भूले-बिसरे चांद की
और स्वयं अपनी लेखनी पर
आत्ममुग्ध हो चूमने लगूं उसे।

तभी मैंने देखा
एक धब्बा चांद का
कुछ ज्यादा ही गहरा गया है सहसा
पहले सोचा कोई बूढ़ा बादल होगा यह
सिरफिरा सा नटखट बदलियों पर रोक लगाता
फिर देखा एक और धब्बा भी
गहराने लगा है तेजी से मैला-कुचैला सा
चांदनी की छटा को कालिख पोतता
किसी बेबस घटा को दबोच धरता
देखते ही देखते
एक तीसरा धब्बा भी विकराल बन छाने लगा
पूरे कारपोरेटी परिदृश्य पर
मैं घबराया सा उठ बैठा सिलवटों पर गद्दे की
पानी के दो-चार घूंट भी पीये
माथे का पसीना व शर्म पोंछते-पोंछते।

.....अरे यह क्या हुआ....
चौथा व पांचवां धब्बा भी फूलता गया
काले गुब्बारे सा।

चांद पर अब एक खाप पंचायत थी काबिज
या कोई काला माफिया
मूछों पर ताव देते हुए।

बदलियां लापता हो गयी थी
या कर दी गई थी
या धर दी गई थी।

फिर क्या देखा मैंने
खिड़की से अब चांद नहीं
इक घोर घना पेड़ दिखने लगा था
आकाश से उल्टा लटका
जड़ें लापता थीं जिसकी
या कर दी गई थी
या गिरवी धर दी गई थी
और शाखाओं से लटक रहे थे
पांच साये
उलटे नहीं, सीधे, अकड़े-अकड़े से
रोते कुत्तों की मनहूस आवाजों के बीच।

सुबह की अखबार में
एक छोटी सी खबर दुबकी थी कोने में
पांच धरती पुत्रों ने
आकाश चुन लिया था रहने को
गांव के बरगद से लटक
तालाब किनारे पूनम के पागलपन में।

....ओह...मुक्त हो गए वे
किसानी जीवन के ऋण से
उगे थे तृण से
उखड़े भी तृण से
पूंजी की आंधी में
सोचा मैंने और....
चाय की चुस्की ली और...
पलट दिया पन्ना
बेखबर अखबार का
गुणगान करती सरकार का।

'गुलाम' टी.वी. पर भी यह मुद्दा
दरकिनार था।

सम्पर्क-94662-39164

•

किसानों में चेतना

❑सहजानंद सरस्वती

गत वर्षों ने भारतीय किसानों के भीतर दर्शनीय जागृति एवं संगठन शक्ति की असाधारण बाढ़ देखी है। यही नहीं कि उसने देश के सभी सार्वजनिक तथा जनतांत्रिक आंदोलनों में पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा भाग लिया है; वरन एक श्रेणी की हैसियत से अपनी स्थिति को भी उसने समझा है। साथ ही, सामंतशाही और साम्राज्यशाही के सम्मिलित निर्दय शोषण के मुकाबले में अपनी हस्ती कायम रखने के लिए उसने अपने जानों की बाजी लगा दी। इसीलिए उनकी वर्ग संस्थाएं बहुत बड़ी हैं और शोषण के विरुद्ध उनके संघर्ष ऊँचे दर्जे को पहुँच गए हैं, जैसा कि उनकी देशव्यापी बहुतेरी फुटकर लड़ाइयों से स्पष्ट है। इस जागरण और इन संघर्षों के अनुभवों ने उसमें एक नवीन राजनीतिक चेतना ला दी है। वे किन ताकतों से लड़ रहे हैं इस असलियत का पता पा गए हैं। अपनी गरीबी एवं शोषण की वास्तविक दवा भी उसने जान ली है। उनकी दृष्टि अपनी प्रकृत्या अलग रहने की हालत एवं संकुचित स्थानीयता के साथ बँधी नहीं है। उनने जान लिया है कि अनेक गुप्त-प्रकट रूपों में उनके शोषण-दोहन के लिए ही जीवित तथा उसी के बल पर फलने-फूलनेवाले पूँजीवाद को मिटना होगा, सो भी प्रधानत: उन्हीं के प्रयत्नों एवं कामों से ही-ऐसे कामों से जिन्हें वे देश की पूँजीवाद-विरोधी अन्यान्य शक्तियों के साथ मिलकर करेंगे। उनने यह भी महसूस किया है कि कुछ तो भूतकालिक सामंत प्रथा के फलस्वरूप और कुछ साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद के गठबंधन के द्वारा जानबूझ कर किए गए प्रयत्नों के चलते दोहन की ऐसी प्रथा पैदा हो गई है जिसने उन्हें गुलाम एवं दरिद्र बना डाला है। उसे भी मिटाना होगा। फलत: वे इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि हमारी आए दिन की लड़ाइयों का लाजिमी तनीजा होगा स्वयं पूँजीवाद के ऊपर जबर्दस्त क्रांतिकारी धावा तथा
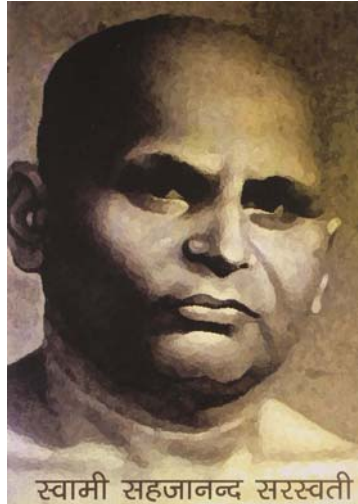
स्वामी सहजानन्द सरस्वती

उसके फलस्वरूप उसका सत्यानाश। इस प्रकार के वे शासन-सत्ता को हथियाएँगे जिससे उन्हें जमीन मिलेगी, कर्ज के भार से फुर्सत होगी, शोषण उनका पिंड छोड़ेगा और उनके परिश्रम के फलों का पूर्ण उपभोग उनके लिए निरबाधा होगा। यह पहली बात है।

दूसरी यह है कि हाल के वर्षों में प्रांतीय सरकारों की ओर से किसानों को नाममात्र की सुविधाएं देने का मायाजाल रचा गया है। इन सुविधाओं के ज्वलंत खोखलेपन ने, इन्हें प्राप्त करने में होनेवाली जबर्दस्त दिक्कतों ने और कृषि संबंधी किसी भी बुनियादी सवाल को हल करने में प्रांतीय सरकारों की प्रकट असमर्थता ने इस तथाकथित स्वराज्य का पर्दाफाश भलीभांति कर दिया है। इससे किसानों की यह धारणा और भी जबर्दस्त हो गई है कि वर्तमान आर्थिक तथा राजनीतिक प्रथा को मिटा कर उसकी जगह ऐसी प्रणाली को ला बिठाना होगा जिसका विधान स्वयं जनता ऐसे प्रतिनिधियों के द्वारा तैयार करेगी जिनका चुनाव व्यापक बालिग मताधिकार के आधार पर होगा। यही तो किसान-मजदूरों का पंचायती राज्य होगा जिसमें सब कुछ करने-धरने की शक्ति संपत्ति को उत्पादन करनेवाली जनता के हाथों में होगी। इस प्रकार संयुक्त किसान-सभा को कहने का गर्व है कि जमींदारों एवं पूँजीपतियों के सम्मिलित शोषणों से अपने आप को मुक्त करने तथा उसके लिए अपेक्षित बलिदान के लिए आज भारतीय किसानों का दृढ़ संकल्प पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा है।

किसान-मजूरों का मेल

सभा को यह उल्लेख करने में खुशी है कि मुल्क में और बाहर दूसरी भी जबर्दस्त शक्तियां और बातें हैं जो न सिर्फ किसानों को बल्कि भारतीय जनता को भी इन्हीं एवं ऐसे ही लक्ष्यों की ओर तेजी से खींच रही हैं। युद्ध में किसानों के साथी और क्रांति के अग्रदूत जो कारखानों के मजूर हैं उनके संगठन और संघर्ष उस हद को पहुँच गए हैं जहां पहले कभी पहुँचे न थे। मजूरों के संगठन आंदोलन में ज्यादा ताकत आई है और मजूरों की राजनीतिक चेतना बढ़ी है। सभा चाहती है कि मजूरों और किसानों के संगठनों एवं आंदोलनों के बीच निकटतर संबंध की लड़ी जुटें। ...

किसान-सभा का लक्ष्य और काम

भारत में समाजवादी गणतांत्रिक राज्यों का ऐसा संघ स्थापित करना जिसमें सारी सत्ता श्रमजीवी शोषित जनता के हाथों में हो और इस तरह किसानों को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा दूसरे शोषणों से पूर्ण छुटकारा दिलाना संयुक्त किसान आंदोलन का लक्ष्य है।

संयुक्त किसान आंदोलन का प्रधान काम है किसानों को संगठित करना ताकि वे अपनी तात्कालिक आर्थिक एवं राजनीतिक मांगों के लिए लड़ें और इस तरह श्रमजीवियों को हर तरह के शोषणों से छुटकारा दिलाने की अंतिम लड़ाई के लिए वे तैयार किए जाएं।

किसान-मजूर (मजूर-किसान) राज्य की स्थापना के लिए होनेवाली घमासान में सक्रिय भाग तथा नेतृत्व के द्वारा उत्पादनकारी जनता के हाथों में सर्वोपरि आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता सौंपने के लिए संयुक्त किसान आंदोलन कृत प्रतिज्ञ है।

किसानों का कार्यक्रम अनिवार्य राष्ट्रीय कायक्रम है

भारत के आर्थिक जीवन का ज्वलंत तथ्य है अपार किसान जनसमूह की अत्यंत

विपन्नावस्था एवं दलनकारी गरीबी –उस जन समूह की जो हमारी जनसंख्या का 80 प्रतिशत है। फलत: कोई भी राजनीतिक या आर्थिक कार्यक्रम जो इन किसानों की जरूरतों तथा मांगों को भुलाने की धृष्टता करता है किसी भी खयाली दौड़ से राष्ट्रीय कार्यक्रम कहा नहीं जा सकता है। किसी संस्था को, जो भारतीय जनता के प्रतिनिधित्व का दावा करती है, दिवालिए एवं अत्यंत शोषित किसानों–रैयतों, टेनेंटों तथा खेत–मजदूरों–के स्वार्थों को अपने कार्यक्रम में अग्रस्थान देना ही होगा, यदि उसे अपने दावे को सत्य सिद्ध करना है।

किसान उपेक्षित दल है

भारतीय किसानों की भयंकर दशा ऐसी है कि उसे दुहराने की जरूरत नहीं है। जमींदार, ताल्लुकेदार, मालगुजार, इनामदार, जन्मी, खोत, पवाईदार तथा अन्य भूस्वामी एवं मध्यवर्त्ती लोग किसानों को हजारों तरह से सताते रहते हैं। भूस्वामी किसानों के कंधों पर अखरनेवाली मालगुजारी की प्रणाली का जुआ लदा हुआ है। खेत–मजूर अगर कुछ मजूरी पाते भी हैं तो वह पेट भरने के लिए पूरी नहीं होती। उन्हें गुलामों की सी दशा में रहना और काम करना पड़ता है। वे उन कानूनों से प्राय: वंचित ही रखे गए हैं जो उनकी दशा कुछ सुधार सकते थे और जिन्हें व्यवस्थापक सभाएँ इस मुद्दत के दरम्यान पास कर सकती थीं। इसका कारण सिर्फ यही है कि व्यवस्थापकों ने अब तक यह माना ही नहीं है कि किसानों को संतुष्ट करना उनका फर्ज है। यह भी इसीलिए कि इस देश में खुद राष्ट्रीय राजनीतिक आंदोलन ने किसानों की बुनियादी और तात्कालिक समस्याओं से कोई ताल्लुक ही नहीं रखा है।

किसान–मजूर राज्य क्यों ?

यह सब कुछ मिटा देना होगा। मौजूदा शासन–प्रणाली के भीतर हमारा लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता। फिर भी, यदि किसानों को बर्बादी से बचना है तो उन्हें अपने लक्ष्य के लिए लड़ना और उसे प्राप्त करना ही होगा। यदि शासन–प्रणाली उनके रास्ते का रोड़ा बनती है जैसा कि वर्तमान प्रणाली बेशक है, तो इसे मिट जाना ही होगा। इसी तरह किसानों की लड़ाई किसान–मजूर (मजूर–किसान) राज्य की लड़ाई परिणत हो जाती और मिल जाती है। यही कारण है कि संयुक्त किसान–सभा ने किसान–मजूर (मजूर–किसान) राज्य की स्थापना के संबंध में अपने संकल्प की घोषणा की है। इसी ढंग से किसान आंदोलन समाजवादी आंदोलन का प्रधान अंग बन जाता है।

ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि अब राजनीतिक आंदोलन के भीतर आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र भी लाए जाएँ और उसे इस देश में इस तरह विकसित किया जाए कि मजूरों और किसानों से इसे शक्ति और स्फूर्ति मिले। उन सभी बाधाओं को मिटाने की भी कोशिश इसे करनी होगी जो देश की संपत्ति के उत्पादक जन समूह की भरपूर भलाई की ओर ले जानेवाले सच्चे और स्थिर साधनों और कामों के रास्ते में आ खड़ी होती हैं। खेत और रोटी के लिए लड़ी जानेवाली लड़ाई का अटूट संबंध किसान–मजूर (मजूर–किसान) राज्य संबंधी उनकी लड़ाई से है।

ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि अब राजनीतिक आंदोलन के भीतर आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र भी लाए जाएँ और उसे इस देश में इस तरह विकसित किया जाए कि मजूरों और किसानों से इसे शक्ति और स्फूर्ति मिले। उन सभी बाधाओं को मिटाने की भी कोशिश इसे करनी होगी जो देश की संपत्ति के उत्पादक जन समूह की भरपूर भलाई की ओर ले जानेवाले सच्चे और स्थिर साधनों और कामों के रास्ते में आ खड़ी होती हैं। खेत और रोटी के लिए लड़ी जानेवाली लड़ाई का अटूट संबंध किसान–मजूर (मजूर–किसान) राज्य संबंधी उनकी लड़ाई से है।

संघर्ष करने का मार्ग

संयुक्त किसान–सभा के मानी हैं किसानों का एका। जो ताकतें किसानों को विपदा एवं दरिद्रता की गहराई में बेरहमी से घसीट रही है उनको परास्त करने के लिए सभी किसानों को मिल जाना होगा। किसान–सभा किसानों के संगठन के द्वारा उन्हें अपने पांवों पर खड़ा करके किसानों को सिर्फ इस योग्य नहीं बनाती कि वे जमींदारों, मालमुहकमे के अफसरों, साहूकारों तथा उनके दलालों के हाथों होनेवाली हजारों परेशानियों एवं जबर्दस्ती के व्यवहारों को मिटा दें, वरन भारत में समाजवादी प्रजा सत्तात्मक राष्ट्रों के संघ शासन की स्थापना रूपी उनके अंतिम लक्ष्य की ओर बहुत ज्यादा उन्हें अग्रसर करती है। और इस प्रकार उस लक्ष्य की प्राप्ति के आंदोलन को इतना दृढ़ करती है जितना और कुछ कर नहीं सकता।

सौभाग्य से देश में सर्वत्र किसान अपनी मौलिक समस्याओं के बारे में राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से अधिकाधिक जानकार होते जा रहे हैं। किसानों के इसी जागरण का प्रतीक यह अखिल भारतीय संयुक्त किसान–सभा है। उनने समझ लिया है कि यदि हमें अपने लक्ष्य की ओर मुस्तैदी से बढ़ना है तो अपना जुझारू वर्ग संगठन तैयार करना ही होगा। किसान–सभा केवल रैयतों, काश्तकारों और भूमिहीन मजूरों का ही प्रतिनिधित्व नहीं करती, किंतु बहुत जगहों में टुँटपुँजिए भूमिपतियों अर्थात भूस्वामी किसानों की भी नुमायंदगी करती है। शब्दांतर में यह सभा उन सबों का प्रतिनिधित्व करती, उनके बारे में बोलती और उनके लिए लड़ती है जो जमीन पर कमाई कर के खेती से जीविका चलाते हैं। पूँजीवाद, जमींदारी प्रथा और महाजनों ने जो जंजीरें उन पर कस रखी हैं उन्हें तोड़ने के लिए किसानों के इन विभिन्न दलों को परस्पर मिल जाना और लड़ना होगा। संक्षेप में उन्हें पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता के लिए युद्ध करना होगा जमींदारों तथा पूँजीपतियों के भारत का स्थान वह भारत लेगा जिसमें सारी शक्ति श्रमजीवी जनसमूह के हाथों में होगी। ऐसे भारत की स्थापना के लिए जो संघर्ष होगा यह अन्यान्य बातों के अलावे भारत के किसानों के अभाव अभियोगों एवं मांगों पर आधारित कार्यक्रम की बुनियाद पर ही सफलता से चलाया जा सकता है।

इन बुनियादी परिवर्तनों के लिए चालू लड़ाई के दौरान में ही किसानों को उन बातों के लिए भी जूझना होगा जो वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के भीतर प्राप्त की जा सकती हैं। सिर्फ इसी ढंग से वे अपने आपको बड़ी जुझार के लिए तैयार कर सकते हैं जिसे उन्हें अपने दिमागों में हमेशा रखना होगा।

•

किसानों के नाम मेरा संदेश

❒लेखक-छोटू राम, अनुवाद हरि सिंह

यदि दुनिया में कोई धंधा ऐसा है कि जिसकी नेक कमाई है तो वह यही किसान है। यदि दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति है जो संतोष जीवन का ज्वलंत उदाहरण है, तो वह यही किसान है। श्रद्धा की गर्मी किसी के सीने में है हाथ उदार, दिल में पवित्र नीयत का उजाला, पेट (मन) का साफ, मानवता का सेवक, पशु का मित्र, अपने मौला का भक्त, सरकार का शुभचिंतक। मगर इतना होने पर भी कितना, हतभागी है। पशु इसकी फसल उजाड़ देते हैं। इसके पड़ौसी इसकी गांठ काटते हैं। प्राकृतिक शक्तियां इस पर विपत्तियों की वर्षा करती रहती हैं। परमात्मा भी कृपा और दयालुता की जगह कहर ढाकर इसकी सहनशीलता की परीक्षा लेता है। और सरकार भी हरदम इससे आंखें चुराए रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसान ऐसा निर्भाग है कि वह सोने पर हाथ डाले तो सोना भी मिट्टी हो जाता है। आम बोता है और बबूल पैदा हो जाते हैं, जिसके प्यार का फल घृणा और जिसकी सेवा का फल अपमान है। ऐसा क्यों होता है? यदि तनिक विचार करके देखा जाए, तो इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन नहीं।

किसान जमाने को नहीं पहचानता। किसान का दिमाग मोटा है किसान दुनिया के रंग रूप से परिचित नहीं। किसान ने जमाने की रफ्तार के साथ कदम मिलाकर चलना नहीं सीखा है। किसान ने अभी तक इस कहावत की सच्चाई को नहीं समझा है कि जैसा देश वैसा भेष, जैसा दौर वैसा तौर। इस कलयुगी जमाने में संतोष मूर्खता की निशानी है। संतोष उदासी, उत्साहहीनता का प्रमाण है। शांति जीवन की अनुपस्थिति का नाम है।

आज पश्चिमी सभ्यता का साम्राज्य है। सब्र की जगह आकांक्षाओं ने ले ली है। कनायत की जगह तमन्ना ने, सुकून की जगह हरकत ने, मकून की जगह शोरो-गुल ने ले ली है। मगर किसान अभी तक भी पुरानी लकीर का फकीर चला आता है। जमाने का रंग नहीं देखता और हवा का रुख नहीं पहचानता। इसलिए ठोकरें खाता है और गिरता है। दुनिया के हाथों से अपमानित है, मगर अपनी पुरानी चाल को नहीं छोड़ता। जमाने के हाथों वीरान हो जाता है, परन्तु अपनी गफलत से अभी तंग नहीं हुआ है यद्यपि इस गफलत व आत्मबोध से घर लुट गया, फिर भी अभी तक अपनी झूठी शान व आन पर अड़ा हुआ है।

है तेरी जिल्लत ही कुछ तेरी शराफत की दलील
जिसकी गफलत को मलिक रोते है वह गाफिल है तू

(अपनी अधिक सहजता के कारण ही तू अपमानित किया जाता है। जिसकी लापरवाही को देवता रोते हैं, वह लापरवाह आदमी तू ही तो है।)

लेकिन अब इस गफलत से काम नहीं चलेगा। यदि गफलत कायम रही तो इज्जत कायम नहीं रहेगी। यदि यह अनभिज्ञता जारी रही तो जिंदगी का तार टूट जाएगा। यदि किसान में इज्जत व जीवन की चाह बाकी है तो उसे बीसवीं सदी के शस्त्रों से सुसज्जित होना पड़ेगा।

यदि किसान को अपने जीवन और अस्तित्व की कोई चिंता है तो पश्चिमी सभ्यता का कवच पहनना होगा।

ऐ किसान! शायद तू पूछे कि बीसवीं सदी के शस्त्र कौन से हैं और पश्चिमी सभ्यता का कवच क्या है? यदि मुझे दो शब्दों में बीसवीं सदी के शस्त्र और कवच के बारे में कुछ कहना हो तो मैं कहूंगा कि यह शस्त्र क्रमशः उंगठन और प्रचार हैं। दोनों चीजों के और भिन्न-भिन्न रंग और भिन्न-भिन्न रूप हैं, जो कि वर्तमान युग में वर्तमान सभ्यता में समय-समय पर समय की मांग के अनुसार शस्त्र व कवच का काम देती है। किसान को चाहिए कि वह अपना संगठन बनाए। अपने सामूहिक हितों की रक्षा के लिए सब एकत्रित हो जाएं। मजहब के भेद को भूल जाएं। मजहब को मंदिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों की चारदिवारियों में बंद कर दें। धर्मांन्ध कट्टर मौलवी, पंडित और ग्रंथी मजहब के नाम पर घृणा और ईर्ष्या पैदा करने का काम करते रहे हैं। जहां हमारे सांसारिक हित हमें स्पष्ट रूप से एकजुट होने का आदेश देते हैं। वहां व्यर्थ में मजहब की आड़ लेकर यह मौलवी, पंडित और ग्रंथी मजहब को झगड़ों और परेशानी का कारण बना देते हैं।

पंजाब की राजनीति में मजहब का लिहाज किए बिना किसानों का आपसी हित के लिए मिलकर संगठित होना बहुत जरूरी और कुदरती बात है। परन्तु हमारे पंडित, मौलवी और हमारे ग्रंथी भाई हमारी आंखों पर द्वेष की ऐसी पट्टी बांध देते हैं कि हम हमेशा तीन तेरह और बारह बाट रहते हैं। ऐसे-ऐसे पुराने किस्से कहानियां याद दिलाकर जिनका वर्तमान परिस्थितियों और समस्याओं से कोई संबंध नहीं होता, ये लोग हिन्दू को मुसलमान और मुसलमान को हिन्दू से अलग रखने की कोशिश करते हैं। दुख की बात है कि उसी प्रतिष्ठित सज्जन ने जिसने घृणा की बाढ़ को रोकने के लिए फरमाया था।

महफिलों में तू पुरानी दास्तानों को न छेड़।
रंग पर जो अब न आएं उन फसानों को न छेड़।।

अब वही व्यक्ति घृणा के रंग में मस्त नजर आता है। पर किसान सब एक हैं। इनके हित पूर्णतः केवल अपने हैं और सामूहिक हैं। अच्छी और समय पर वर्षा हो जाए तो समान लाभ होता है। यदि अच्छा उत्पादन हो और महंगा बिके तो सबको समान नफा होता है। यदि नहर या मामले के दाम कम हो जाएं तो सब को बचत होती है। यदि वर्षा न हो या ओले पड़ जाएं या अनाज आदि जिंस सस्ती बिके या सरकारी माल बढ़ जाए तो हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी किसानों को एक-दूसरे से अलग रहना और अपनों को पराया समझना सिखाते हैं। मजहब के प्रभाव के कारण बेचारा किसान नहीं समझ सकता कि:

नहीं बेगानगी अच्छी रफ़ीकें-राहें-मंजिल से।

(अपने साथी यात्रियों से नफरत करना अच्छा नहीं होता है।) वास्तव में किसानों को तो यह पाठ पढ़ने की जरूरत है:

अगर मंजूर है दुनिया में और बेगाना खू रहना।।

(अपनों से मिलकर रहना और मित्र वेश में दुश्मनों की तरफ से असावधान न होना किसानों के लिए अति आवश्यक है।)

किसानों को आत्मनिर्भरता का पाठ सीखना भी अति आवश्यक है। केवल खुदा के भरोसे काम नहीं चलता। ईश्वर ने हमें बुद्धि दी है और पुरुषार्थ करने की शक्ति दी है और वह आशा रखते हैं कि हम पुरुषार्थ की शक्ति पर विश्वास रखकर अपनी बुद्धि को काम में लावें। सरकार से किसी प्रकार की आशा रखना तो घोर मूर्खता है। दुनिया की हर एक सरकार की यह विशेषता होती है कि वह ताकत के सामने झुकती है। शक्तिशाली व्यक्ति का आदर करती है और ताकतवर को ही न्याय देती है। वास्तव में देखा जाए तो सांसारिक सरकार और खुदा सरकार दोनों ही इंसान के बाहुबल का आदर करती है। सुस्त और आलसी व्यक्ति को घृणा की दृष्टि से देखती है। जो अपनी मदद आप करते हैं, उन पर वह भी मेहरबान हो जाती है। जो अपने पुरुषार्थ की शक्ति से दुनिया को हिला डालते हैं उन्हीं से सब प्रसन्न रहते हैं।

यही आईने-कुदरत है-यही असलूबे फ़ितरत है।
जो है-राहे अमल पर गामजन महबूबे फ़ितरत है।।

(प्रकृति का यही विधान है और यही प्रकृति का तरीका है कि जो पुरुषार्थ करता है वह प्रकृति का प्यारा होता है)

हू-ब-हू वैसी ही विशेषता सरकार की होती है जो विशेषत: प्रकृति की होती है।

यदि मैं किसानों को कोई संदेश अपने अनुभव व समझ के आधार पर दे सकता हूं तो यह है कि वह अपना मजबूत संगठन करे और जिस प्रकार खेती के काम में सरगर्मी का प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में शिथिलता छोड़ कर गतिमान हो जाएं। क्योंकि:

जुंबिश से है जिन्दगी जहां की। यह रस्म कदीम है यहां की।।

(यह बात सर्वविदित है कि दुनिया की जिन्दगी गतिशीलता से ही है।)

अपने हितों और अपनी आवश्यकताओं का डट कर खूब प्रचार करें।

अपनी शिकायतों, दुखों, कष्टों, कलेशों, पीड़ाओं, संवेदनाओं और अपनी कठिनाइयों को बिना झिझक प्रकट करें। सुकून और खामोशी को छोड़ दें। चिल्ला-चिल्ला कर नाला फरियाद से राजनीतिक क्षेत्र में हलचल मचा दें। सुकून की कोई इज्जत नहीं, शांति का कोई आदर नहीं है। सच पूछो तो सियासी दुनिया में जिन्दगी का नाम और पैमाना शोरोगुल ही है।

चमन ज़ारे-सियासत में खामोशी मौत है बुलबुल।
यहां की जिंदगी पाबन्दि-ए-रस्मे फुग़ां तक है।।

(ए बुलबुल राजनीति के बाग में चुप रहना मृत्यु को बुलावा देना है। राजनीति की दुनिया में जिंदा रहना चाहता है तो तू अपनी मांगों के लिए शोर मचा, हुंकार भर।)

बहुत लिख चुका। अब तुझे जगाने और संगठित करने चला हूं। तुझे 'बेचारा' नहीं रहने दूंगा। तुझे पंजाब का और भारत का राजा बनाकर ही दम लूंगा। •

किसान की हालत ❒ पृथ्वी सिंह गोरखपुरिया

इंसान की बात तो छोड़िए, पशु-पक्षी भी तिनका-तिनका इकट्ठा करके और दाना-दाना चुगकर अपने बच्चों के पेट भरने की कोशिश में दिन-रात एक करते रहते हैं। मां-बाप के सामने जब बच्चे भूख से बिलखते हुए तड़पकर मर रहे हों तो अंदाजा लगाइए उस मां पर क्या बीतती होगी। किसान आज दाने-दाने का मोहताज है। खस्ता हालत से गुजर रहा है। किसान के पास न रहने को ढंग का घर है और न बच्चों का तन ढकने को कपड़े। पालियों की तरह पशुओं के पीछे भोखड़ी और कांटों के चुभने के कारण लहू-लुहान। अब तो पीने का साफ पानी भी दुश्वार होता जा रहा है। कुदरत की देन पानी भी कम्पनियों की बोतलों में बंद होकर बिकने लगा है। जंगल-पानी जाने के लिए बणी नहीं बची है। घरों में व गांवों में सार्वजनिक शौचालयों का प्रबंध नाममात्र का है। औरतें मुंह अंधेरे जंगल-पानी जाने के लिए निकलती हैं। बीच में ही कोई हादसा हो जाने का डर है। ऐसी ही बनती जा रही है किसान की जिंदगी और गांव का जीवन चलता-फिरता नरक।

किसान की विकास के लाभ में भागीदारी लगातार कम हो रही है। शिक्षा का इंतजाम चरमरा गया है। स्वास्थ्य और इलाज पहुंच से बाहर हो चला है। सरकार ने भी शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं जैसी जरूरी सुविधाओं से हाथ खींच लिया है। सब कुछ बाजार के हवाले करती जा रही है।

जी.डी.पी. में भी कृषि की हिस्सेदारी कृषि पर निर्भर है। परन्तु कृषि में रोजगार सिंकुड़ रहे हैं। कृषि के सहारे किसान अच्छा और सुखी जीवन नहीं जी पा रहा है। कृषि घाटे का सौदा हो चली है। सर्वे रिपोर्ट बताती है कि 40 प्रतिशत किसान कृषि से पल्ला झाड़ना चाहते हैं। 'उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, अधम चाकरी करै लाचार' की कहावत हरियाणा के जीवन से नदारद होती जा रही है। जमीन बेचकर भी किसान अपने बच्चों को चपड़ासी व सिपाही की नौकरी दिलवाना चाहता है।

तंगी के मारे एक नहीं, दो नहीं, बल्कि लाखों की तादाद में किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं। कृषि मंत्री शरद पवार लोकसभा में एक लाख चौंतीस हजार किसानों द्वारा आत्महत्या की बात कह चुके हैं। पिछले सालों में अन्य अनुमानों के अनुसार आंकड़ा 2 लाख को पार कर चुका है। यह सिलसिला अभी भी बंद होने का नाम नहीं ले रहा है।

कृषि संकट अकेला किसान का संकट मानना हमारी (सरकार की) बहुत बड़ी भूल होगी। यह संकट पूरे देश का संकट है और यूं ही चलता गया तो पूरे देश के जनजीवन को अजगर की तरह निगल जाएगा तथा देश की खाद्य सुरक्षा और आत्मनिर्भरता संकट में पड़ जाएगी जो अंत में गुलामी की तरफ बढ़ा हुआ कदम साबित होगा। अगर किसान और कृषि नहीं बचेगी, तो देश नहीं बचेगा। (7.12.2016)

लोहारू का खूनी संघर्ष

चौधरी लाजपत राय

लोहारू एक छोटी सी स्टेट थी। इसमें श्योराण जाटों के 52 गांव बसते थे। यह उस समय के जिला हिसार की तहसील भिवानी के दक्षिण कोने में आबाद थे। अब इन 52 गांवों में से निकल कर 70-75 गांव हो गए हैं।

यह रियासत भी जब अंग्रेज सन् 1803 ई. में यहां आए, तब बनी थी। दिल्ली और उसके आसपास के इलाके पर काबिज हुए हांसी क्षेत्र की तरह लावारिस ही पड़ा था अर्थात् लोहारू की छावनी पर वहां के लोगों का ही आधिपत्य था और वे एक प्रकार से स्वतंत्र ही थे। किसी बड़ी शक्ति का उन पर अधिकार न था। ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार दिल्ली पर होने से पहले लोहारू क्षेत्र पर कई बार जयपुर ठिकाने खेतड़ी सीकर का भी अतिक्रमण होता रहा था, लेकिन स्थायी साया उनका लोहारू पर कभी नहीं हुआ था। भरतपुर वाले भी जब अलवर, रेवाड़ी, गुड़गांवा, झज्जर की तरफ बढ़े थे, तब वह भी लोहारू तक पहुंचे थे। उसके बाद जब अलवर के ठाकुर ने मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों का साथ दिया, तब अंग्रेज प्रशासन ने यह लोहारू अलवर के राजा को सौंपा था। उस मराठा लड़ाई में पूना का पेशवा प्रशासन पूरी तरह से हार गया और पूना संधि अनुसार पूना में अंग्रेजी रेजीडेन्ट रखना पड़ा और साल्सीट बसीन टापू भी अंग्रेजों को दिए और उत्तरी भारत अथवा दिल्ली क्षेत्र से मराठे सदा के लिए हट गये। इस लड़ाई का अंत सन् 1803 में हुआ। उसी समय मराठा कांफिडरेशन भी छिन्न-भिन्न हो गई। लेकिन इन्दौर का राजा यशवंतराव होल्कर पूना संधि से खुश नहीं था। उसने फिर एक लाख सेना तैयार की और भरतपुर के राजा के पास पहुंचा। 6 लाख रुपए में अमीरखां पठान का रिसाला किराया पर लिया, ताकि वह उत्तरी दिशा, यानी की सहारनपुर-अम्बाला की तरफ से दिल्ली पर आक्रमण कर सके। वह मदद के लिए महाराजा रणजीत सिंह के पास लाहौर भी गया, मगर रणजीत सिंह अंग्रेज सरकार के साथ संधि कर चुका था, इसलिए अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने से इंकार कर दिया। दुःखित निराश हृदय से यशवंतराय होल्कर ने कहा 'रणजीत सिंह मेरे वंश का राज तो चलता ही रहेगा, मगर तेरे वंश का राज और तेरा वंश खत्म हो जाएंगे।'

अमीरखां पठान को भी अंग्रेजों ने बीस लाख रुपया देकर बैठा दिया और राजस्थान के राजे भी होल्कर की सहायता को नहीं आए। तब अकेला होल्कर फरूखाबाद, कानपुर, झांसी, ग्वालियर में लड़ता-हारता हुआ भरतपुर के किले में आया। अब ईस्ट इंडिया कम्पनी का सितारा चढ़ चुका था। जनरल लेक ने राजा भरतपुर को कहा कि होल्कर को किले से निकाल दो। महाराजा भरतपुर का जवाब था कि शरण में आये को कैसे निकाल दूं? तब लेक ने, जिसको अंग्रेज शक्ति का घमंड था, भरतपुर के किले पर हमला कर दिया (1804)। लगातार कई आक्रमण पूर्ण शक्ति के साथ किए, मगर किला नहीं टूटा। अंग्रेजी सेना के 3206 सिपाही, अफसर और हिमायती मारे गए और तोप गोला, बारूद आदि सामान बहुत नष्ट हुआ। हार कर उन्हें सन् 1806 में भरतपुर के साथ संधि करनी पड़ी। उस लड़ाई से अंग्रेज सरकार के बढ़ती हुई शोहरत को बड़ा धक्का लगा और जनरल लेक का भी दिल टूट गया। वह विलायत चला गया और वहां मर गया।

जिन लोगों ने मराठों के विरुद्ध दो लड़ाइयों में अंग्रेजों का साथ दिया और भरतपुर के खिलाफ लड़े और अन्य संघर्षों में अंग्रेज सरकार की सहायता की, उनको ईनाम व जागीर देने का समय आया। अलवर को राजा बनाया और कुछ मेवात का इलाका भी उसको दे दिया। सरदार अहमदबख्श खां भी अंग्रेज सरकार का बहुत पुराना सेवक और उपरोक्त सब लड़ाइयों में शामिल रहकर खूब वफादारी की थी, उसकी भी किस्मत जागी।

सरदार अहमदबख्श खां अंग्रेज और राजा अलवर दोनों का वफादार सेवक था, इसलिए लोहारू का परगना, जो अंग्रेजों ने पहले अलवर को दे दिया था, राजा अलवर और अंग्रेज सरकार ने वह अहमदबख्श खां को दे दिया और लोहारू का नवाब बना दिया।

नवाब अहमदबख्श खां कौन था? कहां का था? वह मिर्जा अरीफजान वेग के नाम से एक प्रसिद्ध बुखारी मुगल सरदार पुत्र वंशज था और मध्य एशिया का रहने वाला था। मिर्जा अरीफजान अठाहरवीं सदी के मध्य सन् 1750-60 के लगभग पृितान,-बुखारा से भारत आया था। मिर्जा अहमदबख्श भारत में आने पर पैदा हुआ था। वह भी अपने बाप की तरह सैनिक टुकड़ी लेकर कभी किसी की सेवा करता रहा कभी किसी की। पैसा दो सेवा लो, यह उसका धर्म था। पहले अलवर राज की सेवा की, फिर ईस्ट इंडिया कम्पनी की। लोहाय का नवाब बना।

अहमदबख्श ने जनता का खूब शोषण किया। लोहारू की जनता समय-समय पर उसके विरुद्ध विद्रोह करती रहती थी। वर्तमान नवाब अमिनुद्दीन अहमद खां से पहले के नवाबों का जनता के साथ कैसा बर्ताव रहा होगा, ऐसा क्षेत्र के हालात से जाहिर होता है: यह क्षेत्र खुशहाल था और उनकी कृपा से घोर कंगाल हो गया। इन नवाबों को जनता की भलाई का तनिक भी ध्यान नहीं था।

वर्तमान नवाब अमिनुद्दीन ने कुछ जनहित के काम भी किए। उसने उर्दू का एक प्राइमरी स्कूल, लड़कों का हिसाब सीखने की एक पाठशाला और एक छोटी डिस्पैंसरी जिसमें दवाई और डाक्टर नदारद रहते थे। यह थी लोहारू स्टेट की हालत। और यह ही हालात किसान जागृति और संघर्ष के कारण बने- जैसे सन् 1909 के बंदोबस्त से पहले रियासत में भूमि जोतने वाला ही अपनी काश्त भूमि का मालिक होता था, लेकिन उसका लिखित रिकार्ड नहीं होता था। कम्पनी सरकार ने सरकार के रिकार्डो के अनुसार भूमि का लिखितबद्ध रिकार्ड रखा जाने लगा था। लेकिन उससे दुगनी शरह से सन् 1919 में सैटलमेंट हुआ

सिंघानी हत्याकांड के शहीद

लोहारू रियासत द्वारा किसान आंदोलनकारियों पर सिंघाणी गांव में 8 अगस्त 1935 को जो फायरिंग की गई थी, उसमें निम्नलिखित वीर शहीद हुए :

1. लालजी पुत्र कमला अग्रवाल (गांव सिंघाणी)
2. शिव बख्श पुत्र धर्मा अग्रवाल 60 वर्ष (गांव सिंघाणी)
3. दौलतराम पुत्र बस्तीराम 60 वर्ष (गांव सिंघाणी)
4. राम नाथ पुत्र बस्तीराम 58 वर्ष (गांव सिंघाणी)
5. पीरू पुत्र जय राम 50 वर्ष (गांव सिंघाणी)
6. भोला पुत्र बहादुर 40 वर्ष (गांव सिंघाणी)
7. शिव चन्द पुत्र रामलाल 45 वर्ष (गांव सिंघाणी)
8. भानी पुत्र नेमचंद 50 वर्ष (गांव सिंघाणी)
9. अमीलाल पुत्र सरदार 35 वर्ष (गांव सिंघाणी)
10. गुटीराम पुत्र मोहरा (गांव सिंघाणी)
11. अमरचंद पुत्र उदमी (गांव सिंघाणी)
12.श्रीमती सुंदरी पत्नी झन्डुराम नंबरदार 50 वर्ष (गांव सिंघाणी)
13. शिव चंद पुत्र खूबी धानक 25 वर्ष (गांव सिंघाणी)
14. मामचंद पुत्र गोधा खाती 26 वर्ष (गांव गिगनाऊ)
15. पूर्ण पुत्र पेमा 40 वर्ष (गांव गिगनाऊ)
16. हीरा लाल पुत्र नानक (गांव गिगनाऊ)
17. कमला पुत्र गोमा (गांव गिगनाऊ)
18. धनिया पुत्र गोर्धन 43 वर्ष (गांव गिगनाऊ)
19. सोहन पुत्र चुनिया 18 वर्ष (गांव गोठड़ा)
20. रामलाल पुत्र माया राम 25 वर्ष (गांव पिपली)
21. मनीराम पुत्र गिरधारी 45 वर्ष (गांव चुहड़ कलां)
22. एक अज्ञात (जींद रियासत)

था। जब उस सैटलमैंट में नवाब ने किसान की मलकीयत के हक को ही छीन लिया और उस समय स्टेट की कुल आय 73 हजार रुपए सालाना थी। जिसको बढ़ाकर 94 हजार कर दिया गया। ऊंट टैक्स प्रति वर्ष तीन रुपया जनता से लिया जाता था। उपरोक्त आर्थिक शोषण के विरुद्ध जनता ने सन् 1923 में विद्रोह किया, मगर अंग्रेजी सरकार की सहायता से ऊपर से लोग कुचल दिए और दबा दिये, लेकिन अग्नि अंदर ही अंदर धधकती रही। 1935 में 1923 की दबी आग फिर भड़की। इस आग को भड़काने वाले कारण ये थे :

1. जैसे बैल टैक्स जो बैल स्टेट से बाहर जाए, उस पर पैसा रुपया टैक्सा दिया जाए।
2. बाट छपाई टैक्स जो सालाना लोगों से लिया जाने लगा।
3. मलबा टैक्स जो गांव खर्च के लिए जाता था। अब स्टेट ने अपनी आय बना ली।
4. बकरी-भेड़ आदि पर टैक्स।
5. लोहारू शहर के सिवाय कहीं भी चुंगी चौकी नही थी, मगर प्रत्येक गांव से मुकर्रर चुंगी टैक्स लिया जाता था।
6. सन् 1933 में नवाब के परिवार में शादी थी। उस वक्त तीन रुपए प्रति घर शादी टैक्स वसूल किया।
7. करेवा टैक्स जो विधवा करेवा करे, उससे टैक्स वसूल किया जाए, बल्कि नवाब ने करेवा कराना अपने अख्तियार में ले लिया और बोली चढ़ाकर लूटना शुरू किया।
8. नवाब लंबरदारी और जैलदारी भी नीलाम करने लगा। लोगों ने इतने टैक्सों की आलोचना की। सन् 1934 में नवाब ने पहाड़ी गांव में कैंप लगाया और लोगों पर अनेक दोषारोपण किये और खूब जुर्माना किया।

ऊपर हमने कुछ ही कारण दिए हैं, मगर ऐसे अनेक कारण थे जेसे धार्मिक भेदभाव और ताड़ना, जिनकी वजह से लोगों ने सन् 1935 में संघर्ष का रास्ता अपनाया।

नवाब से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हमें राहत दें, हम महादुखी हैं। लेकिन उसने नहीं सुना। लोग मैदान उतर आए और उसे कर देने से मना कर दिया। नवाब ने बड़े अत्याचार किए। उसने चहड़ गांव को आग लगाकर जला दिया और दो वीरों चौ. मामराज और चौ. रामसरूप को लोहारू में फांसी पर लटका दिया। उस संघर्ष में और भी अगुवा लोगों को जेलों में डाल दिया और उनकी जमीन-जायदाद जब्त कर ली और बहुत से कार्यकर्त्ताओं को स्टेट से निर्वासित कर दिया गया। लोगों पर बड़े-बड़े जुर्माने किए गए और सारी रियासत पुलिस की छावनी बना दी।

इन हालात से निपटने के लिए हमने गांव-गांव में पंचायत करनी शुरू की। एक पंचायत 6 अगस्त 1935 को चहडू कलां गांव में रखी। वहां संघर्ष को धारदार बनाने का फैसला किया, लेकिन नवाब से झगड़ने की बात नहीं की। नवाब को पता नहीं चला। बाद में पता चला तो वह सतर्क हो गया और लोगों को सबक सिखाने पर उतर गया। 8 अगस्त को सिंघानी गांव में पंचायत हुई, जहां बड़ी संख्या में लोग आए। पंचायत में आये लोगों का आशय केवल नवाब से फरियाद करना और मांगें पेश करना था। नवाब लोगों के संगठन को दुर्भावना से देखता था। अत: उसने एजेन्ट जनरल स्टेटस से दिल्ली में मिलकर पचास-साठ गोरखे सिपाहियों के दो छकड़े सिंघानी गांव में भिजवा दिये और खुद लोहारू पहुंच गया। दिन के बारह बजे नवाब की फौज ने बेखबर निहत्थी जनता पर गोलियों की बौछार कर दी, जिससे 22 किसान व राहगीर मारे गए। सैंकड़ों लोग घायल हुए। उपस्थित लोगों ने ही वहां मरने वालों की लाशों को उठाकर दाह संस्कार किया और घायलों को छुप-छुप कर ऊंटों पर भिवानी अस्पताल पहुंचाया। जब जख्मी ऊंटों पर भिवानी पहुंचे, तब उनको देखकर भिवानी की जनता का ह्रदय कांप उठा। लोगों ने सुना कि 22 आदमी मार दिये और सैंकड़ों घायल कर दिये तो वे सुन्न रह गए।

साभार: हरियाणा में किसान आंदोलन, लाजपत राय, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी

कृषि संकट : आर्थिक कुप्रबंधन की देन

देवेन्द्र शर्मा से अरुण नैथानी की बातचीत

अरुण नैथानी – देश में खेती की निर्भरता का सच क्या है? जीडीपी में योगदान का वास्तविक आंकड़ा कितना है?

देवेन्द्र शर्मा – सच ये है कि हर प्रधानमंत्री देश को कृषि प्रधान बताता है। मगर बजट पेश करने वाला हर वित्त मंत्री बजट में एग्रीकल्चर बाटम पर व उद्योग टाप पर रखता है। लोगों को विश्वास दिलाने को कहता है कि देश कृषि प्रधान है। हम खेती को ऐसा मंच नहीं बना पाये कि खेती देश के लिये लाभकारी साबित हो सके। वास्तव में कुल 52 फीसदी लोग कृषि पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तौर पर निर्भर हैं। यानी कुल 60 करोड़ लोग खेती पर निर्भर हैं। पिछली जनगणना में यह तथ्य सामने आया कि खेती पर निर्भर जनसंख्या कम होती जा रही है। अब भूमिहीन काश्तकार का आंकड़ा बड़ा है। हम मानकर चलें कि करीब 35 करोड़ किसान भूमिहीन हैं और करीब कुल 25 करोड़ किसान खेत वाले हैं।

अरुण नैथानी – सकल घरेलू उत्पाद में खेती का योगदान लगातार घटा है?

देवेन्द्र शर्मा – जहां तक जीडीपी का सवाल है तो यह कुल योगदान का 14 प्रतिशत है। यह धारणा फैलायी जा रही है कि खेती का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान कम हो रहा है। जब हम किसानों को दाम का हक नहीं देंगे तो स्वाभाविक रूप खेती का जीडीपी में शेयर कम होगा। सीधी सी बात है कि यदि इनकम कम होगी तो उसकी हिस्सेदारी भी कम होगी। ये इरादतन कम किया गया है।

अरुण नैथानी – आरोप लगते रहे हैं कि सरकार कॉरपोरेट को श्रमिक उपलब्ध कराने के लिये किसानों को खेती से बेदखल कर रही है?

देवेन्द्र शर्मा – पहले सरकार की नीतियों को समझना जरूरी है। वास्तव में ये नीतियां क्या हैं। वर्ष 1996 में मुझे एमएस स्वामीनाथन फाउंडेशन के चेन्नई सम्मेलन में भाग लेने का मौका मिला। वहां विश्व बैंक के एक वाइस प्रेजीडेंट ने एक आंकड़ा प्रस्तुत किया। विश्व बैंक के अधिकारी ने कहा था कि 2015 तक भारत में गांव से शहर जाने वाले किसानों की संख्या इंग्लैड, फ्रांस व जर्मनी की जनसंख्या से दोगुनी होगी। उस समय तीनों देशों की जनसंख्या बीस करोड़ थी यानी कि 40 करोड़ शिफ्ट होंगे। तब मैंने सोचा कि विश्व बैंक हमें सचेत कर रहा है। मगर जब मैंने 2008 में विश्व बैंक की रिपोर्ट देखी तो उसने सरकार को उलाहना दिया कि अब तक ये किसान कृषि से निकाले क्यों नहीं जा सके। डेवलपमेंट रिपोर्ट में कहा गया कि जमीन अयोग्य लोगों के हाथों में है, जमीनों का अधिग्रहण तेज किया जाये। जो लोग खेती के अलावा कुछ नहीं जानते, उन्हें कृषि से हटाया जाये। जो युवा लोग खेती से जुड़े हैं, उन्हें ट्रेनिंग इंस्टीट्यूटों में, उद्योगों में काम करने का प्रशिक्षण दिलाया जाये। इसके ठीक एक साल बाद मैंने पाया कि 2009 में तत्कालीन वित्तमंत्री पी. चिंदबरम ने तत्काल 1000 आई.टी.आई. खोलने की मंजूरी दे दी। यह सब सोची-समझी रणनीति के तरत लोगों को खेती से हटाने का उपक्रम है। ऐसे तौर-तरीकों से विकास नहीं होता। हम ये बात अब भी नहीं समझते कि यूरोप व अमेरिका में हुए बदलावों और भारत की स्थितियों में फर्क है। इससे आने वाले वर्षों में सोशो-इकोनॉमी चुनौती से देश में भयावह परिदृश्य उत्पन्न होगा।

अरुण नैथानी – क्या असली मुद्दा किसान की लागत न निकल पाना है?

देवेन्द्र शर्मा – दरअसल, किसान की लागत और मुनाफे की तो बात ही नहीं होती। जब हमारी व्यवस्था का मकसद ही खेतिहर लोगों को खदेड़ना है तो फिर क्या कहा जाये। दरअसल, हमने आधा अधूरा अमेरिकी माडल अपनाया है। पब्लिक सेक्टर में निवेश किया ही नहीं। कोशिश की कृषि उत्पादों की कीमत कम रखिये, जिससे मजबूर होकर किसान खेती छोड़कर मजदूर बन जाएं। सही मायनों में हमने वाजिब दाम दिये ही नहीं। हमने कभी किसान की लागत को वर्क आउट किया ही नहीं। आंकड़ों पर नजर डालें तो जो गेहूं 1970 में 76 रुपये क्विंटल था वह 2015 में 1450 रुपये क्विंटल था यानी 45 साल में उसमें सिर्फ 19 गुना ही वृद्धि हुई। इस अवधि में यदि हम सरकारी कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि देखें तो बेसिक पे व डीए में करीब 120 से 150 गुना, कालेज टीचर के वेतन में 120 से 150 गुना और प्राइमरी टीचर के वेतन में 280 से 300 गुना तक वृद्धि हुई है। कर्मचारियों के कुल 108 तरह के भत्ते शामिल हैं, जबकि किसान को एक भी भत्ता नहीं मिलता। यानी किसान के खिलाफ मैच फिक्स है। वह खाद्यान्न की नहीं बल्कि दुखों की खेती करता है।

अरुण नैथानी – क्या किसान आंदोलन नोटबंदी के परिणामों और विपक्ष की राजनीतिक हताशा की शह से उपजा है?

देवेन्द्र शर्मा – मैं आंदोलन को इस तरह से नहीं देखता। किसानों के दिल में भयंकर गुब्बार है। ये गुस्सा तो फूटना ही था। मौजूदा आंदोलन का अभी जो आप समापन देख रहे हैं, उसे किसी तरह हैंडल कर लिया गया। यदि हालात इसी तरह चलते रहे तो यह गुस्सा भयंकर ढंग से फूटेगा। खेती की अनदेखी की जा रही

है, जानबूझकर किसान को खेती से बेदखल किया जा रहा है। ये तो अभी ट्रेलर है, असली फिल्म अभी बाकी है।

अरुण नैथानी – किसानों की समस्या की असली जड़ कहां है?

देवेन्द्र शर्मा – मूलत: कृषि समस्या आर्थिक कुप्रबंधन की समस्या है। इसके मूल में आर्थिक असुरक्षा है। साल-दर-साल किसान पिस रहा है। सरकार की कोशिश होती है कि किसी तरह से मुद्रास्फीति को नियंत्रण में किया जाये। ठीक है लोगों को सस्ता अनाज मिल रहा है, मध्य वर्ग खुश हो जाता है। मगर सवाल यह है कि जो अन्नदाता उपज पैदा कर रहे हैं, उसे आप क्या दे रहे हैं? उसे खेती से बेदखल किया जा रहा है। उससे हम पैसा ले तो रहे हैं मगर दे नहीं रहे हैं।

अरुण नैथानी – ऐसा क्यों है कि किसान की आत्महत्या की खबरें संपन्न इलाकों पंजाब, महाराष्ट्र आदि से आ रही हैं?

देवेन्द्र शर्मा – ऐसा नहीं है। इस समस्या के दो पहलू हैं। एक तो जो आत्महत्याएं हो रही हैं, उसकी सही तस्वीर सामने नहीं आ रही है। महत्वपूर्ण कारण यह है कि जहां किसान का फसल के साथ रिस्क जुड़ा है, वहां से आ रही हैं। जहां कैश क्रॉप के रूप में अंगूर, कपास आदि हैं, वहां से ज्यादा आत्महत्या की खबरें हैं। कुल 70 प्रतिशत कपास का क्षेत्र संवदेनशील है। दूसरे आत्महत्या के आंकड़ों की हकीकत सामने नहीं आ रही है। विदर्भ के इलाके में स्वयंसेवी संस्था से जुड़े किशोर तिवारी ने आत्महत्या का डाटा एकत्र कर देना शुरू किया। जब यह आंकड़ा निकलकर एनजीओ व मीडिया के पास आया तो देश को विदर्भ की हकीकत का पता चला। यदि ये सारे देश में होता तो वास्तविकता उभरकर सामने आती। बुंदेलखंड से भी आत्महत्याओं की खबरें आ रही हैं। अब लोग जागरूक हो रहे हैं। मैं चार साल पहले दिल्ली से चंडीगढ़ आया। प्रिंट मीडिया से मिली आत्महत्या की जानकारी को मैंने हर रोज ट्वीट करना शुरू किया। पंजाब हॉटस्पाट के बारे में लोगों को पता चला। दरअसल, सूचना बंटेगी तो पता चलेगा। उड़ीसा में भयंकर सूसाइड के मामले सामने आ रहे हैं। देश में कैश क्रॉप की इनपुट कास्ट बढ़ी है।

अरुण नैथानी – आने वाले वक्त में खाद्य जरूरतें कितनी बड़ी चुनौती है?

देवेन्द्र शर्मा – ये बात कोई समझने की कोशिश नहीं कर रहा है। वर्ष 1965 में पहली बार खाद्यान्न का आयात किया गया। वर्ष 1967 में सबसे ज्यादा 11 मिलियन टन अनाज आयात किया गया। तब इसे हम शिप टू माउथ कहते थे। यानी जहाजों से उतरा और सीधे खाद्यान्न के रूप में इस्तेमाल हुआ। देश में हरित क्रांति आई, इम्पोर्ट बंद हुआ। मगर आज हम उन्हीं नीतियों पर जा रहे हैं। इतने बड़े देश को फीड करना आसान नहीं होगा। जब भारत मार्केट में उतरता है तो कीमतें बढ़ती हैं। वहीं जब हम बेचने जाते हैं तो कीमतें गिर जाती हैं। भारत विश्व बाजार में बड़ा देश है तो उथल-पुथल होगी। इतने बड़े देश को आयात करके खिलाना संभव नहीं है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारी नेशनल सिक्योरिटी खाद्य सिक्योरिटी से जुड़ी है। हम जय जवान, मर किसान का नारा नहीं लगा सकते। वर्ष 2007-08 में जब खाद्यान्न संकट हुआ तो 37 देशों में खाद्यान्न को लेकर दंगे हुए। मगर भारत की स्वतंत्र व्यवस्था के चलते हम इससे प्रभावित नहीं हुए। भारत में खाना न हो तो क्या हो।

अरुण नैथानी – क्या परंपरागत फसलों की पैदावार खत्म होने व पानी वाली फसलों के प्रचलन से समस्या बढ़ी है?

देवेन्द्र शर्मा – असली समस्या तो लागत की है। हरेक चीज रिलेटिव है। हरित क्रांति से पहले भारतीय परंपरागत फसलों के हालात ऐसे नहीं थे कि हम पूरे देश का पेट भर सकें। हरित क्रांति के बाद दो महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। एक तो फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण, जिससे किसानों का व्यवस्था पर भरोसा बढ़ा। दूसरा एफसीआई का गठन । इतने बड़े देश में खाद्यान्न को हेंडल करना व डिस्ट्रीब्यूट करना आसान नहीं था। माना कि भ्रष्टाचार बड़ी समस्या है मगर इसे डिस्मेंटल करना आत्मघाती कदम होगा। हम फिर शिप टू माउथ की स्थिति में पहुंच जायेंगे। हमें कास्ट आफ प्राडक्शन भी देखनी है। किसान को न्यायसंगत दाम तो मिलें। यदि किसान को मुद्रास्फीति के हिसाब से मौजूदा दर पर अनाज की कीमत मिले तो शहर गये लोग गांव आना शुरू कर देंगे। अनाज का बाजार मूल्य दें और बाकी लागत उसके जन धन खाते में स्थानांतरित कर दें।

अरुण नैथानी – देश में अथाह गरीबी है। कीमतें बढ़ाने से बढ़ी महंगाई से सामाजिक असमानता नहीं बढ़ेगी?

देवेन्द्र शर्मा – बिल्कुल नहीं। दुनिया में असमानता हर देश में है। कुल टॉप एक प्रतिशत लोगों को मोटा पैसा मिलता है। मिडिल क्लास को छोड़ दें तो देश में 60 करोड़ लोग खेती से जुड़े हैं। देश के आधे यानी 17 प्रदेशों में किसान की मासिक आय 1700 रुपये से कम प्रतिमाह है। इतने में तो हम गाय नहीं पाल सकते। आज जब मिनिमम लिविंग वेज की बात होती है तो किसान को भी तो यह मिलना चाहिए। हमारे देश में किसान उत्पादक भी है और उपभोक्ता भी है। यदि हम किसान को खर्च के बराबर पैसा देते हैं तो हमारी सात-आठ फीसदी के आसपास रहने वाली जीडीपी 15 तक पहुंच सकती है। तभी तो सबका साथ, सबका विकास होगा।

अरुण नैथानी – न्यूनतम समर्थन मूल्य किसान के हित में कितना कारगर है?

देवेन्द्र शर्मा – मैं सीआईआई व फिक्की की बैठक में शामिल था तो खाद्य मंत्री ने पूछा कि एमएसपी के दायरे में कितने किसान हैं? अंदाजे से मैंने तीस फीसदी बताया। अधिकारी जबाव न दे पाये। एफसीआई को पता नहीं था, अगली मीटिंग में खुलासा हुआ कि 6 प्रतिशत। यानी कुल 94 फीसदी किसान को कोई सुरक्षा कवच नहीं। ऐसे में किसान आत्महत्या नहीं करेगा, तो क्या करेगा? कैसे जीएगा किसान?

सम्पर्क : 9815121800

साभार- दैनिक ट्रिब्यून

•

गहराता कृषि संकट
अंगड़ाई लेता किसान आंदोलन

इन्द्रजीत सिंह

मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में किसान आंदोलन के रूप में फूटे जनाक्रोश के लिए जो कारक जिम्मेदार हैं वे हरियाणा, पंजाब अथवा किसी भी अन्य प्रदेश में भी उतने ही गहरे रूप में मौजूद हैं। पिछले तीन सालों से हरियाणा में अधिकतर मुख्य फसलों की मंडियों में पिटाई हुई है। न्यूनतम समर्थन मूल्यों पर सरकारी एजेंसियों द्वारा खरीद नहीं करने के चलते किसानों की फसलें खास कर धान, सरसों, दालें, बाजरा, कपास इत्यादि औने-पौने भावों पर लूटी गई है। यहां उल्लेख करना जरूरी है कि अनाज, दाल, सब्जी, फल, तिलहन, दूध इत्यादि किसानों से खरीदते समय तो भाव गिरा दिये जाते हैं परंतु ये तमाम उत्पादन उपभोक्ताओं को बहुत महंगे भाव पर खरीदने पड़ते हैं। खाद, बीज, दवाई,तेल आदि की कीमतों में लगातार हो रही वृद्धि के चलते उत्पादन खर्चों में बढ़ोतरी और आमदनी घटने के कारण किसान-खेत मजदूरों पर बैंक व निजी सूदखोरों के कर्जों का बोझ बढ़ता जा रहा है। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण के उपरांत इन पर बढ़ रहे खर्चों के कारण ग्रामीण गरीबों का जीवनयापन बहुत कठिन हो गया है। गत 25 वर्षों से लागू नवउदारीकरण की नीतियों ने कृषि क्षेत्र को गहरे संकट के कगार पर ला छोड़ा है।

कृषि क्षेत्र के लिए बजट आबंटन को घटाते हुए निवेश में लगातार कमी हुई है और सब्सिडी घटाई गई हैं। सच्चाई ये भी है कि कृषि आधारित उद्योग व धनी जमीदार ही बजट में आंबटित सरकारी सब्सीडी वगैरा का मुख्य फायदा ले जाते हैं। कृषि विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों व कृषि विभागों में कई दशकों से नियुक्तियां नहीं की जा रही और इन उपक्रमों की घोर उपेक्षा हो रही है।

गैर कृषि उपयोगों में लिए जाने से कृषि भूमि का रकबा घट रहा है। यह प्रक्रिया किसानों को भूमिहीनता की ओर धकेल रही है। परंतु इसके बदले में रोजगार सृजन नहीं हो रहे हैं। अत्यधिक रसायनिक खादों व दवाइओं के प्रयोग के चलते कृषि भूमि की उपजाऊ क्षमता घटते जाने, भूजल स्तर बहुत नीचे चले जाने और नहरी पानी की कमी जैसे कारणों से उत्पादकता में ठहराव आ गया है।

खेती का पेशा घाटे की तरफ जाते रहने से कर्जदार किसानों के एक हिस्से में जमीन से पीछा छुड़वाने की प्रवृति पैदा हुई है और सरकार खुद इस रूझान को बढ़ावा दे रही है। हरियाणा सरकार ने कार्यकारी आदेश द्वारा किसानों की भूमि ''स्वेच्छा'' से दिए जाने और भूमि पोर्टल बनाने का निर्णय लिया है। इसके तहत जो किसान कम रेट पर भूमि देगा उसकी भूमि पहले खरीदी जाएगी। इस प्रकार 2013 के अधिनियम के तहत बाजार भाव से दोगुना और चार गुना रेट देने और किसानों के हित के अन्य प्रावधानों को तिलांजली दे दी गई है।

जलवायु में आ रहे परिवर्तनों से फसलों की अनिश्चितता बढ़ गई है। सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि, पाला, नकली बीज, कीट व रोग प्रकोप इत्यादि से फसल बर्बादी के मद्देनजर किसानों द्वारा एक किसान हितैषी बीमा योजना की मांग की जा रही थी जिसमें मामूली किश्तों पर सभी फसलों के बीमे की व्यवस्था बजट में किये जाने की जरूरत रेखांकित की जाती रही है। परंतु सरकार द्वारा बनाई गई प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना बारे किसान संगठनों द्वारा प्रकट की गई गंभीर आशंकाएं अब सच साबित हो चुकी हैं। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2016-17 के दौरान निजी कम्पनियों ने प्रीमियम के रूप में कुल 21500 करोड़ रू. बटोरे परंतु फसल खराबी के मुआवजे के तौर पर मात्र 714.14 करोड़ रुपए किसानों को अदा किए जो कि कुल जमा राशि का केवल मात्र 3.31 प्रतिशत बनता है।

पशुपालन और अन्य कई व्यवसाय कृषि के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। हाल के दौर में जब कृषि अवहनीय व्यवसाय होता जा रहा है ऐसे में संकट की स्थिति से कुछ हद तक उबरने के लिए पशु पालन का काम किसान-खेत मजदूरों का एक लाभकारी सहयोगी व्यवसाय हो सकता है। परंतु सरकार की ओर से पशु पालन की घोर उपेक्षा के चलते इस क्षेत्र में भी पशु पालकों को तमाम तरह के शोषण का शिकार बनाया जा रहा है। हरियाणा में दूध उत्पादकों के साथ दूध की खरीद में व्यापक स्तर पर ठगी और बेईमानी हो रही है। डेयरी, पोल्ट्री, मशरूम, भेड़-बकरी, सूअर पालने के धंधों को कोई प्रोत्साहन और समर्थन नहीं दिए जाने से इन धंधों को करने वाले आम लोग शोषण का शिकार हो रहे हैं।

सहकारी प्रणाली को मजबूत करके पशुपालक किसानों को बेहतर मार्किट उपलब्ध करवाने की प्रबल संभावनाएं हैं। भैंस और गायों की भी नस्ल सुधार के मामले में कोई दूरगामी योजनाएं नहीं बनाई जा रही। पशुओं की खरीद-बेच पर हाल में केन्द्र सरकार ने पाबंदी लगाने का जो आदेश जारी किया है उससे पशुपालन का व्यवसाय भी चौपट हो जाएगा। ध्यान रहे कि किसानों की कुल आमदनी में कम से कम 26 प्रतिशत आय पशु पालन से होती है।

आर्थिक बदहाली, कर्जदारी और बेरोजगारी के घोर संकट की अभिव्यक्ति सामाजिक संकट के गहराने में भी देखी जा सकती है। महिलाओं की दशा शोचनीय रूप से खराब हो रही है। युवाओं में नशाखोरी और अपराधीकरण बहुत गहरी समस्या बनती जा रही है। शिक्षा-स्वास्थ्य जैसे सेवा क्षेत्र लोगों को लूटने का जरिया बन चुके हैं। इस प्रकार की जनविरोधी व्यवस्था की मार झेलने वाले ग्रामीण गरीबों में आत्महत्या की प्रवृतियां बढ़ रही हैं।

ग्रामीण गरीबों में एक हिस्सा उन किसानों का भी है जो या तो भूमिहीन हैं या बहुत छोटी जोत के किसान हैं और ठेके अथवा हिस्से पर खेती करते हैं। इनको किसी भी प्रकार का संरक्षण या सुविधा प्राप्त नहीं है क्योंकि सरकारी रिकार्ड में इनको किसान के तौर पर कोई भी मान्यता नहीं दी गई है।

कृषि के काम में महिलाओं की हिस्सेदारी में लगातार वृद्धि हो रही है। घरेलू काम के अलावा पशुपालन का बोझ तो पहले ही महिलाओं पर है। बहुत सारे परिवारों की मुखिया भी महिलाएं हैं। लेकिन एक किसान के रूप में महिलओं की पहचान स्थापित नहीं है। उनके नाम पर जमीन की मल्कियत भी नहीं इसलिए वह कोई भी सुविधा नहीं ले सकती। कृषि संकट का महिलाओं पर और भी प्रतिकूल असर पड़ रहा है। काम के बढ़ते बोझ और पौष्टिक आहार की कमी से उनके स्वास्थ्य में भयंकर गिरावट आ रही है। कृषि में उनकी भूमिका तो बढ़ी पर महिलाओं के साथ तमाम तरह के भेदभावों में कोई कमी नहीं आ रही।

चौतरफा संकट से पैदा होने वाले असंतोष की दिशा भटकाने के उद्देश्य से जातिवादी और साम्प्रदायिक ताकतें विभिन्न तबकों के बीच फूट डालने के खतरनाक खेल में लगी हैं। कहीं जातियों के बीच और कहीं विभिन्न सम्प्रदायों के बीच ध्रुवीकरण किया जा रहा है। गाय के नाम पर भावनाएं भडकाने की राजनीति को सरेआम बढ़ावा मिल रहा है। स्वयंभू गौरक्षक इसकी आड़ लेकर मुसलमानों व दलितों को निशाना बनाकर नफरत और हिंसा फैला रहे हैं। दुधारू गाय खरीदकर ला रहे मेवात के पशुपालक किसान पहलू खान की निर्मम हत्या ऐसा एक शर्मनाक प्रकरण है।

विभिन्न किसान संगठनों की ओर से समय-समय पर कर्जामुक्ति, फसलों के लाभकारी भाव, स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें लागू किए जाने, आवारा पशुओं की समस्या, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की समाप्ति आदि सवालों पर विरोध कार्यवाईयां की जाती रही हैं। परंतु सरकारों की ओर से किसानों की समस्याओं के प्रति घोर संवेदनहीनता का रुख रहा है। इसलिए किसानों के सामने कृषि विरोधी नीतियों के खिलाफ और वैकल्पिक नीतियों के लिए जुझारू आंदोलन के अलावा अब कोई चारा नहीं है।

जहां तक वैकल्पिक नीतियों का सवाल है उनमें दूरगामी व तात्कालिक दोनों तरह के नीतिगत उपाय जरूरी है। सबसे अहम बात कृषि की प्राथमिकता बहाल हो। उसी के अनुरूप कृषि में निवेश बढ़ाया जाए, शोध संस्थानों की उपेक्षा बंद हो, भावों के उतार-चढ़ाव को कार्पोरेट नियंत्रण से निकालकर राज्य के प्रभाव में रखकर उत्पादक व उपभोक्ता के हित में रखा जाए, कर्जा मुक्ति बोर्ड का गठन हो, कृषि के कई कार्यों को मनरेगा के तहत लाया जाए, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के वर्तमान स्वरूप को बदला जाए, आरजी तौर पर सकं ट के प्रभाव को कम करने हेतु स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों को लागू किया जाए।

इस संदर्भ में देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किसान आंदोलन के ताजा उभार को एक आशाजनक संकेत की तरह से देखा जाना चाहिए। प्रदेश स्तरीय आंदोलनों का उभार धीरे-धीरे ही सही परंतु यह एक राष्ट्रीय आकार धारण कर रहा है। भूमि अधिग्रहण कानून 2015 के प्रतिरोध में अनेक किसान-खेतमजदूर संगठनों की ओर से किए गए सांझे संघर्ष की सफलता से भूमि अधिकर आंदोलन के नाम से राष्ट्रीय स्तर के एक व्यापक मंच का निर्माण हुआ। इसी प्रकार अखिल भारतीय किसान संघर्ष तालमेल कमेटी भी ऐसा ही एक और संयुक्त मंच बना।

ये अभूतपूर्व पहलकदमियां अतीत में हुए किसान आंदोलनों से जिन कारणों से भिन्न है वे मुख्यत: इस प्रकार हैं - पहला, व्यक्तिविशेष की बजाय इनका नेतृत्व संगठन कर रहे हैं। दूसरा, इसमें खेतमजदूर संगठन भी शामिल है। तीसरा, यह मुख्य रूप से कर्जा मुक्ति और कृषि उत्पाद के मूल्यों की निश्चितता जैसे मुद्दों पर केन्द्रित हैं। राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय तथा स्थानीय स्तर के सैंकड़ों संगठनों के तालमेल से बने इन संयुक्त मंचों के तत्वाधान में हो रहे संघर्षों को आगे विस्तार दिए जाने की व्यापक संभावनाएं खुल रही है।

आलेख में कुछ अंश किसान सभा के 12वे राज्य सम्मेलन की रिपोर्ट से संपादित किए गए है।

सम्पर्क : 9416495827

•

लघुकथा

मुआवजा

❑प्रदीप नील वशिष्ठ

बाबू ने दराज से गिन कर पांच नोट बाहर निकाले। फिर बहुत ही बेशर्मी से एक नोट अपनी जेब में डाला और बाकी चार किसान के कांपते हाथों में थमा कर अहसान जताने लगा 'लो, पकड़ो मुआवजा। महीने भर से मेरी जान खाए जा रहे हो।'

'मरता क्या न करता, बाबू जी ' किसान की आवाज़ मानो किसी गहरे कुँए से आ रही थी। 'अब इन पैसों से बीज बो लूंगा तो अन्न-पानी का आसरा हो जाएगा।'

'हां भाई, तुम्हें तो मुआवजा मिल गया' बाबू ने एक ठण्डी सांस छोड़ी थी। ' पिछले ही महीने मेरा बेटा मर गया , उसका मुआवजा कौन देगा?'

'वो नीले तंबू वाला देगा न' किसान ने अपने दोनों हाथ आसमान की तरफ उठा दिए थे ।

'खूब कही!' बाबू हंसा 'उसने कोई हमारी तरह मुआवजा देने का ऑफिस थोड़े ही न खोल रखा है।'

किसान ने सीधे उसकी आँखों में झांकते हुए कहा था 'उसके यहां देर जरूर है मगर, अंधेर नहीं। उसने बीच में कोई बाबू थोड़े ही न बैठा रखा है।' यह बोलते न बोलते किसान पीछे हट गया। क्या भरोसा गुस्सैल बाबू उसे घूंसा ही न जड़ दे।

बाबू का हाथ उठा भी मगर सीधे अपनी जेब में गया । वही एक नोट निकाल उसने किसान की तरफ बढाते हुए कहा था 'बाबा, गलती से चार दे बैठा था न ? यह लो , लो , रख भी लो।'

सम्पर्क-9996245222

खुदकुशी के साये में जिन्दगी की बातें

❑परिजात

कृषि संकट और खासतौर से किसान आत्महत्याओं के बारे में काफी कुछ लिखा जा रहा है। सरकारी रिपोर्टें और टीवी अखबार जहां एक ओर किसानों की आत्महत्याओं के आंकड़ों और कारणों पर पर्दा डालने में ही ज्यादातर पन्ने काले कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर सिर्फ आंकड़ों को ही दुरुस्त करने पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है।

इन सबके बीच आत्महत्याओं के साये में जीने को मजबूर महिलाएं इस संकट को कैसे भुगत रही हैं। इस बारे में कम ही पढ़ने-जानने को मिलता है। ऐसे में पंजाब की औरतों पर कृषि संकट के प्रभाव की जांच-पड़ताल करती रंजना पाढ़ी की किताब 'खुदकुशी के साये में जिन्दगी की बातें' उन महिलाओं के हालात से करीब से रूबरू कराती हैं।

पंजाब हरित क्रांति का गढ़ रहा है। हरित क्रांति के विनाशकारी परिणाम जल्दी ही सामने भी आने लगे। आज हरित क्रांति का यह गढ़ खुशहाल खेती से ज्यादा किसान आत्महत्याओं के कारण चर्चा में है।

इस किताब में उन 136 परिवारों की मांओं, पत्नियों का सर्वेक्षण है, जिन्होंने इस संकट के चलते अपने बेटों-पतियों को खो दिया। आत्महत्याओं के ये मर्मस्पर्शी विवरण स्पष्ट करते हैं कि दिल दहला देने वाले ये हादसे राज्य की कृषि नीति द्वारा पैदा हुए संकट का परिणाम हैं। कृषि का आम संकट तथा कर्ज का दानव जो किसानों को अपने खूंखार शिकंजे में कसता जा रहा है, वह चिकित के निजीकरण के चलते और मजबूत हो गया है।

रंजना पाढ़ी हमें संकट से जूझने की हृदयविदारक घटनाओं से रूबरू कराती हैं। ऐसी ही कहानी एक तेरह वर्षीय लड़के की है, जिसने इसलिए खुदकुशी कर ली थी, क्योंकि उसका परिवार उसे स्कूल नहीं भेज सकता था या एक बेटी की कहानी जिसका विवाह पिता की आत्महत्या के बाद दहेज के बिना ही किया गया और ससुराल में रोज-रोज के अपमान से तंग आकर उसने आत्महत्या कर ली। उसकी मां के लिए बच गया तो सिर्फ मृत पति और मृत बेटी का गम।

मुक्तसर जिले की गुरविन्द्र (बदला हुआ नाम) पचास वर्ष की हैं। कर्ज के भारी बोझ और आढ़तिए से तंग आकर 2003 में उनके पति ने कीटनाशक पीकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। अब गुरविंदर कौर अपने दो एकड़ के खेत पर हर तरह का कृषि कार्य करती हैं। हर फसल कटाई के बाद उन्हें 2.5 लाख के कर्ज की किश्तें चुकानी होती हैं। साल में दो बार 20-20 हजार की आमदनी होती है और कर्ज की किश्त चुकाने के बाद ज्यादा कुछ बचता नहीं। वे कहती हैं कि 'मगर मैं अपने बच्चों का हौंसला बनाए रखती हूं। हमारी जीविका दांव पर लगी है, मैं आज भी कर्ज में दबी हूं....मेरा एक बेटा दसवीं क्लास में और दूसरा आठवीं क्लास में है। मगर छोटे किसानों के बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की चिंता किसको है। लोग कहते हैं कि आजकल दसवीं क्लास कुछ नहीं है। मगर मैं जानती हूं कि किस मुश्किल से उसे दसवीं तक लायी हूं...अपने खून पसीने से कर पायी हूं।'

यही हाल आत्महत्याग्रस्त अन्य परिवारों का भी है। ऐसे परिवारों के प्रति सरकारी उपेक्षा के कारण ही ज्यादातर परिवार मौत के सदमे के बावजूद कड़ी मेहनत कर कर्ज की किश्तें चुका रहे हैं और अपनी रोजी-रोटी का एकमात्र जरिया, अपनी जमीनें बेचने को मजबूर हैं।

किसान की खासियत है कि इसमें तथ्यों और आंकड़ों को प्रमुखता से रखा गया है। आंकड़ें खुद ही इस संकट की विकरालता को बोलते नजर आते हैं।

किताब की भूमिका में रंजना पाढ़ी लिखती हैं 'खुदकुशी तो एक ज्यादा गहरे रोग का लक्षण भर है। रोग यह है कि पूरे कृषक समुदाय का गैर-कृषिकरण किया जा रहा है। आज तक दर्ज ढाई लाख से ज्यादा किसानों की आत्महत्याएं लाखों अन्य किसानों, खासकर खेतिहर मजदूरों की सच्चाई को उजागर करती हैं जो इस देश में तबाही के कगार पर हैं। किसान आत्महत्याओं के लगभग सारे अध्ययनों और समाचारों में खेतिहर मजदूरों द्वारा आत्महत्या के मामले शामिल नहीं किए जाते हैं। उदाहरण के लिए पंजाब के भटिंडा और संगरूर जिलों में कुल 2890 आत्महत्याएं दर्ज की गयी हैं, इनमें से 61 प्रतिशत किसान और 39 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे।'

यह किताब आर्थिक मसलों से आगे बढ़कर सामाजिक परिवेश में घुसने का प्रयास करती है और जातिगत तथा सामुदायिक पहचान के कारण अतिरिक्त बोझ और संकट की भी जांच-पड़ताल करती है। बुरी तरह आर्थिक तंगी झेलने के बावजूद जाट-सिख समुदाय की गुरविन्द्र कौर कहती है 'किसी और के खेत में खेती का काम करने की हमें मनाही है। हम सिर्फ अपने खेत में कपास चुनने का काम कर सकते हैं, चाहे हमारे पास एक-दो एकड़ जमीन है, हम हैं तो जमींदार, मजदूर नहीं।' जमीन बड़े किसानों को बेच देने की बात पर वह कहती हैं कि 'मगर ऐसा हुआ तो सब कुछ खत्म हो जाएगा। कोई मेरे बेटों से शादी नहीं करेगा।'

इसी तरह दहेज के लिए कर्ज लेना आज भी बदस्तूर जारी है। मुक्तसर जिले के गिदड़बाहा ब्लाक के अन्य जाट-सिख परिवार में तेज कौर के पति और पति के भाई ने 1999 में आत्महत्या कर ली थी, अमरीकन बोलवर्म (फसल में लगने वाला कीड़ा) ने फसल को लगभग पूरी तरह से नष्ट कर दिया था। पति के सिर पर 9 लाख से ज्यादा कर्ज चढ़ गया था। अपनी पूरी 10 एकड़ जमीन बेचकर भी वह कर्ज नहीं चुका पाया था। अकेली रह जाने के बाद आज तेज कौर मवेशी पालकर 1500 रुपए महीना कमाती है। 2006 में अपनी बेटी

की शादी के लिए उन्हें एक बार फिर डेढ़ लाख रुपए कर्ज लेना पड़ा था। वे आज भी कर्ज चुका रही हैं। यह सिर्फ एक घर की बात नहीं। संकट की शिकार भटिंडा जिले की एक अन्य महिला ने बताया कि 'मेरे देवर ने पैसे की कमी के कारण शादी ही नहीं की। यहां हर घर में ऐसी समस्या है।'

दहेज की कुप्रथा के बारे में लेखिका का कहना है कि 'हरित क्रांति के सरप्लस (अधिशेष) ने पंजाब के भूस्वामी किसानों के लिए यह संभव कर दिया कि वे शादी का तड़क-भड़क पूर्ण जश्न मनाएं। सत्तर के दशक में शादी के आलीशान जश्न और दहेज पंजाब में कुख्यात हो गए। सजावट, बड़े-बड़े पंडाल, दावतें, महंगे तोहफे वगैरह सब अपनी नव-अर्जित सम्पदा की नुमाइश के साधन बन गए। बड़े और मझोले किसानों को इस दिखावटी शान की नकल कुछ हद तक छोटे किसानों ने भी शुरू कर दी। हरित क्रांति से उत्पन्न खुशहाली इतनी ज्यादा थी कि बढ़ती लागत के बावजूद नए कर्ज काफी विश्वास के साथ लिए-दिए जा रहे थे। अलबत्ता जब प्रति एकड़ उपज घटने लगी तो यह खुशफहमी ज्यादा दिनों तक जारी नहीं रही।'

हरित क्रांति खुशहाली के साथ-साथ बीमारियां लेकर भी आयी। रसायनों और कीटनाशकों के बेइन्तहा उपयोग से न सिर्फ मिट्टी, हवा और भूजल स्थायी रूप से दूषित हो गए, बल्कि इस सबका परिणाम कैंसर के प्रकोप के रूप में सामने आया। भटिंडा एक्सप्रेस आज 'कैंसर एक्सप्रेस' के नाम से कुख्यात है। सैंकड़ों लोग रोजाना इस ट्रेन में सवार होकर बीकानेर, राजस्थान से आचार्य तुलसी क्षेत्रीय कैंसर उपचार व अनुसंधान केंद्र में मुफ्त उपचार तथा जांच के लिए जाते हैं।

ये हमारे समाज की वे तस्वीरें हैं, जिन्हें स्वर्णिम भारत के नकाब के पीछे छिपाया जाता है। रंजना पाढ़ी की यह किताब इस नकाब को उलट कर समाज की सच्चाई को सामने लाती है। इस उम्मीद के साथ कि हालात को बदला जा सकता है।

सम्पर्कः 8527181830

साभार = किसान फरवरी 2016

कथा

टूटे अरमान की, व्यथा-कथा किसान की

❑अरुण कुमार कैहरबा

खेत में खड़ा मूंछों वाला किसान ताव से नहीं तनाव से जूझ रहा है। आसमान की ओर निहारता अपने खुदा से बूझ रहा है। वह क्या करे, उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा है। जीरी बोने से पहले लिया गया कर्ज अभी देना है। तूफानों में ही जीवन की किश्ती को खेना है। बेटा खेत से कटी जीरी लेकर गया था मंडी। मंडी भी उसके सिर पर खड़ी बन चंडी। मंडी तो पहले ही अनाज से भरी है। व्यापारी का कहना-अभी जीरी हरी है। बेटे ने फोन पर बाप को समझाया है। मंडी की समस्याओं को विस्तार से बताया है। मंडी में जहां देखो जीरी के ढ़ेर हैं। खेतों के शेर कृषक यहां हुए ढ़ेर हैं। किसानों को यहां कोई पूछता नहीं है। ऐसे में मुझे तो कुछ सूझता नहीं है। मिली भगत हो चुकी है सारे इंतजामों में। औने-पौने दामों में जीरी जाएगी गोदामों में। व्यापारी, सरकारी अधिकारी मालामाल है। लूटने किसान को सभी ने बुना जाल है। मंडी में है धांधली किसान कंगाल है। खेतों का सोना यहां माटी का माल है।

बेटे की बात सुन बाप परेशान है। अन्नदाता होकर किसान परेशान है। पसीना बहाकर उगाया जो धान है। कहीं भी ना उसका मान-सम्मान है। अपने मुंह मिट्ठू चलता जो गान है। झूठा ही निकला सरकार का बयान है। किसान को सहारा देने सरकार नहीं आई है। बेसहारा पाकर उसने बीड़ी ही उठाई है। होठों में फंसाकर उसने माचिस जलाई है। अग्नि की आंच में बीड़ी सुलगाई है। अंधियारे में बीड़ी से रोशनी मिली ना। अंदर-बाहर सब जगह दिखता धुआं ही धूआं। खेत देख उसे अगली फसल की चिंता सताने लगी। खेत में बिखरी जीरी की पुआल तिलमिलाने लगी। उसने उठाई दियासलाई और पुआल में भी आग लगाई। पुआल धू-धू कर जलने लगी। हर जगह आग फूलने-फलने लगी। बीड़ी का धूआं पुआल के धूएं से जा मिला। आग और धूएं का चल पड़ा सिलसिला। मिट्टी की उर्वरता जली और जले सब कीट। क्या-क्या जला? वो दिल क्या जानें जो बने कंकरीट।

कंबाइन का मालिक जब लेने आया अपना मेहनताना। पैसे मांगते हुए ही उसने मारा किसान को ताना। क्या भाई मंगत दो दिन होगे, तुमने ना ली सुध। सोमवार को जीरी कटी थी आज हो गया बुध। मूछों वाला मंगत बोला अपनी मूंछ झुकाए। घाटे का सौदा है खेती, क्या कमाए-क्या खाए। दो दिन से बेटा मंडी में पड़ा है डेरा जमाए। जीरी की ढ़ेरी की रक्षा में कैसे आंख लगाए। मैं भी हूं बीमार कभी से कैसे हाथ बंटाऊं। बेटे के ऊपर सब छोड़ा मंडी कैसे जाऊं। कितनी मेहनत से किसान करता है मिट्टी तैयार। पानी देकर तिनका-तिनका पौध रोपना बड़ा दुश्वार। समय-समय पर हटानी होती है खरपतवार। खाद, पानी देकर कैसे मेहनत करता कृषक परिवार। मेहनत किसान की कभी ना जानें बाबू लोग सरकारी। ढ़ेरी पास पहुंच कर नखरे करते हैं अधिकारी।

फसल बिकेगी मंडी में तो कंबाइन के पैसे दूंगा। घर में भी तंगी है छाई ऐसे पैसे कैसे दूंगा। धान उठाने को पहले भी कर्ज उठाया था। ऐसा लगता है जैसे कोई मर्ज उठाया था। मेरे अरमानों का ढ़ेर लगा है मंडी में। उस पर भी काले गिद्ध मंडराते दिखते मंडी में। बेटा अरमानों की रक्षा करने को जूझ रहा। क्या होगा, कैसे होगा कुछ नहीं सूझ रहा। सिर झटकाए जाते बोले कंबाइन वाले दादा। मंगत तेरा ठीक नहीं मुझको दिखता है इरादा। बेटी ने आकर पीछे से मंगत को ये बताया-भूरी भैंस भाग गई उसने खूंटा तुड़वाया। उसे पकड़ने की सब कोशिश मेरी हुई बेकार। पहले इधर-उधर वो भागी फिर गई नहर के पार। मंगत राम ने हाथ अपने माथे पर दे मारे। आखिर क्या खोट करम में थी, क्यों भाग फूटे हमारे। बीमारी में भैंस पकड़ने भागा मंगत राम। मेहनत करके भी किसान को मिलता नहीं आराम। ●

सम्पर्क-09466220145

❒फौजी मेहर सिंह

मैं कदकी रूक्के दे रही तूं रोटी खा लिए हाळी
दिन ढळज्या जब फेर खेत नै बाह लिए हाळी

बोल दिये जब बोल्या कोन्या दे लिए बोल हजार मनैं
रोटी पाणी भर्‌या छाबड़ा मुश्किल तार्‌या न्यार मनैं
बारा बज कै दो बजग्ये जाण नै हो सै वार मनैं
सारे पड़ोसी जा लिए ईब तूं भी चालिए हाळी

एक मील तैं रोटी ले कै बड़ी मुश्किल तैं आई मैं
हाळी गेल्यां ब्याह करवा कै बहोत घणी दु:ख पाई मैं
मत रेते बीच रळावे पिया पन्नेदार मिठाई मैं
तेरे मरते बैल तिसाये तूं पाणी प्या लिए हाळी

बैठ आम कै नीचै पिया मैं तेरी सेवा कर द्यूंगी
मिट्ठी-मिट्ठी बातां तै तेरा सारा पेटा भर द्यूंगी
मनैं जी तैं प्यारा लागै सै मैं गात तोड़ कै धर द्यूंगी
तेरी हूर खड़ी मटकै सै तूं गळ कै ला लिए हाळी

गरमी पड़ती लू चालै सैं पड़ै कसाई घाम किसा
दोफारी म्हं भी टिकता कोन्या जुल्मी सै तेरा चाम किसा
फूंक दिया सै गात मेरा जुल्मी सै यो राम किसा
तूं मेहर सिंह की सीख रागनी गा लिए हाळी

•

❒दयाचन्द मायना

हाय-हाय रै जमींदारा, मेरा गात चीर दिया सारा
ईख तेरे पात्तां नै,
तुमसे ज्यादा हम चिरगे, गोरी देख म्हारे हाथां नै

कदे धूप कदे छां आज्या, हाय जान मरण के म्हां आज्या
कदे झाड़ा मैं पां आज्या, दे फोड़ कती लातां नै

जूड़ा हलाकै जहरी छिड़गे, मुंह पै कई तत्तैये लड़गे
बीर मर्द भीतर नै बड़गे, बचा-बचा गातां नै

किस्मत आळा हर्फ दीखग्या, खतरा चारों तरफ दीखग्या
एक लटकता का सर्प दीखग्या, बचा लिया दाता नै

सुर गैल सरस्वती वर दे सै, अकल तै मेहनत कर दे सै
'दयाचन्द' छन्द धर दे सै, चौपड़-चौपड़ बातां नै

•

❒मंगतराम शास्त्री

अन्नदाता सुण मेरी बात

अन्नदाता सुण मेरी बात तूं हांग्गा ला कै दे रुक्का।
सारे जग का पेट भरै तूं फेर भी क्यूं रहज्या भुक्खा।।

माट्टी गेल्यां माट्टी हो तेरा गात खेत म्हं गळज्या रै
सारी उम्र कमाकै मरज्या तेरी ज्यान रेत म्हं रुळज्या रै
स्याणा सपटा भुका सिखा तेरी घरवाळी नै छळज्या रै
पशु गेल तूं रहै पशु पर दूध ढोल म्हं घलज्या रै
टिण्डी घी लस्सी भी जा लिये बचग्या टूक तेरा लुक्खा।

तेरे हिस्से जो किल्ले थे वें बंटग्ये बीघे क्यारां म्हं
कुणबा बढता जार्‌या धरती घटती जा बंटवार्‌यां म्हं
ब्याहवण के तेरे बाळक हो लिये माच्चै खैड़ कुवार्‌यां म्हं
कोए सगाई आळा भी ना आंदा तेरे दुआर्‌यां म्हं
तूं मारै तीर बिटोड़े म्हं जो लगज्या तीर नहीं तक्का।

ठेक्के पै धरती लेवै तूं तेल जळा पाणी लावै
खाद बीज लेवण जावै तनै लांबी लैन लगी पावै
रोळा करै पिटै डण्ड्यां तै थाणे म्हं परची थ्यावै
स्टोर आळा भी खाद बीज की गेल दवाई पकड़ावै
मंहगे भा तनै पड़ै बिसाह्णा रहज्या मार सबर मुक्का।

पाणी भरज्या फसल उगळज्या सुक्खे म्हं तेरा धान मरै
अकाळ पड़ो महामारी आओ पहलम झटक किसान मरै
जेठ तपो चाहे पोह् का पाळा सारी साल बिरान मरै
फेर काळे खाग्गड़ फसल चाटज्यां बेबस हो परेशान मरै
रोम रोम तेरा बिंध्या करज म्हं तनै मारै बाढ कदे सुक्खा ।

करजा माफ करावण नै तूं जब सड़कां पै आवै रै
करज माफ हो कम्पनियां का तनै लाट्ठी गोळी थ्यावै रै
हाथ जोड़ जिनै बोट लिये थे वो तनै आँख दिखावै रै
फेर चौगरदे तै घिरै जाळ म्हं ना तेरी पार बसावै रै
हो लाचार घालज्या फांसी तूं घड़ी का करै घड़ुक्का।

जोणसे नोहरे बैठक सैं तेरे आढ़तियां की मेहर टिके
जोणसे खूड तेरै बच रे सब बैंक लिमिट कै नाम बिके
सारा साम्मा सुदां ट्रैक्टर सब किस्तां पै तेरा दिखे
बिन रुजगार तेरे बाळक न्यूं फिरैं भरमते पढ़े लिखे
खड़या कूण म्हं तरसै सै बिन भाईयां तेरा चिलम हुक्का।

एक्का कर तनै लड़णा होगा और नहीं कोए चारा सै
जो तेरी साथ चलै मिल कै ओ असली भाई चारा सै
जात धरम का नकली नारा तनै राक्खै न्यारा न्यारा सै
बिन बैरी के जाणें और बिन बोल्लें नहीं गुजारा सै
सुण मंगतराम तेरा दुखड़ा मेरा भी हुया मथन रुक्खा। •

❑ज्ञानीराम शास्त्री

कात्तक बदी अमावस आई, दिन था खास दिवाळी का
आंख्यां के म्हां आंसू आग्ये, घर देख्या जब हाळी का

सभी पड़ौसी बाळकां खातर, खील-खेलणे ल्यावैं थे
दो बाळक देहळियां म्हं बैठे, उनकी तरफ लखावैं थे
जळी रात की बची खीचड़ी, घोळ सीत म्हं खावैं थे
आंख मूंद दो कुत्ते बैठे, भूखे कान हिलावैं थे
एक बखोरा, एक कटोरा, काम नहीं था थाळी का

किते बणै थी खीर किते हलवे की खुशबू ऊठ रही
हाळी की बहू एक कूण म्हं, खड़ी बाजरा कूट रही
हाळी नै एक खाट बिछाई, पैंद थी जिसकी टूट रही
होक्का भरकै बैठ गया वा, चिलम तळै तै फूट रही
चक्की धोरै डन्डूक पड़्या था, जर लाग्या फाळी का

दोनों बाळक आशा करकै, अपणी मां कै पास गए
मां धोरै बिल पेश कर्‌या, फेर पूरी ला कै आस गए
थारे बाप के जी नै रोल्यो, सो जिसके थाम नास गए
माता की सुण बात बाळक फेर, फट बाब्बू कै पास गए
इतणी सुणकै बाहर लिकड़ग्या, वो पति कमाणे आळी का

तावळ करकै गया सेठ कै, कुछ भी सौदा ना थ्याया
भूखा प्यासा गरीब बेचारा, बहोत घणा दुख पाया
के आई करड़ाई सिर पै, मन म्हं न्यूं घबराया
हाळी घर नै छोड़ डिगरग्या, फेर बोहड़ कै ना आया
ज्ञानीराम कहै चमन उजड़ग्या, पता चाल्या ना माळी का

•

❑सत्यवीर नाहड़िया

दब्या करज म्ह अन्नदाता इब किस्त जावै ना पाड़ी
घाटे का यो सौदा होग्या इब खेती अर बाड़ी

बखत पुराणा नहीं रह्या इब हाल बदलग्या सारा
टेम गया वो नेम गया वो बदलग्या ईब नजारा
धरती थोड़ी माणस ज्यादा क्यूकर हुवै गुजारा
रही सही जो कसर बची तो मंहगाई नै मार्‌या
अन्नदाता का बैठ्या ढारा काया हुई उघाड़ी

जमींदार की किस्मत माड़ी ना चलै तीर अर तुक्का
कदे लूट ले बाढ़ रै भाई कदे मारज्या सुक्का
उसकी कोई सुणता कोन्या बहोत दे दिया रुक्का
अन्नदाता कहलावै सै पर खुद बैठ्या सै भुक्खा
गंडा सै यो सबनै चुक्खा ना कोई उसका वाड़ी

माट्टी के संग माट्टी होज्या जिब हों सै दो दाणे
भात अर छूछक वाणे टेले सारे फरज निभाणे
नाज बेचकै काम हुवै सब टाबर टीकर ब्याहणे
कबै कोठड़ी पड़ै बणाणी बाळक साथ पढ़ाणे
खेतां कै म्हां आज्या ठाणे वै साहूकार अनाड़ी

मंहगे होग्ये खाद बीज इब मंहगी खेती क्यारी
खेतां म्हं होटल उग्गैं इब तंगी बढ़ती जारी
कुछ नै बेची धरती अपणी अर कुछ कररे सैं त्यारी
पड़ै मुराड़ बीजळी पै किते होर्‌या पाणी खारी
कह नाहड़िया साच्ची सारी रहणे लगे रिवाड़ी

सम्पर्क - 9416711141

....लुटी ज्यब खेत्ती बाड़ी

❑सत्यवीर 'नाहड़िया'

1

माट्टी म्हं माट्टी हुवै, जमींदार हालात।
करजा ले निपटांवता, ब्याह्-छूछक अर भात।
ब्याह्-छूछक अर भात, रात-दिन घणा कमावै।
मांह् -पौह् की बी रात, खेत म्हं खड़ा बितावै।
खाद-बीज का मोल, सदा हे ठावै टाट्टी।
अनदात्ता बेहाल, पिटै चोगरदे माट्टी।।

2

खरचा लग लिकड़ै नहीं, खेत्ती का यो हाल।
करजा बढ़ता हे रहै, चूंट बगावै खाल।
चूंट बगावै खाल, दाळ म्हं कोन्यी काळा।
काळी पूरी दाळ, हुया न्यूं मोट्टा चाळा।
बोट बैंक पै ध्यान, करैं ना असली चरचा।
समाधान की बात, घटाओ उसका खरचा।।

3

करजा भारी बोझ सै, के-के करूं बखान।
चोगरदे तै सै घिरा, करजे बीच किसान।
करजे बीच किसान, ध्यान ना कोये देत्ता।
बोट बैंक यो खास, पूजता न्यूं हर नेत्ता।
जै वो हो खुशहाल, हुवै खुश सारी परजा।
करो काम वै खास, चढ़ै ना उसकै करजा।।

4

सदा कमावै वो घणा, करै खेत अर क्यार।
सूक्खे-ओळे बाढ़ तै, मान्नै कोन्या हार।
मान्नै कोन्या हार, त्यार वो आग्गै पात्ता।
दाणे नै मोहताज, आज पावै अनदात्ता।
नाहड़िया कबिराय, रेत नै सोन बणावै।
हो माट्टी म्हं रेत, खेत म्हं सदा कमावै।।

5

खेत्ती ना आसान इब, खेत्ती टेढ़ी खीर।
खेत्ती काढ़ै ज्यान सै, खेत्ती इब सै पीर,
खेत्ती इब सै पीर, चीर कै धरती सीन्ना,
जमींदार का देख, सूकता नहीं पसीन्ना।
नाहड़िया कबिराय, गात नै करकै रेत्ती।
छह रुत बारा मास, खड़ी ड्यूटी सै खेत्ती।।

6

खेत्ती बाड़ी इब हुयी, घाट्टे आळी कार।
बीज खाद महँगे हुये, मौस्सम करता मार।
मौस्सम करता मार, तार ल्ये खाल कसूत्ती।
सूक्खा ओळा बाढ़, तोड़ द्ये बाक्की जूत्ती।
नाहड़िया कबिराय, किसानी हालत माड़ी।
देण लगे वै ज्यान, लुटी ज्यब खेत्तीबाड़ी।। •

वर्तमान कृषि संकट और किसान आन्दोलन

▢ओ. पी. सुथार

सिरसा में अखिल भारतीय किसान सभा के 34 वे राष्ट्रीय सम्मेलन तैयारी के लिए स्वागत समिति के गठन के अवसर पर 'युवक साहित्य सदन' के सभागार में 'वर्तमान कृषि संकट और किसान आन्दोलन' विषय पर सेमिनार किया गया। इसकी अध्यक्षता किसान सभा के जिला प्रधान सुरजीत सिंह, जसवन्त सिंह पटवारी,पूर्व सरपंच गुलजारी लाल ढाका व नछत्र सिंह पूर्व सरपंच ने सयुंक्त रूप से की। मुख्य वक्ता की हैसियत से बोलते हुए प्लांट पैथोलोजी के माहिर व अखिल भारतीय किसान सभा के राज्य उपाध्यक्ष डा.इन्द्रजीत सिंह थे। सेमिनार में किसानों के अतिरिक्त खेत मजदूर, कर्मचारी व समाज प्रबुद्ध नागरिकों ने हिस्सेदारी की। इस अवसर पर डा. सुभाष चन्द्र द्वारा लिखित पुस्तक 'शहीद उधम सिंह की आत्मकथा और चुनिंदा दस्तावेज' का विमोचन किया गया।

वर्तमान कृषि संकट के लिए राजनैतिक कारण जिम्मेवार न कि प्राकृतिक कारण। हरियाणा में कृषि संकट और किसानों की हालत दिन प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही है! किसानों इस हालत के लिए नवउदारीकरण की दिवालिया नीतियां ही जिम्मेवार है जिसे 1990 के दशक में कांग्रेस ने लागू किया और अब भाजपा सरकार इन नीतियों को बड़े जोर शोर से लागू करती हुई आगे बढा रही है। इन्ही नीतियों के परिणामस्वरूप हरियाणा मे कृषि संकट दिनों दिन बढता जा रहा है, यंहा अन्य प्रदेशों की तरह किसान आत्महत्या कर रहे है।

डा. इन्द्रजीत ने कृषि विशेषज्ञों की रिपोर्ट का हवाला देते कहा कि हरियाणा में एक एकड़ में नरमा उत्पादन करने के लिए 35663 रू की लागत आती है और आमदन होती है -- 26544 रू की , इसी तरह से एक एकड़ में धान की उत्पादन लागत 48017 रूपये है और आमदन होती है 47043 रूपये की! इस तरह यहां के किसानों को दोनों फसलों के उत्पादन करने में हजारों रुपयों का घाटा उठाना पड़ता है !

केन्द्र सरकार द्वारा इन दोनों फसलों का समर्थन मूल्य उत्पादन लागत को ही पूरा नही करता। भारतीय कृषि संकट को समझाते हुए कहा कि वर्ष 1947 से 1965 तक यहां ज्यादा पैदावार नही होती थी अनाज का विदेशों से शर्तो के आधार पर आयात करना पड़ता था। अमेरीकन गेहूं पर आयात पर अमेरीका ने भी अनेक शर्तें थोंपी थीं।

दूसरे चरण (65 से 85)जो कि हरित क्रांति था, फसलों का उत्पादन बढ़ा किसानों की हालात में कुछ सुधार नजर आने लगा, कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकी का चलन बढा और उत्पादन के तौर तरीके भी बदले लेकिन कुछ समय उपरान्त फसलों के उत्पादन में ठहराव आ गया।

तीसरे चरण 1990 - 91 के बाद उदारीकरण के दौर में सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव कृषि व अन्य क्षेत्रों पर पड़ा। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की शर्तों के तहत कृषि क्षेत्र की सब्सिडी में कटौती की गई और खाद के कारखाने बन्द कर दिए गये। परिणामस्वरूप कृषि से संबंधित वस्तुओं का आयात बढा और मात्रात्मक प्रतिबंध हटा दिए गए।

आर्थिक सुधार के नाम पर आर्थिक संकट संकट बढा परिणाम स्वरूप गैरबराबरी बढ गई, देश की 58 प्रतिशत धन दौलत पर 1 प्रतिशत परिवार ही काबिज है।

कांग्रेस की बदनाम आर्थिक नीतियों को भाजपा ने तीव्र गति प्रदान की, हर मेहनतकश तबका उदारीकरण से प्रभावित है और पूरे देश को कार्पोरेटस द्वारा लूटने के लिए खुला छोड़ दिया। खाद बीज व स्प्रे पर नीजि कम्पनियों का कब्जा है।

डा; सिंह ने प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को कटघरे में खड़ा करते हुए कहा कि हरियाणा मे नीजि कम्पनियों 25000 करोड़ रूपये बीमा के नाम पर एकत्रित किए और 7000 करोड़ रुपये मुआवजा स्वरूप किसानों को बांटे है।

हरियाणा में 60 प्रतिशत से ज्यादा लोग कृषि पर निर्भर है इसलिए ऐसी नीतियां खेती पर नही चल सकती।

हरियाणा में भी किसानों के बीच भूमि के आधार पर वर्गीकरण मौजूद है! हरियाणा की सांख्यायिकी 2010-11 के आकड़ों के आधार पर 2 हैक्टेयर से कम वाले 67.58 प्रतिशत काश्तकारों के पास केवल 22.58 प्रतिशत कृषि भूमि का हिस्सा है। 2 से 5 हैक्टेयर वाले मध्यम दर्जे के 21. 93 प्रतिशत के पास 31.11 प्रतिशत भूमि है। 5 से 10 हैक्टेयर व 10 से अधिक भूमि वाले 11.77 प्रतिशत काश्तकारों के पास कुल कृषि भूमि का 46. 31 प्रतिशत हिस्सा है। डा. इन्द्र जीत सिंह ने कहा इन आंकड़ों से साफ जाहिर होता है कि नव-उदारीकरण की नीतियों के चलते हुए गत 20-25 वर्षों के दौरान जो प्रभाव पड़े हैं उनसे छोटे और भूमिहीन किसान सबसे गहरे रूप से प्रभावित हुए हैं।

आने वाले दौर में विभिन्न किसान खेत मजदूर संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और विभिन्न धाराओं की ट्रेड यूनियनों तथा जन संगठनों को किसान आन्दोलन के नजदीक लाना होगा। इसलिए किसान सभा को स्वतन्त्र तौर पर संघर्ष के मोर्चे खोलने होंगे।

इस सेमिनार मे उपस्थित जनों को सुरजीत सिंह, राजकुमार शेखुपुरिया, राजेन्द्र बालासर व डा.गुरचरण सिंह ने भी सम्बोधित किया। कार्यक्रम के अन्तिम स्तर मे किसानों, मजदूरों , कर्मचारियों व समाज के प्रबुद्ध नागरिकों को मिलाकर 81 सदस्यों की स्वागत समिति का गठन किया गया। सर्वसम्मति से जसवंत पटवारी को अध्यक्ष, कृपाशंकर त्रिपाठी को कोषाध्यक्ष व राजेन्द्र बालासर को सचिव चुना गया।

कृषि और महिलाएं

□अंजू

हमारा प्रदेश कृषि प्रधान है। प्रदेश की जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा कृषि के कार्य में संलग्न है। यहां के निवासियों की आजीविका का मुख्य साधन कृषि होने के कारण हमारी अर्थव्यवस्था में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

कृषि के कार्य में औरत और पुरुष की दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। कृषि के बारे में हम जब विस्तार से जानने की कोशिश करते हैं, तो हम पाते हैं कि प्राचीन काल में सबसे पहले किसी स्त्री द्वारा ही अपनी झोपड़ी के पास उगे हुए दानों को इकट्ठा किया गया होगा और यह अंदाजा लगाया जाता है कि सबसे पहले दानों की बिजाई का काम औरत द्वारा ही प्रारंभ किया गया। यही वजह है कि परम्परागत रूप से महिलाओं ने हमेशा ही कृषि के क्षेत्र में महत्ती व विविध भूमिकाएं निभाई हैं। फिर वो चाहे किसान, सम-किसान, पारिवारिक, मजदूर, दिहाड़ी मजदूर या फिर प्रबंध के रूप में।

हमारा समाज आज भी पुरुष प्रधान सोच का निर्वाह कर रहा है, जिसके चलते पुरुष दोनों में पुरुष को सर्वोपरि माना गया है। पुरुष द्वारा किए जाने वाले छोटे से छोटे काम को महत्व दिया जाता है और महिला द्वारा किए जाने वाले कामों को सिर्फ उसके कर्त्तव्य के रूप में देखा जाता है। कृषि क्षेत्र में इसका प्रभाव साफ दिखाई देता है, क्योंकि कृषि क्षेत्र में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले ज्यादातर काम अवैतनिक हैं या फिर काम के बदले बहुत कम मेहनताना मिलता है।

कृषि के कार्य में लगभग 78 प्रतिशत महिलाएं लगी हुई हैं, लेकिन पितृसत्तात्मक सोच के चलते कृषि क्षेत्र में महिलाओं और पुरुषों के कार्यों को लेकर प्रमुख रूप से शारीरिक श्रम संबंधी काम औरतों और मशीनों से संबंधित व भारवाही पशुओं की सहायता से किए जाने वाले काम सामान्यत: पुरुषों के द्वारा ही किए जाते हैं। कृषि से जुड़ी हुई गतिविधियां में पुरुषों द्वारा हल जोतना, सिंचाई, बोआई, समतलन और महिलाओं द्वारा निराई, ओसाई, प्रतिरोपित आदि काम किए जाते हैं। पुरुष द्वारा किए जाने वाले कृषि कार्य के बदले मजदूरी ज्यादा मिलती है और महिला द्वारा किए जाने वाले उसी काम के बदले मजदूरी कम मिलती है।

आधुनिकीकरण के कारण वर्तमान में कृषि कार्य ज्यादातर मशीनों द्वारा किए जाने लगे और मशीनों पर एक तरह से एकाधिकार पुरुषों का ही बना हुआ है। अपवाद के तौर पर शायद एकाध ही मशीन औरत द्वारा संचालित की जा रही होगी। एक तरह से इस मशीनी प्रक्रिया से कृषि कार्य में मशीनों के प्रयोग से महिलाओं को कोई सार्थक मदद नहीं हो पा रही है, क्योंकि महिलाओं द्वारा आज भी परम्परागत रूप से ही कार्य किए जा रहे हैं।

वर्तमान समय में कृषि के कार्य में पुरुष 32.47 प्रतिशत जबकि महिला 47.67 प्रतिशत संलग्न हैं और कृषक मजदूर के रूप में पुरुष 12.55 प्रतिशत और महिला 21.10 प्रतिशत संलग्न है। महिलाएं बड़े पैमाने पर खेत में काम कर रही हैं, परन्तु न जमीन पर उसका अधिकार होता है और न ही उसको अभी तक पूर्ण किसान का दर्जा मिल पाया है। औरत पुरुष के बराबर काम करती है, लेकिन पैदावार से संबंधित निर्णयों में भी उसको शामिल नहीं किया जाता है। महिला के नाम जमीन का मालिकाना हक न होने के कारण सरकार द्वारा कृषि से संबंधित ऋण, सुविधाएं आदि भी नहीं मिल पाती हैं।

महिलाओं द्वारा कृषि से जुड़े हुए कार्य एक खास शारीरिक मुद्रा में किए जाते हैं, जिससे उन्हें कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कृषि मजदूर के रूप में महिलाओं को काम करते हुए कार्य स्थल पर कई बार मानसिक, शारीरिक और यौन-उत्पीड़न का भी शिकार होना पड़ता है। इस उत्पीड़न का शिकार ज्यादातर दलित महिलाएं होती हैं। आजीविका का कोई अन्य साधन न होने की वजह से उन्हें उत्पीड़न को चुपचाप सहन करना पड़ता है।

महंगाई और बेरोजगारी के कारण गांव से शहर की तरफ पलायन हो रहा है। जब पुरुष काम की तलाश में शहर जाते हैं, तो वे अपने पीछे कृषि कार्य को महिलाओं के जिम्मे छोड़ देते हैं, जिसे महिलाएं बड़े अच्छे ढंग से उस जिम्मेदारी को निभाती हैं। परन्तु महिलाओं की मंडियों से दूरी बनी हुई है और फसल की खरीद-फरोख्त को उनके हिस्से का काम ही नहीं माना जाता है। यही वजह है कि सरकार द्वारा कृषि से संबंधित कार्यक्रमों के केंद्र में भी पुरुष ही रहता है जैसे शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर, सूचनाएं, कार्यशालाएं, सेमिनार, विचार गोष्ठियां आदि।

महिलाएं बड़े पैमाने पर खेत में काम कर रही हैं, परन्तु न जमीन पर उसका अधिकार होता है और न ही उसको अभी तक पूर्ण किसान का दर्जा मिल पाया है। औरत पुरुष के बराबर काम करती है, लेकिन पैदावार से संबंधित निर्णयों में भी उसको शामिल नहीं किया जाता है। महिला के नाम जमीन का मालिकाना हक न होने के कारण सरकार द्वारा कृषि से संबंधित ऋण, सुविधाएं आदि भी नहीं मिल पाती हैं।

महिलाओं को कृषि के कार्य में पुरुष के बराबर का हिस्सा बनाना होगा। सबसे महत्वपूर्ण है काम है महिलाओं को किसान का दर्जा देना और उन्हें भी जमीन का मालिकाना हक प्रदान करना। कृषि कार्य से संबंधित तमाम कार्यक्रमों में उन्हें प्रमुख रूप से शामिल करने के लिए विशेष तरह की पहलकदमियां करनी होंगी। सरकार द्वारा महिलाओं को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष कार्यक्रम चलना और कृषि नीति में महिलाओं के योगदान को विशेष रूप से रेखांकित किया है।

सम्पर्क : शोधार्थी, इतिहास विभाग, आई.जी. यूनिवर्सिटी, मीरपुर, रेवाड़ी मो.- 9467094690

बीजो न इब बाजरी, बीजो हिवड़े आग

▫विनोद स्वामी

बीजो ना इब बाजरी, बीजो हिवड़े आग।
क्रांति फसलां काटस्यां, किस्सा काती लाग।।

राजस्थानी साहित्यकार रामस्वरूप किसान ने जब यह दोहा लिखा, तब राजस्थान का किसान नई सदी राह पर विरासत में मिले अकाल की परम्परा को जेहन में लिए खड़ा था। राजस्थान का नाम जुबान पर आते ही दूर-दूर तक पसरी धोरां धरती का बिम्ब बनता है। एक मंथर गति से चलता जीवन का सफर जहां अभाव गांव की कांकड़ से लेकर घर देहरी तक पसरा खूब खर्राटे मारता है।

युगों से विपरीत भौगोलिक परिस्थितियां, सदियों से क्रूर राज व्यवस्थाएं और इन सब पर आजादी के बाद अशिक्षा, अज्ञान व रूढ़िवादी परम्पराएं। राजस्थान के किसान को विरासत में मिला तो अकाल पर अकाल। तभी तो यहां पर बसने वाले मिनख के लिए कहा जाता है कि लोग अकाल को मुश्किल से तोड़ते हैं, सहन करते हैं, मगर राजस्थानी अकाल को मात देने वाला मिनखा है। तभी तो कवि कहता है-

इण माटी में सो-सो पीढ़ी, मरगी भूखी प्यासी।
भाग भरोसै रैयो बावला, प्रीत अकासी।।
कदे तो पड़ग्यो काल अभागो, गिण-गिण काढ़यो दोरो।
कदे तो ठाकर लाटो लाट्यो, कदे लाटग्यो बोहरो।।
कदे तो बेरी दांवो पड़ग्यो, कदे आपगी रोली।

जीवटता की मिसाल पूरी दुनिया में राजस्थान के किसान से बड़ी दी नहीं जा सकती। किसान लिखते हैं-

आगै खीचै घोनड़ी, लारै खीचैं डाग।
अेड़ी खींचाताण में, किरसो गावै राग।।
जापै सोई घीवड़ी, परग्योड़ी बीमार।
भीळी पास सूं डाग़ी, एळघट आई हार।।

बिजोलियो आंदोलन के अंगारे सीने में संजोए उस किसान ने आजादी से पहले और बाद में समय-समय पर अपने जिंदा व जीवित होने का प्रमाण दिया, मगर सामंतवाद के क्रूर पंजों ने उन्हें हर बार दबोच लिया। बेगू किसान आंदोलन (1921), मारवाड़ कृषक आंदोलन (1923), नीमूयाणा का कृषक आंदोलन (मेव किसान 1925), एकी (भील आंदोलन 1920), बूंदी किसान आंदोलन (1926) इसके पुख्ता प्रमाण हैं। 1946 में बीकानेर का किसान आंदोलन एक टिमटिमाता तारा-सा लगता है।

21वीं सदी की पहली किरण फूटते ही राजस्थान के किसान ने नगरियों की पटराणी जयपुर की कुर्सी पर बैठी सरकार की छाती पर पैर रख 'किसान एकता जिंदाबाद' का गगनभेदी उद्‌घोष किया तो पूरे देश का ध्यान युवक किसान की तनी हुई मुट्ठियों व भृकुटियों पर आ टिका। तब राजस्थान के कवि की कविता जिंदा हो गई कि-

हक द्यो म्हारो हाकना नीं तो लेस्या खोस।
ये देख्यो है रोढ़यो नीं, देख्यो ये रोस।।

नई सदी की शुरुआत राजस्थान के किसान की जागने की वेला कैसे हो गई। इसकी पड़ताल बहुत रोचक है। राजस्थान के सात संभागों में भिन्न-भिन्न कृषि तरीके हैं और भौगोलिक व सामाजिक परिस्थितियां भी। अरावली के इस पार और उस पार को अलग-अलग दृष्टि से भी देखा जा सकता है। बीकानेर, कोटा व शेखावटी संभाग में गत ढाई दशकों में किसान जिस तरह से बिजली, सिंचाई पानी व फसल बीमा पर लामबंद होकर सरकार को झुकाने के लिए विवश किया, वह अद्‌भुत बात है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि राजस्थान में जहां-जहां वाम धारा के संगठन व लोगों का वर्चस्व रहा, वहीं मध्यम वर्गीय किसान ने आंदोलन लड़ना सीखा। किसानों ने इतनी बड़ी लड़ाईयां लड़ी कि वो भारतीय किसान आंदोलन के लिए एक नजीर बन गई। लाठी, गोली, कर्फ्यू को धत्ता बताता किसान बिना कोई सशक्त नेतृत्व के राजसत्ता को ललकारना सीख गया।

रावला-घड़साना में जब किसान तबाह हो गए। खेती आधारित कल-कारखाने व मंडियां वीरान हो गई, तब किसान, व्यापारी, मजदूर संयुक्त रूप से मैदान में उतरे। जब विदर्भ का किसान निराश होकर मौत को गले लगा रहा था, तब राजस्थान का किसान एक नया संदेश दे रहा था कि आत्महत्या कर मरने की बजाए राज से लड़ते हुए मरना बहादुरी का काम है।

पूर्व विधायक व इस आंदोलन के अगुवा नेता कामरेड हेतराम बैनीवाल से बात की तो उन्होंने बताया कि सिंचाई पानी का ये आंदोलन हिन्दुस्तान के तमाम आंदोलनों से हटकर था। लाखों एकड़ भूमि को सरकार ने बरबाद करने की मंशा बना ली। छोटे-छोटे गांव व बिखरी हुई ढाणियों वाले इस इलाके में गरीब किसानों का बाहुल्य था। कृषि आधारित व्यापार 2004 में भयंकर अकाल से स्थिति और खराब हो गई। पशु धन मर गया तथा कृषि सयंत्र औने-पौने दामों में बेचने पड़े। लोगों ने पलायन शुरू कर दिया। आंदोलन विश्वास और ईमानदारी से बढ़ता ही गया। औरतों, बच्चों व बूढ़ों पर जुल्म ढाए गए। उम्र कैद व फांसी के झूठे मुकद्दमें बनाए गए, मगर तब तक किसान जाग उठे थे। जनता की पीड़ा को खुद की पीड़ा समझ ईमानदारी से कोई लड़ाई लड़े तो उनमें सरकारों को झुकना ही पड़ता है। लोगों को सही व सटीक मुद्दों की जानकारी देने से बिखरे हुए किसान भी एक हो जाते हैं, होते रहेंगे।

अखिल भारतीय किसान सभा के प्रदेशाध्यक्ष व पूर्व विधायक पेमाराम से बातचीत हुई तो उन्होंने यही माना कि राजस्थान के किसान को आजादी से पहले तो बेगारी से ही फुर्सत नहीं थी। आजादी के बाद भी वह हाशिए पर रहा, क्योंकि बड़ी पार्टियों के राज की अदला-बदली में उन्हें धोखा ही दिया जाता रहा। जिन-जिन क्षेत्रों में ढाई दशकों में किसान सभा का वर्चस्व

बढ़ा, लोगों ने लामबंद होना सीखा। जयपुर क्षेत्र व शेखावटी का बिजली का किसान आंदोलन एक ऐसी मिसाल है कि किसान को अगर ईमानदारी के साथ कोई बात समझा दे और धोखा न दे तो राजस्थान का किसान मुद्दे की बात जल्दी पकड़ता है और उसका पुरजोर समर्थन भी करता है।

किसान सभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमरा राम का मानना है कि रजस्थान का किसान जितनी गहरी नींद सोता है, उतना ही सजगता से जगता भी है। यहां ढाई दशकों में किसानी व खेत को बचाने के लिए जिस गति से किसान की समझ विकसित हुई है वह संतोषजनक है। राजस्थान का किसान ऐतिहासिक दमन, शोषण व धोखेधड़ी का शिकार रहा है। किसान सभा ने गांवों-गांवों में कमेटियां बनाकर उनको सुचारू रूप से संगठित रखने के लिए काम हुआ है। तभी आज बिजली, पानी जैसी बुनियादी सवालों पर सरकार को झुकाने में किसान सक्षम हुए हैं।

किसान आंदोलनों में गत ढाई दशकों से लगे युवा साथियों में बहुत से नाम महत्वपूर्ण हैं। श्री गंगानगर के श्योपत मेघवाल, फसल बीमा की चुरू में लंबी व कानूनी पेचीदगी से भरपूर लड़ाई लड़ने वाले निर्मल प्रजापत व बीकानेर संभाग के हर किसान आंदोलन में प्रमुखता से शिरकत करने वाले बलवान पूनिया की बातों का सार यही निकलता है कि राजस्थान ने नई सदी के किसान आंदोलनों को नई दिशा दी है। राजस्थान के तमाम मजबूत आंदोलन किसान सभा के नेतृत्व में हुए हैं और किसानों ने हजारों व लाखों की संख्या में उपस्थित होकर अपनी एकजुटता प्रदर्शित की है।

राजस्थान में किसान आंदोलन होने के कारण यह भी रहे हैं कि यहां खेती की नई तकनीक आई। जो प्रदेश शुष्क था, उसमें बड़ी-बड़ी सिंचाई परियोजनाएं आई। जहां पानी नहीं था, वहां पर नलकूप, बांध व तालाब बनाए गए। जोत बड़ी होने व शिक्षा का उल्लास तेज होने के साथ ही किसान की सोच ने भी करवट ली। सरकार की गलत नीतियों के कारण हाडतोड़ मेहनत के बावजूद भी कुछ पल्ले न पड़ने की स्थिति है।

बिना मजबूत राजनैतिक नेतृत्व के लड़ते देख यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसानों पर जोर-जुल्म और ज्यादा बढ़ा है, तभी तो यहां का किसान साधारण नेतृत्व पर बड़ी एकजुटता दिखा रहा है। अगर सरकारें नहीं चेती तो राजस्थान का किसान आंदोलन और तेज होगा। एक बुजुर्ग कवि लिख रहे हैं-

आछो पजातंत्र आयो, म्हनें आवैं हांसी।
बीस आदमी बुल्ला छांगे, अस्सी चढ़र्‌या फांसी।।
आजादी, गुलामी दोनूं किरसां भांऊ अेकसी।
ईगै तो डील में हरदम, गड़ती रैवे मेख-सी।।

राजस्थान का किसान भले ही भारत के लिए नजीर बन गया हो मगर दूरदृष्टि रखने वाले लोगों का यह भी मानना है कि अभी वैचारिक स्तर पर किसान नहीं पहुंच पाया है। साथ ही साथ निम्न से निम्न स्तर के किसान, खेतीहर मजदूर अभी इस जन जागृति के दायरे से परे है। एक दोहे में शायद सब आ जाता है-

बदळै म्हीना बरस रूत, पण नी बदळै भाग।
बा ई सागण खोलड़ी, बा ई सागण डाग।।

सम्पर्क-98291-76391

सिनेमा

हिन्दी सिनेमा में किसान-जीवन

□सुनील दत्त

सिनेमा माध्यम भारत में अपने सौ साल पूरे कर चुका है। सिनेमा ने भारतीय समाज को गहरे से प्रभावित किया है। बदलते हुए समाज को भी सिनेमा में देखा जा सकता है। भारत की अधिकांश आबादी खेती-किसानी से जुड़ी है। पिछले कुछ समय से खेती-किसानी पर गहरा संकट है, लेकिन सिनेमा जगत में किसानी के संकट को व्यापकता और गंभीरता से प्रस्तुत करने वाली कोई फिल्म सामने नहीं आई। यह विडम्बना ही है कि जिस राज्य में मायानगरी है, सिनेमा उद्योग स्थापित है, उसी राज्य के किसान रोजाना आत्महत्या कर रहे हैं और किसी फिल्म निर्देशक का इस समस्या पर कोई ध्यान नहीं कि वह किसान संबंधी समस्याओं को परदे पर उकेरे।

आरंभिक सिनेमा में कुछ सराहनीय प्रयास हुए। कुछ संवेदनशील निर्देशकों ने किसान जीवन की समस्याओं से संबंधित अच्छी फिल्मों का निर्माण किया। किसानों के जीवन से प्रेरित सबसे पहले सआदत हसन मंटो द्वारा लिखी 'किसान कन्या' फिल्म आई, जिसमें किसान जीवन का थोड़ा-बहुत वर्णन मिलता है परन्तु इस फिल्म का व्यापक प्रदर्शन भी नहीं हो पाया।

1951 में बिमल रॉय की बलराज साहनी अभिनीत 'दो बीघा जमीन' फिल्म आई। लगभग सतासठ साल पहले इस फिल्म में किसान जीवन की जिस सच्चाई को प्रस्तुत किया गया, आज भी वैसी की वैसी ही है। कर्ज के भार में दबे होने के बाद भी अपनी जमीन से प्रेम। यही है - दो बीघा जमीन। इस फिल्म का मुख्य पात्र शंभू है। उसके लिए उसकी जमीन मां है, इज्जत है, सब कुछ है। गांव का जमींदार हरनाम उसकी जमीन को हड़पकर फैक्टरी लगाना चाहता है। शंभू अनपढ़ है। वह जमींदार के षड्यंत्र में फंसकर अपनी जमीन गंवा बैठता है। कर्ज मुक्त होने के लिए शहर जाता है और वहां रिक्शा चलाता है। उसका सारा परिवार बिखर जाता है और वह तय सीमा तक साहूकार का पैसा नहीं चुका पाता। जमींदार उसकी जमीन में फैक्टरी लगा देता है। शंभू जब गांव आता है तो वह अपनी जमीन से मुट्ठी भर मिट्टी लेना चाहता है लेकिन सुरक्षा कर्मी उसे ऐसा करने नहीं देता और उसे वहां से भगा देता है। इस फिल्म की तीखी आलोचना हुई थी। इसे नव-यथार्थवाद के नाम पर कूड़ा तक कह दिया गया था, क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्था इसे हजम नहीं कर पाई थी।

1957 में आई महबूब खान की फिल्म 'मदर इंडिया' किसान जीवन का महाकाव्य मानी जा सकती है। इस फिल्म में भी किसान कर्ज के भार से दबा हुआ है। बर्बर जमींदार भारी ब्याज पर किसान को कर्ज देता है। कर्ज न चुकाने पर वह

उसकी इज्जत से भी खेलने की कोशिश करता है। 1961 में मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की जोड़ी' पर आधारित 'हीरा मोती' नामक फिल्म आई। इस फिल्म में भी किसान जीवन का चित्रण मिलता है। 1967 में मनोज कुमार रचित 'उपकार' फिल्म में भी राष्ट्रवाद के साथ किसान जीवन देखने पर मिलता है। 1988 में आई रवीन्द्र पीपल निर्देशित स्मिता पाटिल अभिनीत 'वारिस' फिल्म में भी पति की हत्या के बाद पारो अपनी भूमि को बचाने के लिए चरम-त्याग की राह अपनाती है।

कुछ साल पहले श्याम बेनेगल निर्देशित 'वेल्डन अब्बा' नामक फिल्म आई थी। इस फिल्म में शहर में नौकरी करने वाला ड्राइवर अपने खेत में कर्ज लेकर कुआं खुदवाने आता है, पर उसे नहीं पता कि व्यवस्था इतनी भ्रष्ट है और वह कुआं खुदवाने के लिए इतनी रिश्वत दे देता है जो उसकी जमीन से बड़ी है।

ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंधित 'पीपली लाइव' आमिर खान और किरण राव की एक महान रचना है। इस फिल्म में भी होरी नाम का एक चरित्र है और वो हमेशा गड्ढा खोदता रहता है, पर विडंबना यह है कि उसका खोदा हुआ गड्ढा कभी नहीं भरता और एक दिन न्यूज पेपर की खबर बन जाता है कि गड्ढा खोदने वाला किसान उसी गड्ढे में दबकर मर गया। अभी कुछ समय पहले 'किसान' नामक फिल्म भी आई थी सुहेल खान की, पर वह पूरा निर्वाह नहीं कर पाई।

1991 के बाद स्थिति बदल गई। आम आदमी सबसे बड़ी दयनीय स्थिति में है, उसके प्रति संवेदनशीलता कम हो रही है। समस्त माध्यम पूंजी के सामने नतमस्तक है।

आज कस्बों से सिनेमा हाल गायब हैं। उनकी जगह मल्टीपलैक्स, पीवीआर आदि ने ले ली है। इसके दर्शकों की रुचि ग्रामीण और किसान के साथ मेल नहीं खातीं। इसीलिए शायद ग्रामीण और किसान जीवन सिनेमा से गायब हो रहा है।

सम्पर्क : 9416876494

•

खेतों में लहलहाता संगीत

□विपिन सुनेजा

संगीत हमारे देश की मिट्टी में बसा है। इस मिट्टी में अन्न उगाने वाले किसान के जीवन में अनेक ऐसे क्षण आते हैं, जब वह भाव-विभोर होकर गाने लगता है। ग्राम्य जीवन पर आधारित अनेक फिल्मों में किसान के मनोभावों को व्यक्त करते हुए गीत रखे जाते रहे हैं, जिनका दृश्यांकन भी ऐसा रहा है कि वे दर्शकों के मन-मस्तिष्क में सदा के लिए अंकित हो गये हैं।

भारत में बनी पहली रंगीन फिल्म 'किसान-कन्या' (1937) सआदत हसन मंटो की कहानी पर आधारित थी। इसमें ऐसे दो गीत थे, एक था 'माटी हमारी जननी है, हम धरती के पूत' और दूसरा था 'धान के पोले भर-भर बांधे'। फिल्म 'औरत' (1940) में आकाश में उमड़ते बादलों को देखकर किसानों को गाते हुए दिखाया गया था। 'बादल आये, बादल आये, बदल गया संसार'। फिल्म 'दो बीघा जमीन' (1953) में भी सावन का स्वागत करते हुए गीत था 'हरियाला सावन ढोल बजाता आया'। इस फिल्म में एक और गीत था, 'धरती कहे पुकार के, बीज बिछा ले प्यार के, कौन कहे इस ओर तू फिर आये न आये'। शैलेन्द्र के लिखे इस गीत में एक कृषक के जीवन का सम्पूर्ण दर्शन छिपा हुआ है।

फिल्म 'मदर इंडिया' (1957) के गीत 'मतवाला जिया झूमे पिया, झूमे घटा छाये रे बादल' में खेत में काम करते हुए नायक-नायिका का प्रेमालाप भी है। इसी फिल्म में एक मेले का दृश्य है, जिसमें बैलगाड़ियों पर सवार किसान गा रहे हैं 'दुख भरे दिन बीते रे भइया, अब सुख आयो रे'। और इसी फिल्म में एक उदास गीत भी है 'उमरिया घटती जाये' जिसमें शोषण का शिकार हुए किसानों की व्यथा शकील बदायूंनी के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त की गयी है-'दुख-दर्द से बंजारे भैया धूप में देखे तारे, दिन-रात बहाये पसीना हम, कुछ हाथ न आये हमारे'।

फिल्म 'दो आंखें बारह हाथ' (1957) में सावन के आगमन पर नायक ढोल बजाते हुए गा रहा है, 'उमड़-घुमड़ कर आयी रे घटा, झरझर झरझर अब धार झरे और धरती जल से माग भरे'। प्रेमचंद की कहानी पर आधारित फिल्म 'हीरा मोती' (1959) में भी ऐसा ही उमंग भरा गीत था 'नाच रे धरती के प्यारे, आज तेरे घर होने को है फिर खुशियों के फेरे, धान की बाली, यह हरियाली कहती है तुझसे रे'। प्रेमचंद के ही उपन्यास पर आधारित फिल्म 'गोदान' (1963) में अपने खेतों की ओर लौटता किसान गा रहा है 'पूरबा के झोंका में आयो रे संदेसवा कि चल आज देसवा की ओर'। इसी फिल्म में नायक को सांझ के समय अपने खेत में बैठे चैती गाते हुए दिखाया गया है 'हिया जरत रहत दिन-रैन, अम्बुवा की डाली पे कोयल बोले, तनिक न आवत चैन'। भोजपुरी भाषा में ये गीत अनजान ने लिखे थे।

फिल्म 'खानदान' (1965) में राजेन्द्र कृष्ण का लिखा एक बड़ा ही रोचक गीत था जिसमें नायक कहता है 'नील गगन पर उड़ते बादल आ आ आ, धूप में जलता खेत हमारा, कर दे तू छाया' और नायिका कहती है 'छुपे हुए ओ चंचल पंछी जा जा जा, देख अभी है कच्चा दाना, कर दे तू छाया'।

फिल्म 'गाइड' (1965) में सूखे से पीड़ित किसान याचना कर रहे हैं 'अल्लाह मेघ दे, रामा मेघ दे, पानी दे छाया दे'। फिल्म 'शहीद' (1965) में पराधीन भारत के किसानों की स्थिति बयान करता हुआ प्रेम धवन द्वारा लिखित मार्मिक गीत था 'जट्टा पगड़ी संभाल, तेरा लुट गया माल। देके अपना खून पसीना तूने फसल उगाई, फसल पकी तो ले गये जालिम तेरी नेक कमाई'। किसान को केंद्र में रखकर जितने भी गीत आये हैं, उनमें संभवत: सबसे लोकप्रिय फिल्म 'उपकार' (1967) का गीत 'मेरे देश की धरती सोना उगले' गुलशन बावरा के लिखे गीत की इन पंक्तियों को

बड़े ही सुंदर ढंग से फिल्माया गया था 'बैलों के गले में जब घुंघरू जीवन का राग सुनाते हैं, गम कोसों दूर हो जाता है, खुशियों के कंवल मुस्काते हैं, सुनके रहट की आवाज़ें यूं लगे कहीं शहनाई बजे, आते ही मस्त बहारों के दुल्हन की तरह हर खेत सजे'।

फिल्म 'धरती कहे पुकार के' (1969) का शीर्षक गीत था 'धरती कहे पुकार के, मेरा सब कुछ उसी का है, जो छू ले मुझको प्यार से'। फिल्म 'जिगरी दोस्त' (1969) में भी एक मधुर गीत था 'मेरे देस में पवन चले पुरवाई'। फिल्म 'बंधन' (1969) में किसानों को उत्सव में गाते हुए दिखाया गया 'आयो रे सावन आयो रे, हुए सच मेहनत के सपने, कि दुखड़े दूर हुए अपने, किया धरती ने सोलह सिंगार'। फिल्म 'गंवार' (1970) में धरती मां का गुणगान करता हुआ गीत था 'वो कौन है जो मां की तरह नाज उठाये, दे दे के लहू अपना जो फसलों को उगाये, यही धरती यही धरती'।

फिल्म 'अनोखा' (1975) के लिए इन्दीवर ने एक गीत लिखा था 'धरती है हमारी जान, जान लगा कर बोएं धान' जो ट्रैक्टर पर सवार नायक पर फिल्माया गया था। यह इकलौता ऐसा गीत है जिसमें मेहनतकश किसानों की महानता का बखान किया गया है 'तुमको लोगों ने अब तक कहा है किसान, पर मैं कहता हूं तुमको इस धरती का भगवान'।

सत्तर के दशक के बाद ग्रामीण परिवेश की फिल्में बहुत कम बनी हैं। इसलिए किसानों पर फिल्माए गीत भी बहुत कम हैं। इनमें दो गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो फिल्म 'लगान' (2001) का गीत 'घनन घनन घन फिर आये बदरा' और दूसरा है फिल्म 'वीर जारा' (2004) का गीत 'ऐसा देश है मेरा' जिसमें जावेद अख्तर लिखते हैं 'गेहूं के खेतों कंघी जो करें हवाएं, रंग बिरंगी कितनी चुनरियां उड़ उड़ जाएं'।

ये तो हुए फिल्मी गीत। इनके अतिरिक्त मुझे एक गीत याद आ रहा है, जो आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र पर तैयार किया गया था 'थम जा रे पिया, बंसी न बजा, अभी खेत प्यासे'। लेकिन यह गीत सुने हुए तीस साल से ज्यादा हो गए हैं। आजकल ऐसे गीत कहां!

सम्पर्क-09991110222

डॉ. आम्बेडकर किसान नेता के रूप में

□विनोद कुमार

अर्थशास्त्री, राजनेता, मंत्री लेखक, संविधान निर्माता आदि सभी रूपों और परिस्थितियों में डा.आम्बेडकर ने किसान हित की अनदेखी नहीं की। वे समय-समय पर सभी रूपों में किसानों के कल्याण हेतु वे समर्पित रहे। हर वो व्यक्ति जिसमें जरा सी भी बौद्धिक ईमानदारी है डॉ. आम्बेडकर को किसान हितैषी नेता के रूप में मानेगा। कृषि क्षेत्र में उनके चिंतन व कार्यों को प्रस्तुत करता विनोद कुमार का लेख प्रस्तुत है-सं.

किसानों समस्याएं एवं आत्म हत्याएं आज एक गम्भीर विषय बन चुका है। जो किसान कृषि क्षेत्र को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि देश की अर्थव्यवस्था व सकल घरेलू उत्पाद (जी. डी. पी.) को भी बहुत हद तक प्रभावित करता है। इस विषय को डॉ. आम्बेडकर जैसे महान अर्थशास्त्री ने अपने सार्वजनिक जीवन के आरंभिक दिनों में ही जान लिया था।

प्राचीन भारत के इतिहास से लेकर मध्यकाल और आधुनिक काल तक के इतिहास का विवेचन से ज्ञात होता है कि कृषि, कृषि उपज व कृषि - कर्म किसी भी राज्य की अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भ रहे है। किसानों की सहायता का भारतीय इतिहास में सबसे पहला अभिलेखीय प्रमाण महान मौर्य सम्राट अशोक रूम्मिनदेह लघु स्तम्भ लेख से मिलता है। इसके अनुसार अशोक महान ने बुद्ध का जन्म स्थान होने के कारण यहां के किसानों का राजस्व कर द भाग से घटाकर ? भाग कर दिया था। (1) इसके बाद मध्यकाल में मुहम्मद-बिन-तुगलक ने 'अमीर-ए-कोटी' नाम से अलग से कृषि विभाग की स्थापना की थी। (2) आधुनिक भारत के इतिहास के काल खंड में अंग्रेजों ने भी कृषि के महत्व को समझा। अंग्रेजों ने तो कृषि कर्म को मात्र कृषि कर्म ही नहीं रखा उन्होंने इसका स्वरूप बदलकर इसे व्यापार-कर्म में तब्दील कर दिया अर्थात कृषि का वाणिज्य करण कर दिया। (3) इस तरह कृषि का वाणिज्य करण करने से व्यापारी व शासकों को बहुत ही लाभ मिले और किसानों की दुर्दशा दिन - प्रतिदिन बढ़ने लगी। अगर दूसरे शब्दों में कहें तो किसान पहले अपने लिए कृषि करता था अब वह व्यापारियों के लिए कृषि करने लगा। किसान किसान को व उपज को अब मध्यकाल (रॉ मैटेरियल) माना जाने लगा। हालांकि वह किसान था तो मानव ही परन्तु कृषि के व्यापारी करण ने उससे मानव का हक भी छीन लिया। अब इन किसानों की समस्याएं अगर कोई समझ या सुलझा सकता था तो वह बहुत बड़ा मानवतावादी व महान अर्थशास्त्री होना चाहिए था। डॉ. आम्बेडकर ये दोनों ही थे। इस बात पर किसी भी जानकार व ज्ञानी आदमी को कोई शक नहीं हो सकता। ये दोनों गुण ही उसे किसानों की समस्याओं की तरफ खींच ले गए। यह बात अलग है कि उन्हें सबसे पहले आन्दोलन अछूतों की हालत तो किसानों की हालत से भी गयी गुजरी थी। समाज- व्यवस्था ने उनके मानव होने पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया था।

किसानों के शोषण की समस्या पर स्वतंत्रता पूर्व काल में कुछ स्थानों पर किसान संगठित होकर प्रतिकार कर रहे थे। ई. सन 1857 से 1921 तक के काल में किसान आन्दोलन का विकास हुआ। राजनीतिक स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ-साथ ही किसान आन्दोलन भी चल रहा था क्योंकि किसानों ने देखा कि राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन चलाने वाले नेता उनकी समस्याओं की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दे रहे हैं तो किसानों ने 1935 में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की (4) जिसका नेतृत्व स्वामी सहजानन्द सरस्वती किया। ठीक इसी सन (1935) में ही भारत सरकार अधिनियम भी पारित

हो चुका था। उसी अधिनियम के तहत 1937 में पहली बार आम चुनाव हुए। अब सभी समस्याओं का समाधान विधानमंडलों में अपने प्रतिनिधि भेजकर उनके माध्यम से कानून बनवाकर, योजनाएं,नीतियां बनवाकर होना था।

नये संविधान के अनुसार विधानमंडलों में भाग लेने के लिए चुनाव जीतना जरूरी था। इसलिए डॉ. आम्बेडकर ने 15 अगस्त 1936 को 'स्वतंत्र मजदूर पार्टी' की स्थापना की। (5) अपनी नयी निर्मित पार्टी का घोषणा में उन्होंने बहुत बड़े उद्देश्यों को रखा। जिनमें मुख्य रूप से, जमीनों के पट्टाधारियों का शोषण से संरक्षण करना, मजदूरों की भलाई के लिए कानून बनाना इत्यादि थे। (6) पार्टी के घोषणा पत्र व उद्देश्यों के विवेचना प्रान्त हम कह सकते हैं कि ये डॉ. आम्बेडकर के अर्थशास्त्रीय व वकीली दिमाग की उपज है। स्वतंत्र मजदूर दल की स्थापना के माध्यम से ही उन्होंने कृषि, मजदूरों और किसानों की समस्याओं को जनता तथा सरकार के सामने रखने के प्रयास किए। फरवरी 1937 में हुए प्रथम आम चुनावों में डॉ. आम्बेडकर के दल को बड़ी जीत हासिल हुई उसके 17 में से 15 उम्मीदवार चुनकर आए। (7) और पार्टी बम्बई विधानमंडल में प्रमुख विपक्षी पार्टी बनी। 30-05-1937 को स्वतंत्र मजदूर दल की जीत की खुशी में एक कार्यक्रम रखा गया था उसमें डॉ. आम्बेडकर ने कहा कि 'हमारा स्वतंत्र मजदूर दल किसानों और मजदूरों पर अमीरों की और से होने वाले अन्याय को समाप्त करने के लिए स्थापित हुआ है। (8)

बम्बई विधानमंडल में किसानों के हित सम्बन्धी संघर्ष

डॉ. आम्बेडकर ने कर्ज के बोझ में डूबे किसानों और मजदूरों की स्थिति में सुधार लाने के लिए विधेयक बम्बई विधानसभा में रखा और सरकार की नीतियों पूंजीपतियों के बारे में उन्होंने सरकार को चेताया और कहा कि 'सरकार की नीति पूंजीपतियों के अनुकूल है। मुंबई प्रांत के गवर्नर ने कर का बोझ लादकर किसानों की दशा और भी खराब कर दी है। हम इस नीति का विरोध करते हैं'। (9)

डॉ. आम्बेडकर ने किसानों को चेताया। वे गांव-गांव गए। जगह-जगह संबोधन दिए। किसानों के जत्थे उनके साथ बम्बई आने लगे थे। बम्बई के किसानों से बम्बई पट गया था आगे-आगे किसान जत्थे और पीछे-पीछे सेना सेना मौन और किसान जोश में उछलते हुए नारे लगा रहे थे कि 'डॉ. आम्बेडकर का बिल पास करो' 'खोती सिस्टम मुर्दाबाद' आदि-आदि। डॉ. आम्बेडकर के साथ क्रान्तिकारी नेताओं का प्रतिनिधित्व मण्डल, मुख्यमंत्री को अपना मांग-पत्र देने पहुंचा। (10) डॉ. आम्बेडकर ने किसान ने किसान हित के लिए निम्न मांग पेश की - - - - -

1. खेत में कार्य करने वाले श्रमिकों को कम से कम दिया जाने वाला वेतन निश्चित किया जाए।
2. किसान लगान माफ किया गया है तो ठेके की राशि भी माफ होनी चाहिए।
3. लैण्ड लॉर्ड्स (रजवाड़ाशाही) को खत्म किया जाए क्योंकि यह आर्थिक रूप से नुकसानदेह है और सामाजिक रुप से निर्दयी।
4. छोटे किसानों की सिंचाई वसूली में आधी राशि की छूट दी जाए।

इस प्रकार डॉ. आम्बेडकर मजदूरों और किसानों के लिए जबर्दस्त संघर्ष करते रहे। (11)

उपरोक्त किसानों की मांगों के लिए संघर्ष करने वाले डॉ. आम्बेडकर सच्चे अर्थों में किसान हितैषी प्रतीत होते हैं। क्योंकि सड़क से लेकर विधानमंडल तक किसानों की समस्याओं के लिए संघर्ष किया।

साहुकारी नियंत्रण विधेयक

किसानों को अपने कठिन दिनों में साहूकारों से कर्ज लेना होता था। साहूकर नियंत्रित सूद लगाकर किसानों की मेहनत का अधिक हिस्सा स्वयं ही हड़प लेते थे और किसान कंगाल हो जाता था इस पर नियंत्रण रखने हेतु डॉ. आम्बेडकर ने 1937 में साहुकारी नियंत्रण विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत किया। जिसमें किसानों के हित के लिए निम्न उपाय सुझाए गए थे -

1. भारत के किसी भी प्रान्त में साहुकारी करने वाले साहुकार का कानूनी पंजीकरण अनिवार्य हो।
2. साहुकारी व्यवसाय करने वालों को सरकार एक वर्ष के लिए लाइसेंस दे।
3. प्रतिवर्ष इस लाइसेंस का नवीनीकरण अनिवार्य हो।
4. साहुकार का गैर व्यवहार सिद्ध होने पर उसका लाइसेंस निरस्त किया जाए।
5. व्यवहार लिखित हो, धन देने वाला, धन लेने वाले को इस व्यवहार को लिखित खाता पुस्तिका दे। (12)

किसानों के हित के लिए इस प्रकार के कानून बनवाने की विचार किसी डॉ. आम्बेडकर जैसे जन-अर्थशास्त्री के दिमाग में ही आ सकते हैं।

ठेका प्रथा नष्ट करने सम्बन्धी विधेयक

17 सितंबर 1937 को डॉ. आम्बेडकर ठेका प्रथा (खोती प्रथा) को नष्ट करने वाला विधेयक बम्बई विधानसभा में रखा जमींदारों द्वारा होने वाला किसानों का शोषण, जीवन का मालिकाना हक छीनने की जमींदारों की प्रवृति, इत्यादि से किसानों का शोषण होता था। 1864 से ही सरकार जमींदारों के अधिकारों को सीमित करने का प्रयत्न कर रही थी फिर भी कानून को ताक पर रखकर खेत मालिक किसानों का मनमाना शोषण कर रहे थे। जिससे मालिकों और किसानों में अक्सर मारपीट होती रहती थी और कत्ल भी होते थे। 1934 में प्रसिद्ध 'उदेरी' (अमरावती जिले में एक तालुका) मामले में तबीयत ठीक न होने पर भी डॉ. आम्बेडकर ने उच्च न्यायालय में किसानों के समर्थन में खड़े होकर दलीलें दी और निचली अदालत में दी गई सजा को कम करने में सफल हुए थे। (13) इतना ही नहीं खेत मालिकों द्वारा किसानों पर जो जोर - जबरदस्ती एवं अत्याचार होता था, उससे संबंधित समाचार डॉ. आम्बेडकर ने खुद के द्वारा संचालित पत्र 'जनता' साप्ताहिक में भी छापे। अन्य दलों की नीति जमींदार समर्थक होने से डॉ. आम्बेडकर उसकी निंदा करते थे।

किसानों को संगठित करने का प्रयत्न

1 जनवरी 1938 को दोपाली में खेती की वतन पद्धति समाप्त करने के लिए रघुनाथ धोडिंबा खांम्बे की अध्यक्षता में तिल्लौरी किसानों की परिषद् आयोजित की गयी। इस परिषद् में डॉ आम्बेडकर ने पार्टी के सदस्य अनन्तराव चित्रे, सुरवा नाना टिपणीस को भेजा था। डॉ. आम्बेडकर के इन सहयोगियों के भाषणों ने सभी को बहुत प्रभावित किया और उन्हीं के कारण किसानों को जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन चलाने की प्रेरणा मिली। इस

संबंध में उनके व्यक्तियों को गैर कानूनी करार देकर उन पर मुकदमे दाखिल किए गए। उस समय न्यायालय में डॉ. आम्बेडकर ने खड़े होकर उनके पक्ष में दलीलें दी थी। (14) प्रसिद्ध वकील डॉ. आम्बेडकर अच्छी तरह समझ रहे थे कि किसान हितों की बात करना तत्कालीन सरकारों व साहूकारों, जमींदारों की नजर में गुनाह है लेकिन फिर भी वो डरे नहीं। एक सच्चे किसान हितैषी के रूप में डॉ. आम्बेडकर बड़े से बड़ा खतरा उठाकर किसी से भी लड़ने को तैयार थे।

डॉ. आम्बेडकर के नेतृत्व में किसान मोर्चा

10 जनवरी 1938 को मुंबई में डॉ. आम्बेडकर ने स्वतंत्र मजदूर दल के और से 20 हजार किसानों का मोर्चा आजाद मैदान से कौंसिल हाल तक आयोजित किया था। इसके माध्यम से डॉ. आम्बेडकर ने निम्न बात सरकार के सामने रखी। वार्षिक 75 रुपए कर देने वाले या कम कर देने वाले किसानों का कर तत्काल 50 प्रतिशत कम करना चाहिए। खोती और मुआवजे के साथ बन्द करने के लिए शीघ्र ही कानून बनना चाहिए। तीन वर्ष तक जमीन जोतने वाले कब्जे को स्थायी कब्जेदार मानना चाहिए। सभी गांव में मुक्त चारागाह होने चाहिए। 'कर्ज मुक्ति कानून' लागू होने तक कर्ज की वसूली स्थगित होनी चाहिए बंधुआ मजदूर प्रथा को कानूनन अपराध घोषित किया जाना चाहिए। सभी बिन जोती जमीन मजदूरों में बांट देनी चाहिए। इस प्रकार की विभिन्न मांगों को तेरह तात्कालिक मांगों में रखा गया था सभी प्रौढ़-स्त्री पुरुषों को मताधिकार मिलना चाहिए। इत्यादि इस प्रकार की मांगें किसानों के मोर्चे में रखी गयी थी। (15)

किसान हित में स्वतन्त्र मजदूर दल का इतना प्रभाव था कि वल्लभ भाई पटेल ने प्रांतीय मंत्रिमंडल गठित होने के उपलक्ष्य में पूणे के शनिवारवाड़ा के सामने जो भाषण दिया था उसमें उन्होंने कहा कि - 'मुम्बई असेम्बली में अलग-अलग दल है उनमें डॉ. आम्बेडकर द्वारा स्थापित स्वतन्त्र मजदूर दल अत्यंत महत्वपूर्ण है। (16)

मंत्री के रूप में डॉ. आम्बेडकर के किसान हित के कार्य

डॉ. आम्बेडकर 1 जुलाई 1942 से 10 सितंबर 1946 तक वायसराय की कार्य साधक कौंसिल में लेबर मेंबर रहे। उस समय के दो वायसरायों ने उनकी प्रशंसा में इस प्रकार लिखा - -

लार्ड लिनलिथगो- डॉ. आम्बेडकर योग्य हैं। वह साहसी है। (17)

लार्ड वेवल - डॉ. आम्बेडकर शुद्ध हृदय है, वह ईमानदार और शूरवीर है। (18)

डॉ. आम्बेडकर ने अर्थव्यवस्था सम्बन्धी विचारों को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया 'दोषपूर्ण राजनीतिक अर्थनीति अपराध की जनक है - थॉमस आनरलड', भारत में अत्यधिक कृषि का खतरा है। सर हैनरी कौलटेन भारत की खेतिहर समस्याओं का समाधान औद्योगिकीकरण है।(19) डॉ. आम्बेडकर के नजरिए से किसानों की समस्याओं का समाधान औद्योगिकीकरण के लिए बिजली की जरूरत थी। बिजली की प्राप्ति हेतु महान अर्थशास्त्री डॉ. आम्बेडकर ने समाधान खोज निकाले। उनके अथक प्रयत्नों से दमोदर वैलीडैम, महानदी बांध, सोन घाटी बांध, हीराकुंड डैम, आदि आठ बच्चों का निर्माण केवल चार साल में पूरा करवाया। (20) इन नदियों में हर साल बाढ़ आती थी और किसानों का बहुत बड़ी तादाद में खेती, जान व माल का नुकसान होता था। परन्तु किसान हितैषी डॉ. आम्बेडकर ने उपरोक्त बांध बनाकर लाखों करोड़ों किसानों को बचाया, उनकी फसल नष्ट होने से बचायी। और इन बांधों से बिजली का निर्माण हुआ। बिजली औद्योगीकरण की रफ्तार बढ़ी और किसानों को सिंचाई की उचित सुविधाएं मिलने लगी। बांधों के कारण अनेक उद्योग भी स्थापित हुए जिनमें किसानों के लड़कों को रोजगार मिलने लगा इस तरह किसानों की सामाजिक, आर्थिक दशा सुधारने हेतु डॉ. आम्बेडकर तत्पर रहते थे।

आजादी के समय तथा बाद में किसान हित के कार्य

संविधान सभा के माध्यम से देश में किसान, मजदूर व अन्य उपेक्षितों की समस्याओं के निवारण व शोषण को रोकने हेतु डॉ. आम्बेडकर ने कई कल्याणकारी योजनाएं बनायी। राज्य-समाजवाद की उनकी अवधारणा को रखकर उन्होंने राजनीतिक जनतंत्र को सामाजिक विकास आर्थिक जनतंत्र में बदलने की अपील की। उन्होंने देश के किसानों एवं मेहनतकशों के जीवन में व्याप्त अन्धकार को नष्ट करने के लिए योजनाएं बनाने की दृष्टि से उन्होंने प्रधानमंत्री नेहरू को पत्र लिखा उस पत्र में निम्न योजनाएं थी -

1. औद्योगिकीकरण की दृष्टि से जो उद्योग महत्वपूर्ण माने जाते हैं वे उद्योग और आर्थिक विकास का मूल आधार समझे जाने वाले उद्योग राष्ट्र के अधिकार में होने चाहिए।
2. बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीय करण होना चाहिए।
3. सभी कृषि भूमि सरकार को कब्जे में लेनी चाहिए और सामुहिक पद्धति से खेती करनी चाहिए। (21)

इस अवधारणा से ना कोई जमींदार रहेगा और ना कोई कब्जेदार व मजदूर भी नहीं रहेगा। इसमें सभी किसान एवं जोतदारों का अपना-अपना सहभाग होगा, सभी समान मालिक होंगें। देश के उत्पादन के जो साधन होंगें उन सभी पर मेहनत करने वाले किसानों एवं मेहनतकशों का अधिकार होगा। और उससे होने वाली आय का लाभ सभी स्तरों पर उन लोगों को उनके परिश्रम के अनुसार विभाजित किया जाए इस प्रकार की समाजवादी आर्थिक रचना संविधान द्वारा ही अमल में लाने का प्रयास डॉ. आम्बेडकर ने किया था। लेकिन संविधान सभा द्वारा स्थापित उपसमितियों में इस आर्थिक योजना को नकारा गया।

संविधान में भी उन्होंने किसानों के लिए काफी कुछ प्रावधान किए हैं। शायद ही किसी किसान को उनके बारे में जानकारी हो। ऐसा इसलिए माना जाता है कि किसानों में भी जातिय भेदभाव व्याप्त है वे भी जाति के अनुसार सोचते हैं। संविधान में किसान हित व कृषि हितों को बढ़ावा देने का प्रावधान नियम है।

अनुच्छेद-39-(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन के साधनों का सर्व साधारण के हित में हो। (22) अनुच्छेद -43 - राज्य,उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के,उपयोग के ... सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा। (23)

अनुच्छेद -48 - कृषि और पशुपालन का संगठन - राज्य कृषि राज्य और पशु-पालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्ट

तथा गाय और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों की परीक्षण और सुधार के लिए उनके वध का प्रतिरोध करने के लिए कदम उठाएगा। (24)

डॉ. आम्बेडकर अच्छे से जानते थे कि किसान की समृद्धि में मवेशी भी सहायक होते हैं इसलिए ही उन्होंने इस अनुच्छेद को किसानों समृद्धि हेतु ही लिखा है। कृषि की आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके अपनाकर किसान को खुशहाल किया जा सके यह जिम्मेदारी भी संविधान ने सरकार पर लगायी है।

एक अर्थशास्त्री के रूप में, एक मानवाधिकार के संरक्षक में, रूप में एक वकील के रूप में, एक कुशल संगठन- कर्ता के रूप में, एक राजनेता के रूप में, एक मंत्री के रूप में, एक संविधान निर्माता के रूप में वह किसानों के 'सशक्तिकरण' के लिए संघर्ष करते हुए नजर आते हैं। आज की भूमंडलीकरण की आपाधापी के दौर में तो उनके कार्य नीतियां तथा योजनाएं और भी ज्यादा प्रासंगिक है। वर्तमान में डॉ. आम्बेडकर के मूल्यों, सिद्धांतों, अपनाकर किसानों व कृषि की समस्याओं का समाधान संभव है।

संदर्भः

1.प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, के. सी. श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, ग्यारहवीं आवृत्ति 2005-06, पृष्ठ संख्या - 245।

2.इतिहास (यू. जी. सी., जे. आर. एफ. नेट) डॉ. मानिक लाल गुप्त, प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, कोड-949,पृष्ठ - 117।

3.आधुनिक भारत का इतिहास, बी. एल. ग्रोवर एण्ड यशपाल, एस. चांद पब्लिकेशन नई दिल्ली 2005,पृष्ठ संख्या 93।

4.भारत का इतिहास, यशवीर सिंह, लक्ष्मी बुक डिपो भिवानी, पृष्ठ - 285।

5.बाबा साहेब आम्बेडकर, बसंत मून, अनुवाद प्रशान्त पांडे, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पांचवीं आवृति-2014, पृष्ठ - 111।

6.वही-

7.भटनागर, राजेंद्र मोहन, डॉ. आम्बेडकर चिन्तन और विचार, जगतराम एण्ड सन्स दिल्ली प्रथम संस्करण - 1992,पृष्ठ - 106।

8.शरण कुमार लिम्बाले, प्रज्ञासूर्य डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2013,अनुवाद - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, पृष्ठ - 21।

9.वही।

10.भटनागर, राजेंद्र मोहन- उपरोक्त - पृष्ठ - 107

11.वही

12.शरण कुमार लिम्बाले - उपरोक्त पृष्ठ - 215-16

13.आम्बेडकरी चलवल, यशवंत दिनकर फड़के, सुगत प्रकाशन पूणे, पृष्ठ - 139

14.वही पृष्ठ - 143

15.शरण कुमार लिम्बाले- पृष्ठ - 217-18

16.जनता समाचार-पत्र के लेख, डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर, सम्पादक अरुण काम्बले, पृष्ठ - 110

17.The Transfer of power – Document – 711

18.वॉयसराय जर्नलस, पृष्ठ - 299,एल.आर.बाली., डॉ. आम्बेडकर जीवन और मिशन, भीम पत्रिका पब्लिकेशन्स जालंधर - 2006,पृष्ठ - 243

19.लाहौरी राम बाली, डॉ. आम्बेडकर जीवन और मिशन, वही पृष्ठ - 243-244

20.वही-244

21.शरण कुमार लिम्बाले, पृष्ठ-218-19

22.भारतीय संविधान, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार-2010,पृष्ठ - 17

23.वही - पृष्ठ - 18

24.वही - पृष्ठ - 18

शोधार्थी, इतिहास-विभाग,
म. क. भावनगर यूनिवर्सिटी भावनगर गुजरात,
सम्पर्क - 7383077696

-देस हरियाणा की गतिविधियां-

शहीद उधम सिंह की आत्मकथा और चुनिंदा दस्तावेज का विमोचन

समाज सेविका निर्मला देशपाण्डे की स्मृति 29 जुलाई पर निर्मला देशपाण्डे संस्थान(पानीपत)के द्वारा लक्ष्मी गार्डन सेक्टर 25 पानीपत में प्रतिभा स्मृति सदन का उदघाटन के अवसर पर केंद्रीय इस्पात मंत्री चौ.बीरेन्द्र सिंह डॉ. सुभाष चंद्र द्वारा प्रकाशित 'शहीद उधम सिंह की आत्मकथा और चुनिंदा दस्तावेज' तथा देस हरियाणा पत्रिका के 12वें अंक का लोकार्पण

देस हरियाणा पत्रिका के 12वें अंक का लोकार्पण

मुन्शी प्रेमचंद के जयंती और क्रांतिकारी शहीद उधम सिंह के शहादत दिवस पर

31 जुलाई उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचंद के जयंती और क्रांतिकारी शहीद उधम सिंह के शहादत दिवस पर सावित्रीबाई-जोतिबा फूले पुस्तकालय(सैनी धर्मशाला) में देस हरियाणा की तरफ से एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में सामाजिक कार्यकर्ता सुरेन्द्रपाल सिंह, हरियाणा एवं पंजाब उच्च न्यायालय के वकील राजीव गोदारा, जिला कुरुक्षेत्र न्यायालय के वकील राजेन्द्र चंदी, देस हरियाणा पत्रिका के संपादक डॉ. सुभाष चंद्र, डॉ. कृष्ण कुमार, डॉ. ओमप्रकाश करुणेश, रामकुमार आत्रेय आदि ने अपने-अपने विचार रखे। कार्यक्रम की शुरुआत राजीव सान्याल ने क्रांतिकारी गीत गाकर की। उसके पश्चात डा.कृष्ण कुमार ने प्रेमचंद की औपन्यासिक चेतना पर अपने विचार रखे और बताया कि किस तरह प्रेमचंद नें अपनी कहानियों व उपन्यासों के पात्रो के माध्यमो से समाज में फैली कुरीतियों व शोषण की जडो पर लगातार हमले किए और आज वर्तमान समय में उनके पात्र प्रासंगिक है, गोदान का होरी आज भी भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व कर रहा है। डा.ओमप्रकाश करुणेश ने प्रेमचंद जी कि चर्चित पंक्ति 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल मैहफिले सजाना और मनोरंजन का समान जुटाना नही है। उसका दर्जा इतना न गिराइए। वह देशभक्ति व राजनीति के पीछे चलने सच्चाई भी नही बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है' कार्यक्रम के अंत में सुरेन्द्रपाल सिंह ने अध्यक्षीय टिप्पणी की। सुनील कुमार ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

मुक्तिबोध के जन्म शताब्दी अवसर पर एक काव्य-गोष्ठी

22 अगस्त को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की आर्टस फैक्लटी में टीम देस हरियाणा ने गजानन माधव मुक्तिबोध के जन्म शताब्दी अवसर पर एक काव्य-गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें गणमान्य कवियों नें शिरकत की इसमें डा.दिनेश दधीचि,कुमार विनोद,रामकुमार आत्रेय, ब्रजेश कठिल,गायत्री आर्य, ओमप्रकाश करुणेश,जसबीर लाठरों,राजीव सान्याल व इकबाल सिंह ने कविता पाठ किया। कार्यक्रम का मंच संचालन राजेश कासनिया द्वारा साहित्यिक शैली में किया और कार्यक्रम की शुरुआत अनुभव सिहं ने अपनी 'दरवाजा' शीर्षक की कविता गाकर किया, उसके पश्चात लोक गायक राजीव सान्याल ने एक गीत गाया। सुनील कुमार ने धन्यवाद किया। इसकी विस्तृत रिपोर्ट देस हरियाणा के अगले अंक में।

किसान जीवन से जुड़ी पहेलियां

❑ओम प्रकाश करूणेश

पण्डत पाधे पढ़े फिरां गौं-दर-गौं,
फूलते पहलां फल आज्या, इस पेड़ का कै नौं।

पहला सवाल पढ़े-लिखे ज्ञानी-ध्यानी लोगों पर ही उठाया गया है। अकल के घोड़े दौड़ाकर पाई गई बुझारत का उत्तर खोजने का चैलेंज दिया गया। साधारण लोग गूढ़-गंभीर, कूट प्रश्न या रहस्य लोक की बातें कम और अपने आसपास और दिन-प्रतिदिन कार्य-व्यवहारों में प्रयोग आने वाली चीजों के बारे में ज्यादा पहेलियां डालते थे। एक-दूसरे की बुद्धि की कुशाग्रता मापने का यह पैमाना होती अक्सर मेले-ठेल्ले, उत्सवों-तीज त्यौहारों, ब्याह-शादियों जैसे इक्ट्ठ में ये पहेलियां बूझना लोगों का शगल होती थीं। जब लोग बता नहीं पाते तो पहेली डालने वाला व्यक्ति उस वस्तु से मिलता-जुलता 'क्लू' यानी संकेत, अता-पता देता ताकि वह उसके उत्तर तक पहुंच जाये और इस मशक्त से सभी का मनोरंजन भी होता और इम्तिहान भी हो जाता।

पहेलियों की एक 'कॉमन' खूबी यह रही है, ये जात-पात, मजहब, मत-मतांतर, क्षेत्र से ऊपर उठकर अपने काम-धंधों में जुटे लोगों की जिंदगी और उनके काम आने वाली चीजों को लेकर ही रची गई है। ये ऐसे कूट-प्रश्न (कोड़) हैं, जिनकी 'रिकार्डिंग' (इन संकेतों को खोलना) जिंदगी के पहलुओं और इसी धरती से होती है। दरअसल ये परस्पर मेल-मिलाप का बहुत ही खूबसूरत लोकरंजक शास्त्र है, जिसे लोग जीते हैं। यह कोई पाखंड-शास्त्र नहीं है, बल्कि लोगों की चुहुलबाजियां, चुटकियां, चुटीली बातें और मनोरंजन की चीजें हैं। बख्त के बदलते हुए रूप और रूझान भी इनमें मौजूद हैं। बड़े-बूढ़े, औरतें-बच्चे सभी इस लोक-सृजन का आनंद उठाते हैं। इन्हीं संदर्भों में नीचे दी गई पहेलियों को समझना-बूझना चाहिए।

हरी थी मन भरी थी, लाल मोती जड़ी थी
राज्जा जी के खेत में, दुस्साल्ला ओड्ढ़े
खड़ी थी।
-कुकड़ी

छोट्टा सा बाब्बा, बोहत बड्डा दाड्ढा।
लाल लाल वा, बालों वाली वा।
लाज राखै वा, बात बुज्झे वा।
-कुकड़ी

छोटा सा फकीर।
पेट मां लकीर।।
- गेहूं

हरी मछली, हरे अण्डे। - मटर

छोटे थे तो हरे हुए,
फेर बई लाल गलाब्बी।
बड़े होण पै बाज्जैं टाली।
-चने का पौधा

छोटी छोटी सी लाल गगरिया,
ना छेड़ै रै, मैं तो सदा की जलिया।
पहाड़ां तै आये बगुले,
हरी टोप्पी लाल झगुले।
-मिर्च

आड़ मैं तै बाड़ लिकड़ी
बाड़ मैं तै कचरा।
कचरै मैं तै बहू लिकड़ी
बहू मैं तो ससुरा।
- कपास

बोई थी कांकर, जाम्मे थे झाड़
लाग्गे थे नींबू, खिले थे अनार
-कपास

हरी करेली, धोला भात,
ठ्लयो रे पंचों हाथ-हाथ
-कपास

एक पीस्से की तिरबल ताली
भीतर ते लाल, बाहरते काली
-मसूर की दाल

पहलां बणाई हाड़-पांसली,
फेर बणाई काया।
रेर आला सहजा कवै,
मैं इब देख के आया।।
-छान

नरवरगढ़ के काटड़े, सरवड़गढ़ नै जां
गोड्डी ढ़ा-ढ़ा पाणी पीवां, फेर तसाये जां
-रहट के डोल

एक बात मैं कहूं, बात मां चाला
धरती मां कुण्डा, आसमान में ताला
- ज्वार

पहलवान मैं अलबेल्ला
दो मूसल तैं लई अकेल्ला
भाई जी तैं मन्नै खावै
फूल-फूल कुप्पा हो जावै
-बाजरा

धोली घोड़ी जबर पूंछ।
बता तो बता नहीं पाडू मूंछ।।
-मूली

धोली घोड़ी, हरी पूंछ
बताणा हो बता, ना तो और किसे ने पूछ
-मूली

औरे-धोरे खूंटे बीच मां धोला दुद्धा।
-सिंघाड़ा

चबारे पै चबारा, चबारै पै चबारा।
चबारे पै बैठ्या हरा हरा तोता।।
-गन्ना

चार तरफ उतरै हरियाल्ली
बीच मैं उसके पाट्टै लाल्ली।
-मतीर

सम्पर्क - 9255107001